'ज्ञानपीठ' लोकोदय ग्रंथमाला हिन्दी ग्रंथांक—३२

उत्तरप्रदेश राज्यद्वारा पुरस्कृत



श्री लक्ष्मीशंकर व्यास, एम० ए०, आनर्स

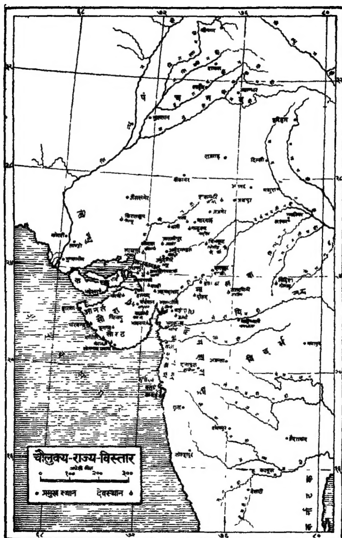
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण
१९५४
मूल्य : चार रुपया

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद


चौलुक्य-राज्य-विस्तार
० १०० २०० ३००
प्रमुख स्थान
देवस्थान
मुलतान
दिल्ली
बीकानेर
जैसलमेर
अजमेर
मथुरा
सोरठ
अजन्ता
हैदराबाद



- जिनकी कभी सेवा-शुश्रूषा न कर सका—
- बचपनके नटखटपनके कारण जिन्हें सदा दुखी किया—
- जिनका चित्र हृदय पटलपर अंकित किया करता हूँ—
- जिनके प्यार-पुचकारके लिए जी मचल उठता है—
- जिनके अन्तिम दर्शन और आशीर्वादसे वंचित रहा—

उन्हीं पूजनीया स्वर्गीय माताजीके
श्रीचरणोंमें यह कृति
श्रद्धया समर्पित है



—लक्ष्मीशंकर व्यास

प्रास्ताविक

इतिहासके प्रतिभावान अध्येता, उदीयमान साहित्यिक और अनुभवी पत्रकार श्री लक्ष्मीशकर व्यास, एम० ए० (ऑनर्स)का प्रस्तुत ग्रन्थ 'चौलुक्य कुमारपाल' एक ख्याति-लब्ध रचना है। क्योकि उत्तर प्रदेशीय सरकारने इस रचनाको इतना महत्त्वपूर्ण माना है कि पाण्डुलिपिके आधारपर ही इसे पुरस्कृत किया है।

पुस्तककी मुख्य उपादेयता इस बातमे है कि यह भारतीय इतिहासके एक ऐसे महिमावान व्यक्तिके कार्यकलापका अध्ययन प्रस्तुत करती है जिसकी गणना हमारे देशके महानतम सम्राटो और राष्ट्र-निर्माताओंमें होती है। चौलुक्य कुमारपाल अपनी महानताओके आधारपर चन्द्रगुप्त मौर्य अशोक और हर्षवर्द्धनके समकक्ष है। चौलुक्य कुमारपाल सम्बन्धी इतिवृत्तको आकलित और योजित करनेके लिए श्री लक्ष्मीशकर व्यासने इतिहासके सभी प्रासगिक मूल आधारो और उपादानोका विधिवत् गहन अध्ययन किया है—सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रशके दर्जनो ग्रन्थ, बीसियों शिलापट्ट और उत्कीर्ण लेख, देशी-विदेशी विद्वानो द्वारा लिखित पचासो ग्रन्थ, और अनेको मन्दिरो तथा विहारोके शताधिक खण्डावशेष। जिन-जिन विद्वानोने इस ग्रन्थको देखा है, वे श्री व्यासके परिश्रम, प्रबुद्ध अवलोकन, निष्पक्ष आकलन और वैज्ञानिक पद्धतिसे प्रभावित हुए है। इसके अतिरिक्त विचारोकी क्रम-बद्धता, और शैलीकी सरलता पाठकको उस खीजसे बचाते है, जो खोजकी पुस्तकोमे यास-अनायास आ पैठती है।

मध्यकालीन भारतीय इतिहासके ग्रन्थोमे प्रायः इस मान्यतापर बल दिया जाता रहा है कि हिन्दू साम्राज्यकी एक छत्र बड़ी इकाईका अन्तिम स्वामी सम्राट् हर्षवर्द्धन था, जिसकी मृत्यु सन् ६४७ ई०मे हुई। हर्षवर्द्धनके बाद भारतीय राष्ट्रका झडा शासकीय मेरुदडसे जो गिरा तो गिरा ही रहा। एकके बाद दूसरे विदेशी दल और वश आये-गये तथा हमारी धरा और ध्वजको रौंदते रहे—अरब, तुर्क, पठान, मुगल, अग्रेज! लगभग १३ शताब्दियो बाद, १५ अगस्त १९४७को ही, हमारा राष्ट्रध्वज फिर एक बार स्वतन्त्रताके वायुमडलमे लहरा पाया है।

पराधीनताकी इन १३ शताब्दियोंके लम्बे व्यवधानमे क्या सचमुच ही हमारा राष्ट्र धराशायी होकर अचेत पड़ा रहा? क्या यह कल्पना सच है? 'चौलुक्य कुमारपाल' पुस्तक शताब्दियोकी लम्बी खाईको कुछ इस तरह भरती है कि हम हर्षके बादकी ६ शताब्दियोके ध्वंसपर निर्मित नई खोज और नई प्रतीतिके ठोस धरातलपर पहुँच जाते है। जहाँ हमे १२वी शताब्दीकी उस गरिमासे साक्षात्कार होता है जो हमारे राष्ट्रकी सतत प्रवाहमयी जीवनी शक्तिका ज्वलत प्रमाण है।

जब हम सोचते है कि चौलुक्य कुमारपालने देशके ह्रासोन्मुख वातावरणकी तमसावृत छायामे अपने ३० वर्षके शासनकालमे साम्राज्यका इतना विस्तार किया कि तुर्किस्तानसे मालवदेश तक तथा काठियावाडसे कन्नौज तकके प्रदेश उसके आधीन हो गये तो हम उसकी शासन-योग्यता और अद्भुत पराक्रमसे प्रभावित होते है। कुमारपालकी साम्राज्य-परिधिमे कोकण, कर्नाटक, लाट, गुर्जर, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्धु, उच्चा, भम्भेरी, मारवाड, मालवा, मेवाड, कीर, जागल, सपादलक्ष, दिल्ली, जालन्धर महाराष्ट्र इत्यादि १८ प्रदेश सम्मिलित थे। और जब हमे इस बातका बोध होता है कि कुमारपालका ३० वर्षका शासनकाल उस समय प्रारम्भ हुआ, जब वह ५० वर्षका हो चुका था तो हमें उसकी अप्रतिम क्षमतापर आश्चर्य-चकित हो जाना पडता है। वास्तविक विस्मयकी बात तो इस महाप्राण मानवका सारे-का-सारा जीवन ही है जो दुर्द्धर्ष सघर्ष, अप्रतिहत प्रेरणा और अक्षय आस्थासे ओतप्रोत है। अग्नि और प्रभजनका यह दीप्तिपुज कहाँसे उठा, कहाँ-कहाँ पहुँचा और कहाँ-कहाँ मँडराया! किस प्रकार इसकी प्रतिभाके निर्माणकारी विस्फोटने दिग्दिगन्तको आगत-अनागतकी सुदूरवर्ती सीमाओ तक आलोकित कर दिया है! उड़ती हुई विहगम दृष्टि डालकर देखे।

कुमारपाल राजकीय कुलमे जन्मा तो किन्तु इस अभिशापके साथ कि उसके प्रपितामह भीमदेवने जिस बकुलादेवीको वरण करके कुमारपालके वंशकी परम्परा डाली थी, वह बकुलादेवी एक नर्तकी थी। कुमारपालके ताऊ सिद्धराज जयसिंहके सन्तान न थी। अतः स्पष्ट था कि जयसिंहके उपरान्त राज्य कुमारपालको मिलेगा। जयसिंहको यह अनुकूल नही जँचा कि उसका राज्य ऐसे भतीजेके हाथमें जाये जिसकी शिराओमें नर्तकी-

का रक्त है। लिपिबद्ध परम्परा साक्षी है कि जयसिंहने यहाँतक चाहा कि कुमारपालकी जीवन-बेलि सदाके लिए निर्मूल कर दी जाये। कुमारपाल अपने भविष्यके प्रति सशक हो गया और अपने बहनोई कृष्णदेवकी सहायता-से वह अनहिलवाडा छोडकर भाग खडा हुआ। जयसिंहकी इसी दुरभि-सन्धिकी भूमिकामेंसे कालान्तरमें कुमारपालकी अभिवृद्धिकी लता फूटी! पलायनके इसी क्षणसे कुमारपालने जगत् और जीवनकी खुली पोथीसे ज्ञानसचय प्रारम्भ कर दिया। बडौदा, भडौंच, कोल्हापुर, कल्याण, दक्षिणदेश, प्रतिष्ठान, मालवा आदि नाना देशो और नाना वेशोमें घूम-फिरकर कुमारपालने अनेक ज्ञानियो, साधुओ, राजाओ, मन्त्रियो और सैनिक भटोसे सम्पर्क स्थापित कर लिया। कष्ट भी अनेको झेले, क्योकि सिद्धराज जयसिंहके गुप्तचर बराबर पीछा कर रहे थे। कुमारपालने प्रवासमे रहते हुए अपनी जन्मभूमिसे भी बराबर सम्पर्क बनाये रखनेका प्रयत्न किया। यहाँतक कि एक बार जब वह स्वय साधुवेशमें अलहिणपुर पहुँचा तो जयसिंहको गुप्तचरो-द्वारा सूचना मिल गई। उस दिन जयसिंहके पिता कर्णदेवका श्राद्ध-दिवस था। जयसिंहकी आज्ञा हुई कि नगर-देहातके समस्त साधुओको तत्काल निमन्त्रित किया जाये; कोई छूटने न पाये। कुमारपालको भी साधुओकी पक्तिमे आ खडा होना पडा। जयसिंह बारी-बारीसे सबके चरण धोता और हाथपर दक्षिणा रखता। जब कुमार-पालके पास पहुँचा तो चरणोकी कोमलता और करतलकी रेखाओने कुमार-पालका आभिजात्य व्यक्त कर दिया। सकेत हो गया कि अनुष्ठानकी समाप्तिपर इस साधुको 'अतिथि' बना लिया जाये। कुमारपाल भी सचेत थे। अब सोचिये उस साहसको और प्रत्युत्पन्न बुद्धिको जिसके द्वारा कुमारपाल उस प्राणान्तक सकटसे बच भागे होगे।

कुमारपालके जीवनमे ऐसी अनेक घटनाएँ हैं जहाँ प्राणोकी संकटमय स्थिति प्राप्त होनेपर उसने अपने अपराजित शौर्य तथा युक्तिदक्षतासे ऐसी स्थितियोका निराकरण किया है। इस प्रकारकी सकटमय स्थिति एक बार उस समय आई जब कुमारपालने शासनका श्रीगणेश ही किया था। राज्य प्राप्त होते ही कुमारपालने सारी सत्ताको अपने व्यक्तित्वसे इतना प्रभावित कर दिया कि सामन्तोकी स्वेच्छा-चारिताको प्रतिबन्धोसे सीमित होना पडा। योजना बनी कि जिस समय राजाकी सवारी निर्दिष्ट द्वारपर

आये, नियुक्त हत्यारे उसपर टूट पडे। पर हत्यारोको यह अवसर न मिल पाया, क्योकि मालूम नही किस प्रेरणा या किस चर-व्यवस्थासे प्रभावित होकर कुमारपालने हाथीका मुँह दूसरे द्वारकी ओर उन्मुख कर दिया था। कुमारपालका अनलोद्धत व्यक्तित्व अनेक समकालीन राजाओके लिए भी ईर्ष्याका कारण बन गया था और भारी हो गया था। एक ओर सपादलक्षके चौहान राजा अण ने वर्तमान नागौरकी ओरसे चढाई की तो दूसरी ओरसे उज्जैनके राजा वल्लालने और तीसरी ओरसे चन्द्रावतीके अधिपति विक्रमसिहने आक्रमण कर दिया। इस षड्यत्रमें कुमारपालका प्रधान सैनिक बहड भी सम्मिलित हो गया, जिसकी शूरताका एक विशिष्ट अग यह था कि उसकी दहाडमे हाथी विचलित हो जाते थे। यहाँ तक कि कुमारपालका निजी हाथी कलहपचानन भी उस दहाडसे विकल हो उठता था। बहड ने कुमारपालके महावत कलिगको भी लोभ देकर फोड लिया। योजना निश्चित हुई कि युद्धक्षेत्रमे बहडकी दहाड सुनकर जब कुमारपाल-का हाथी कलहपचानन रोपसे आगे बढेगा तो महावत कलिग ऐसी स्थितिमें हाथीको ले आयेगा कि बहड अपने हाथीपरसे कूदकर कुमारपालके हाथीपर चढ आये और कुमारपालका वध आसानीसे सभव हो जाये। पर, यह सब सभव न हो पाया, क्योकि जब युद्धक्षेत्रमे बहडका हाथी कुमारपालके हाथीके मुकाबलेमे आया और बहडने ज्योही छलाग मारकर कुमारपालके हाथीपर आना चाहा तो पाया कि कुमारपालका हाथी पीछे हटा लिया गया था क्योकि कलिगका स्थान किसी दूसरे महावतने ले लिया था, और बहडकी दहाडको लक्ष्य करके प्रतिरक्षा रूपमे हाथीके कानोपर पट्टी बँधी हुई थी। बहड दो हाथियोके बीच आकर कुचला गया और कुमारपालकी विजय हुई।

वीरत्व तो मानो कुमारपालकी धमनियोमे प्रवाहित था। जयसिह-की मृत्युके बाद जब राजसिहासनके दो प्रतिद्वन्द्वियोमेसे एकका चुनाव होना था तो परिषद्के सचालक-द्वारा यह प्रश्न पूछे जानेपर कि राज्यकी रक्षा किस नीति-द्वारा होगी, जहाँ कुमारपालके प्रतिद्वन्द्वीने विनीत भावसे यह कहा था कि 'जिस प्रकार आप नीति-निपुण महानुभाव मार्ग-दर्शन करेगे' वहाँ तेजस्वी कुमारपालने स्फूर्तिसे खडे होकर, छाती तानकर, उक्त प्रश्नके उत्तरमे अपनी तलवार ऊँचे उठा दी थी और कहा था 'राज्य-की रक्षा मेरी भुजाओके बलपर आश्रित यह तलवार करेगी।' इसी

वीरत्वका दूसरा पहलू था आत्मसम्मान जो कभी-कभी अत्यन्त कठोर रूपमे व्यक्त होता था। कुमारपालका वीरत्व राज्यके प्रति अपमान भावको तो क्या व्यग्य को भी नही सहन कर पाता था। कुमारपालके बहनोई जिस कृष्णदेवने उसकी पग-पगपर सहायता की थी, यहाँ तक कि उसे राजगद्दी दिलवाई थी, उस कृष्णदेवको कुमारपालने इसलिए प्राण-दण्ड दे दिया कि वह कुमारपालको बार-बार व्यग्य बाणोंसे आहत करता था और उसकी पूर्वावस्थाकी खिल्ली उडाया करता था। 'दीपकको मैंने जलाया है, इसलिए क्या उसमे मुझे अपनी उँगली दे देनेकी धृष्टता करनी चाहिए ?' यह तथ्य कृष्णदेवने न समझा, इसीलिए दीपककी ज्वालाने उसे भस्म कर दिया। एक और घटना लीजिए। कुमारपाल-द्वारा बार-बार वर्जन करनेपर भी कोकणका राजा मल्लिकार्जुन अपने लिए 'राज्यपितामह'की उपाधि प्रयुक्त करता रहा। अन्तमे एक दिन यह होकर ही रहा कि कुमारपालके सेनापति अम्बडने मल्लिकार्जुनके छिन्न सिरको स्वर्णपत्रमे लपेटकर श्रीफलकी भाँति कुमारपालकी सेवामे उस समय प्रस्तुत किया जब ७२ राजा राजसभामे उपस्थित थे। कुमारपालकी दृष्टि इतनी तल-स्पर्शी थी और न्यायबुद्धि इतनी कठोर कि शासनके अग-उपागोको सदा ही स्वस्थ और तत्पर रहना पडता था। कोई भी कही चूका और कुमारपालकी कठोर दृष्टि उसपर पडी। 'राजघटत्ता' चहड इसका उदाहरण है। जिस बहडका ऊपर उल्लेख हो चुका है, उसका छोटा भाई चहड सदा ही कुमारपालका आज्ञानुवर्ती रहा। चहडके सेना-पतित्वमे साभरपर इसलिए चढाई की गई कि साभर राज्यकी सेनाएँ कुमारपालके प्रतिपक्षियोकी सहायता करती थी। चहडने साभरको जीत तो लिया किन्तु अत्यधिक व्ययके उपरान्त। कुमार-पालका आदेश हुआ कि चहडको 'राजघटत्ता'की उपाधि दी जाये! दण्डविधानके इतिहासमे कुमारपालकी यह सूझ भी अविस्मरणीय होनी चाहिए।

महान् व्यक्तियोका चरित्र एकागी नही होता। कुमारपाल कूट-नीतिके क्षेत्रमे जितना कठोर था, जीवनके धरातलपर वह उतना ही सहृदय और कोमल भी। कुमारपालके वैचित्र्यपूर्ण चरित्रका अनुमान इस बातसे लग जायगा कि जिस 'पितामह'की उपाधि-प्रयोगकी उद्दडताके फल-स्वरूप

मल्लिकार्जुनको प्राणोंसे हाथ धोना पडा, वही 'पितामह'-उपाधि कुमारपालने उस वणिक सुभट अम्बडको प्रदान कर दी, जिसकी लपलपाती तलवारने मल्लिकार्जुनके सिरको कमल-पुष्पकी भाँति काट दिया था। शासन-सचालनकी सुचारुता और राजकीय सगठनकी दृढ़ताके लिए कुमारपालने जो व्यवस्था की थी, वह इतनी पूर्ण, व्यापक तथा निर्दोष है कि उसमें आजकी गणतन्त्रात्मक आधुनिकताका आभास मिलता है। पुस्तकमें यथास्थान इसका विस्तृत विवरण मिलेगा।

कुमारपालके जीवनमे यदि हमने सघर्ष, पराक्रम, कूटनीति, शासकीय योग्यता और विजय ही देखी तो मानना चाहिए कि हमने उसकी महानता और सफलताका अधिकाश उपेक्षित कर दिया। कुमारपालकी महानता इस बातमें है कि उसने राजनीतिको कठोर वस्तुस्थिति और याथार्थ्यके आधारपर सचालित करते हुए भी, प्रजाके व्यावहारिक जीवनको सामूहिक अहिसा, जीवदया, करुणा और चरित्र-गत निर्मलताके आधारपर स्थापित किया। स्वय जैन-धर्मावलम्बी होते हुए भी अपने राज्यमे इतनी उदार सहिष्णुता बरती कि प्रजाका मन मोह लिया। यही कारण है कि उसके नामके साथ जहाँ एक ओर जैन-धर्म-सूचक 'परम-भट्टारक' और 'आर्हत' उपाधियोका प्रयोग होता है, वहाँ दूसरी ओर अनेक शिला-लेखोमे उसे 'उमापति-वरलब्ध'की उपाधिसे भी स्मरण किया गया है। वास्तवमें गुजरातकी सास्कृतिक परम्परामे यह बात सहज-सिद्ध हो गई थी कि वहाँ जैन-धर्म और शैव-धर्म साथ-साथ रहते थे और फलते-फूलते थे। यो तो शिव और शैव-धर्म, अपने प्राचीन-तम मूल रूपमे 'जिन' और 'जिन धर्म'के ही परिवर्तित रूप हैं, किन्तु कालान्तरके अति परिवर्तित रूपमें भी और दक्षिण-भारतके रक्त-रजित धार्मिक सघर्षोंके दिनोमें भी गुजरातने दोनो धर्मोंकी पारस्परिक सहिष्णुताको प्राय अक्षुण्ण रखा है।

हमारे आजके युगमे महात्मा गाधी-जैसी सर्व-धर्म सहिष्णु, अहिसोपासक विभूतिका गुजरातमे ही प्रादुर्भाव होना कोई आकस्मिक घटना नही। ऐसे अशेष मानवतावादी राजनीति-नियता ऋषिको जन्म देनेकी पात्रता गुजरातकी ही सस्कृति-पूत गौरवमयी धरामे विशेष रूपसे थी। प्रागैतिहासिक कालके परमयोगी कृष्ण और तीर्थंकर नेमिनाथ, १२वी शताब्दीके राजर्षि कुमारपाल और २०वी शताब्दीके महात्मा गाँधी

एक ही विशिष्ट सास्कृतिक परम्पराके अविच्छिन्न अग है।

यद्यपि यह ग्रन्थ कुमारपालकी ऐतिहासिक महत्ता और उसके जीवनकी गौरव-गरिमाका बखान करता है, किन्तु वास्तव बात यह है कि कुमारपाल स्वय एक महत्तर ज्योतिपुजकी छाया मात्र है। वह तो एक कण है जो किसी प्रचड प्रतिभाके लीला-विलाससे धरापर छिटक पड़ा है। उस ज्योतिपुज और मूर्त प्रतिभाका नाम है—आचार्य हेमचन्द्र जिन्हे 'कलिकाल सर्वज्ञ' कहा गया है। इनके सम्बन्धमे कहा गया है :—

"क्लृप्तं व्याकरणं नवं विरचितं छन्दो नवं द्वयाश्रया-
ऽलङ्कारौ प्रथितौ नवौ प्रकटितं श्रीयोगशास्त्रं नवम्।
तर्कः संजनितो नवो जिनवरादीनां चरित्रं नवं
बद्धं येन न केन के न विधिना मोहः कृतो दूरतः॥"

आचार्य हेमचन्द्रकी जिस विचक्षण प्रतिभा द्वारा प्रसूत नये-नये प्रणयनोका सकेत ऊपरके श्लोकमे दिया गया है उनकी सक्षिप्त सूची इस प्रकार है —

व्याकरणग्रन्थ.—सिद्ध हेम व्याकरण, सिद्ध हैम लिंगानुशासन, धातुपरायण।
शब्दकोश—अभिधानचिन्तामणि, अनेकार्थसग्रह, निघटुकोष, देशी नाममाला
अलंकारग्रन्थ—काव्यानुशासन **छन्दग्रन्थ**—छन्दोनुशासन
काव्यग्रन्थ—सस्कृत, प्राकृत द्वयाश्रयकाव्य
जीवनचरित्र—त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र
दर्शन-योग गुह्य—प्रमाणमीमासा, योगशास्त्र

इतना ही नही। आचार्य हेमचन्द्रकी गणना भारतके महानतम ज्योतिषियोमे होती है। राजनीति और कूटनीतिके तत्त्वोका ज्ञान भी उनका इतना विशाल और उन तत्त्वोके सफल प्रयोगकी जन्मजात प्रतिभा भी इतनी अद्भुत थी कि देखकर चकित हो जाना पडता है। उनका जीवन सर्वथा अकिंचन, नि.स्व, तप.पूत और कल्याण-विधायक था ही। मनमें एक कल्पना उठती है। आचार्य चाणक्यकी प्रतिभाको धर्मकी प्रेरणासे परिचालित करके, अपार ज्ञान और दर्शनकी बहुमुखी उपलब्धियोसे पूरित करके एव अद्भुत भव्यताके आलोकसे परिवेष्टित करके जिस प्रणम्य पुरुषकी कल्पना हम करेगे वह सम्भवतया आचार्य हेमचन्द्रके व्यक्तित्वकी झलक दिखा सके। इन्ही आचार्य हेमचन्द्रका वरदहस्त

कुमारपालके शीषपर सदा रहा है। इन्हीके उपदेशोसे प्रभावित होकर कुमारपालने अपने राज्यमें हिंसाका निषेध किया; द्यूत, मासाहार, मृगया आदि व्यसनोंसे पराङ्मुख होनेकी प्रेरणा प्रजाको दी। नि.सन्तान पुरुषकी मृत्युके बाद उसका धन-धाम राजकोषमें चले जानेकी परम्परागत नीतिके कारण विधवाओंकी जो दुर्दशा होती थी, उससे द्रवित होकर कुमारपालने उस प्रथाको बन्द करवाया। कुमारपालने प्रजाकी शिक्षा-दीक्षाका समुचित प्रबन्ध किया; औषधालयो, देवालयो, पान्थशालाओ और कूप-तडागोका निर्माण करवाकर जनताको अनेक प्रकारकी सुख-सुविधाएँ प्रदान की। कुमारपालके शासनमें न कभी दुर्भिक्ष पडा, न कोई महामारी सघातक रूपसे फैली। अभिनव साहित्य-सृजन, कलात्मक निर्माण, सास्कृतिक अभ्युत्थान, आर्थिक सवर्धन, धार्मिक सहिष्णुता, प्रजारजन आदि सभी दिशाओंमें कुमारपालके शासनकी सफलता परिलक्षित होती है।

विद्वान् लेखकने समस्त इतिवृत्तको अधिक-से-अधिक प्रामाणिक बनानेका प्रयास किया है। यदि परम्परागत ग्रन्थ-सन्दर्भों एव प्रचलित जन-श्रुतियोके आधारपर कही किसी ऐसी प्रतीतिका रसोद्रेक हो गया हो जो इतिहासके शुष्क ठोसपनको मासल बनाता हो तो लेखक और ग्रन्थमाला-सम्पादक आलोचकोंकी सहानुभूति चाहेगे। इतिहासकी नई लीक डालनेवालोके लिए जो व्यक्ति श्रमिकोके अग्रिम दलकी भाँति रास्ता साफ करनेका काम करे, उनपर उतना ही तो उत्तरदायित्व डाला जा सकता है जितनी उनकी क्षमता हो।

इतनेपर भी हम आश्वस्त है कि भारतीय ज्ञानपीठका यह प्रकाशन इतिहासवेत्ताओ और साधारण पाठकोकी दृष्टिमें उसी प्रकार समादृत होगा, जिस प्रकार उत्तरप्रदेशीय सरकारकी दृष्टिमें हुआ है।

लखनऊ
शरत् पूर्णिमा
१९५४

लक्ष्मीचन्द्र जैन
सम्पादक
लोकोदय ग्रन्थ माला

विषय-क्रम

तृतीय अध्याय

चौथा अध्याय

पाँचवाँ अध्याय

छठां अध्याय

सातवां अध्याय

आठवाँ अध्याय

नौवाँ अध्याय

ग्रंथमें व्यवहृत संक्षिप्त नाम

ए० के० के० एटीक्यूटीज आव कच्छ एंड काठियावाड।
ए० ए० के० आइन-ए-अकबरी।
ए० एस० आई० डब्लू० सी० आर्कलाजिकल सर्वे इंडिया वेस्टर्न सर०।
बी० एच० जी० बेली हिस्ट्री आव गुजरात।
बी० जी० . बम्बई गजेटियर।
बी० पी० एस० आई० प्राकृत एंड सस्कृत इन्सक्रिपशन्स।
डी० एच० एन० आई० . डाइनेस्टिक हिस्ट्री आव नारदरन इंडिया।
आर० ए० आर० बी० पी० रिवाइज्ड एंटीक्वेरियन रिमेन्स बाम्बे प्रेसि०।
एच० एम० एच० आई : हिस्ट्री आव मेडिवियल हिन्दू इण्डिया।

आमुख

भारतीय इतिहासके समुचित निर्माणके लिये दो बातें बहुत ही आवश्यक हैं—(१) विभिन्न प्रदेशों और स्थानोंके इतिहासमें विस्तृत और प्रामाणिक अनुसंधान और शोध तथा (२) भारतीय इतिहासके प्रमुख महापुरुषों और व्यक्तियोंके चरित्र तथा इतिहासका विशद वर्णन और विवेचन। इन दोनों क्षेत्रोंमें जितना ही अधिक कार्य होगा देशका इतिहास उतना ही पूर्ण और विश्वसनीय लिखा जा सकेगा। चौलुक्य कुमारपालका इतिहास इस दिशामें एक महत्त्वपूर्ण प्रणयन है। विशेषकर हिन्दी भाषामें इस प्रकारके ग्रंथोंकी अभी तक कमी है और प्रस्तुत ग्रंथ इस अभावकी पूर्ति करता है।

इतिहास-लेखनमें दृष्टि और पद्धतिका प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है। इतिहासके उद्देश्य, क्षेत्र, सीमा और परिधिमें इधर बहुतसे परिवर्तन हुए हैं। जागरुक लेखक ही सफल इतिहासकार हो सकता है। प्रस्तुत लेखककी चेतना इस दिशामें जागृत है। उन्होंने इतिहासके मूल उद्देश्य—अतीतका सच्चा चित्रण, आकलन तथा मूल्यांकन—को सामने रखकर तथ्योंका संकलन, चयन और परीक्षण करते हुए कलात्मक ढंगसे अपने विषयका प्रतिपादन किया है। इतिहासका कलापक्ष ही उसे मानवके लिये अधिक आकर्षक और उपयोगी बनाता है। कला-पक्षके निर्वाहके साथ इस ग्रंथमें वैज्ञानिक पद्धतिका अवलम्बन किया गया है। सभी उपलब्ध सामग्रियोंका संकलन, चयन और परीक्षण निष्पक्ष भावसे हुआ है। वास्तवमें इतिहासकी यही आधारशिला है, जिसके ऊपर उसकी विशाल कलात्मक अट्टालिकाका निर्माण संभव है। लेखकने अपने इस दायित्वको भी सफलताके साथ निभाया है।

चौलुक्य कुमारपाल भारतके मध्यकालीन शासकोंमें प्रमुख थे।

गजनीके तुर्कोंके आक्रमणके प्रथम वेगसे पश्चिमोत्तर और पश्चिम भारतको काफी आघात पहुँचा था। यह राजनैतिक विश्रृंखलता तथा सामाजिक सकीर्णताका युग था। ऐसे समयमें कुमारपालने अपनी प्रतिभा, सैनिक बल, शासकीय योग्यता तथा सास्कृतिक उदारतासे देशके स्तम्भनका बहुत बडा कार्य किया। युगकी सीमाके बाहर निकलना उनके लिये संभव नही था, फिर भी उनका जीवन और उनके कार्य कई दृष्टियोसे महत्वपूर्ण हैं। ऐसे पुरुषके जीवन और कार्यों और उसके युगकी प्रवृत्तियोका चित्र प्रस्तुत कर लेखकने महत्त्वका कार्य किया है और वे हमारे साधुवादके पात्र हैं। यह ग्रथ विद्वन्मण्डली तथा जनतामे समान रूपसे अभिनन्दनीय है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
आषाढ शुक्ल ७,
स० २०११ वि०

राजबली पाण्डेय
एम०ए०, डी०लिट्
प्रिंसिपल, इण्डोलाजी कालेज तथा
अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास तथा सस्कृति

भूमिका

भारतके मध्यकालीन इतिहासमें महाराजाधिराज परमभट्टारक चौलुक्य कुमारपालका विशिष्ट महत्त्व है। सम्राट् हर्षवर्द्धनके पश्चात् चौलुक्य कुमारपाल बारहवी शतीमें भारतके अन्तिम हिन्दू सम्राट् हुए, जिन्होंने पश्चिमोत्तर तथा पश्चिमी भारतकी व्यापक राज्यसीमामें एक शासनसूत्र और सार्वभौम राजतन्त्रकी स्थापना की। मध्यकालीन भारतीय इतिहासमें इतनी बृहत् और विशाल राजनीतिक इकाई एक शासकके अधीन पुनः दृष्टिगत नही होती। चौलुक्य कुमारपालकी राज्यसीमा आधुनिक गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, दक्षिण राजपूताना, मालवा और सिन्ध तक विस्तृत थी। तुर्क-आक्रमणोंके परिणामस्वरूप कालान्तरमें जो पराधीनता आयी, उसके पूर्व भारतीय गौरव, शौर्य, वैभव और विपुलताकी अन्तिम झाकी, इसी कालमे दृष्टिगोचर हुई। वस्तुतः इस समय चौलुक्य साम्राज्यका विस्तार चरमसीमापर पहुँच गया था।

कुमारपालका राजत्वकाल (सन् ११४२–११७३ ईस्वी) तथा उसका युग साम्राज्य-विस्तार अथवा सफल सैनिक अभियानोंकी शृंखलाके ही कारण महत्त्वपूर्ण हो, ऐसी बात नही। राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा सास्कृतिक सभी दृष्टियोसे उसकी विशेष महत्ता है। यथार्थतः कुमारपालका शासनकाल और युग, देशमे नवीन राष्ट्रीय चेतना, नव सामाजिक सुधार, कलापूर्ण निर्माण तथा साहित्यिक-सांस्कृतिक पुनर्जागरणके युगारम्भकी दृष्टिसे, भारतीय इतिहासमे विशिष्ट स्थान रखता है। पश्चिम और पश्चिमोत्तर भारतमे तुर्क-आक्रमणोके प्रथम प्रहारसे जो राजनैतिक विशृंखलता व्याप्त हो गयी थी, उसे दूर करनेमे कुमारपाल बहुत अर्थों तक सफल हुआ। यही कारण था कि उसके

उत्तराधिकारियोंने गोरीके गुजरातपर आक्रमणका सफलतापूर्वक प्रतिरोध कर उसे पराजित किया। इस कालमें केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारोंका सुव्यवस्थित संघटन था तथा प्रशासनके विविध अंगोंकी समुचित व्यवस्था विद्यमान थी।

धर्म और संस्कृतिके अभ्युत्थानकी दृष्टिसे भी इस युगका कुछ कम महत्त्व नहीं। जैन धर्मका अभिनव प्रवर्तन और प्रचार इस युगकी विशेष घटना है। जैनधर्मका यह उत्कर्ष किसी कटु भावनाके साथ नहीं, अपितु अद्‌भुत एवं असाधारण धार्मिक सहिष्णुता और सद्भावना-सहित हुआ। गुजरातमें इस समय जैनधर्मके साथ शैव तथा अन्य सम्प्रदायोंकी भी उन्नति होती रही। जैनधर्म भारतीय संस्कृतिका अभिन्न अंग हो गया। इसने देशके कोटि-कोटि जनोंके संस्कारों-विचारोंको शताब्दियों पर्यन्त प्रभावित किया। छ सौ वर्षोंके पश्चात् पश्चिमी भारतके इसी भूखण्डमें, महात्मा गान्धी जैसी युगावतार भारत-विभूतिका प्रादुर्भाव हुआ, जिसने देशमें अपने अहिंसा सिद्धान्तसे अभिनव क्रान्तिकी और राष्ट्रका कायापलट कर दिया। देखा जाय तो राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिमें, अहिंसा-सिद्धान्तके इस नूतन प्रयोग एवं विकास-परम्पराका बहुत कुछ श्रेय, बारहवीं शताब्दीमें हुए इस धार्मिक-सांस्कृतिक अभ्युत्थानको ही है।

सामाजिक नवजागरणमें चौलुक्य कुमारपालका शासनकाल एक नवीन सन्देशका वाहक रहा है। इस समय समाजमें प्रचलित हिंसा, मद्यपान, मांसाहार, द्यूत आदि व्यसनोंपर कठोर नियम बनाकर नियन्त्रण एवं प्रतिबन्ध लगाये गये जो आधुनिक जनसत्तात्मक सरकारों जैसे प्रगतिशील विधानोंसे अद्‌भुत साम्य रखते हैं। कुमारपालने मृतधनापहरण नियमका निषेध किया जिसके द्वारा निःसन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर राज्यका अधिकार हो जाता था। आर्थिक दृष्टिसे यह काल, वैभव सम्पन्नता और समृद्धताका युग था। गुजरात, काठियावाड और कच्छके बन्दरगाहोंमें आयात-निर्यात व्यापारके निमित्त, देश-विदेशके व्यापारिक पोत आते

थे। चौलुक्य साम्राज्यकी राजधानी, इस समय संसारके व्यापारका केन्द्र बनी हुई थी। देशमें शान्ति और सम्पन्नताके फलस्वरूप इस समय भव्य मन्दिरो तथा विशाल जैन विहारोंके प्रचुर सख्यामें निर्माण हुए, जिनके अवशेष आज भी स्थापत्य और शिल्पकलाके उत्कृष्ट निदर्शन है। आबूके ससार-प्रसिद्ध जैन मन्दिर इसी युगकी निर्माणकलाके नमूने है। विमलशाह (सन् १०३१ ई०) और तेजपाल (सन् १२३० ई०) द्वारा निर्मित आबू पहाड़पर श्वेत सगमरमरके मन्दिर चौलुक्यकालीन शिला-सौन्दर्य और स्थापत्य-कलाके चरम विकासके सजीव उदाहरण है। आबू पर्वतपर इन मन्दिरोके निर्माणके लिए शिलाखण्डो तथा अन्यान्य साधनोका एकत्रीकरण और निर्माण, इस युगकी असाधारण निर्माण-दक्षता तथा शिल्प-कौशलके परिचायक है।

कुमारपालने सैकडो मन्दिरो तथा विशाल विहारोका निर्माण कराया, जिनमेंसे अनेक आज भी विद्यमान है। इतिहास-प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिर-का पुनर्निर्माण कुमारपालके शासनकालकी चिरस्मरणीय घटना है। इनके अवशेष आज भी उस कालकी कलाका स्मरण दिलाते है, जो राष्ट्रके गर्व और गौरवकी वस्तु है। चौलुक्यकालीन गुजरात तथा पश्चिमोत्तर भारतकी विभिन्न कलानिधियां बहुत दिनों तक उपेक्षा और उदासीनताके फलस्वरूप अनादृत पडी हुई थी। हर्षका विषय है कि अब इनकी सुरक्षा और सरक्षणका महत्त्व समझा जाने लगा है। जैन भण्डारोमें पडी अमूल्य तथा दुर्लभ सामग्री अब प्रकाशमे आने लगी है। इस युगकी कला-कृतिया केवल गुजरातमें ही नही, अपितु राजस्थान मण्डलमें भी विस्तृत एव विकीर्ण है। गुजरात, मालवा, मेवाड, पूर्व खानदेश आदिके व्यापक क्षेत्रमे इस युगकी कला-रचनाए पायी जाती है। सिद्धपुर स्थित रुद्र-महालयके ध्वसावशेषमे विद्यमान, नृत्य करती हुई मूर्तियोंके समान ही आकृतिया, आबूके निकट देलवाड़ाके स्तम्भोंपर भी निर्मित है। तारंगा पहाड़ीपर कुमारपाल द्वारा बनवाये विशाल अजितनाथ मन्दिरके पृष्ठ-

भागमें बनी संगमरमरकी जालिया शिल्पकला और कौशलकी उत्कृष्टतम निदर्शन है। इसी प्रकारकी सगमरमरकी जालिया अनेक शताब्दियोंके पश्चात् सुलतानोके कालमे बनी मसजिदोंमें भी पायी जाती है। इससे चौलुक्यकालीन शिल्पकलाकी श्रेष्ठताका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

साहित्यके क्षेत्रमे महान् आचार्य हेमचन्द्र, सोमप्रभाचार्य, यशपाल, जयसिंह सूरि आदिकी सतत साधनाने एक नवीन साहित्यिक चेतना और जागृतिके अध्यायका समारम्भ किया। आचार्य हेमचन्द्रके नेतृत्व एवं निर्देशमे इस समय साहित्य-निर्माणके महान् यज्ञका अनुष्ठान हुआ। इस समय लिखे प्रभूत ग्रथोकी ताडपत्रीय प्रति तथा पाण्डुलिपिया पाटन तथा अन्य जैन भण्डारोमे भरी पडी है। अब इनकी सहेज-सभाल हो रही है और अनेक ग्रथोका प्रकाशन भी हो रहा है। सस्कृत और प्राकृत भाषामे प्रभूत साहित्य निर्माणके साथ, इसी समय नागरीका जन्म एव विकास भी हुआ। इस समय व्याकरण, नाटक, काव्य, दर्शन, वेदान्त, इतिहास आदि के ग्रन्थोके प्रणयन हुए। इनमें आचार्य हेमचन्द्रके व्याकरणका अत्यधिक महत्त्व है।

जैन भण्डारोसे प्राप्त ताडपत्रीय प्रतियों तथा पाण्डुलिपियोमे इस कालमे हुई महत्त्वपूर्ण साहित्य-रचना तथा चित्रकलाके विकासका भली प्रकार परिचय प्राप्त होता है। इन्ही ताडपत्रीय प्रतियोमे चौलुक्य कुमार-पाल तथा आचार्य हेमचन्द्रके चित्र प्राप्त हुए हैं। पाटनके सघवीणा भण्डारसे प्राप्त महावीरचरित्रकी ताड़पत्रीय प्रति (वि० स० १२९४)में चौलुक्य कुमारपाल तथा जैन महापण्डित आचार्य हेमचन्द्रके लघु प्रतिकृति चित्र मिले हैं। इसी प्रकार शान्तिनाथ भण्डारसे प्राप्त दशवैकालिका लघुवृत्तिकी सन् ११४३ ई०की ताडपत्रीय प्रतिमें चौलुक्य कुमारपाल तथा हेमचन्द्राचार्यके लघुचित्र अकित है। महावीरचरित्रकी प्रतिमे हेमचन्द्राचार्य अपने शिष्योके मध्य सिंहासनारूढ है। उनके पीछे एक

शिष्य हाथमें वस्त्र लिये हुए आचार्यकी अभ्यर्थनामें खड़ा है। आचार्यके सम्मुख एक शिष्य पुस्तक लेकर शिक्षा ग्रहण कर रहा है। चौलुक्य कुमारपालका चित्र भी इसी ताड़पत्रीय प्रतिमें अंकित है। इसमे कुमारपाल हेमचन्द्राचार्यके सम्मुख अभ्यर्थनाकी मुद्रामें बैठे हैं। वह आचार्य हेमचन्द्रसे उपदेश ग्रहण कर रहे है। वस्त्रयुक्त उनके दोनों हाथ उठे हुए है। दाहिना पैर भूमिपर स्थित है, बाया भूमिसे कुछ उठा हुआ है। वह नीले वर्णका जरीदार वस्त्र धारण किये हुए हैं। इसी युगकी चित्रकलाकी परम्परामें कल्पसूत्र भी आते हैं। इनकी कलात्मकता और श्रेष्ठता सर्वविदित है। वस्तुतः साहित्य और विभिन्न कलाओका इस युगमें सर्वतोमुखी अभ्युदय एव उत्कर्ष हुआ।

इन विवरणो तथा तथ्योसे स्पष्ट है कि बारहवी शताब्दीके भारतीय इतिहासमे गुजरातके चौलुक्य महान् शक्तिशाली और प्रभुसत्ता सम्पन्न शासक थे। इनमे सिद्धराज जयसिंह और कुमारपालके शासनकाल अत्यधिक महत्त्वके हैं। कुमारपालने तो अपनी राज्यसीमा पूर्वमें गंगा तक विस्तृत-विस्तीर्ण कर ली थी। ऐसे शक्तिशाली साम्राज्यके निर्माता और ऐतिहासिक महापुरुषका, शिलालेखो तथा नवीन ऐतिहासिक अनुसन्धानोके आधारपर, वैज्ञानिक पद्धतिके अनुसार विस्तृत एव व्यवस्थित इतिहास-लेखन, युगकी माग है। भारतीय इतिहासके उज्ज्वल नक्षत्रो और महान् राष्ट्र-निर्माताओका स्वरूप अब भी अज्ञात तथा रहस्यमय वना रहे, यह उचित नही। राष्ट्रीय पुनर्जागरणके इस युगमें आवश्यक है कि भारतके गौरवशाली अतीतके राष्ट्रनिर्माताओके इतिहास, अनुशीलन और शोधके अनन्तर वैज्ञानिक पद्धतिपर लिखे जायं। प्रस्तुत ग्रन्थका प्रणयन इसी दिशामें एक प्रयत्न है। इसके लेखनमें मेरुतुग, हेमचन्द्र, सोमप्रभाचार्य, यशपाल तथा जयसिंहके सस्कृत-प्राकृत भाषामें रचित ग्रंथोंके अतिरिक्त, कुमारपालसे सम्बन्धित उन बाईस शिलालेखोंकी भी सहायता ली गयी है जिनसे इस इतिहासपर सर्वथा नवीन प्रकाश पड़ता

है। इसके साथ ही तत्कालीन स्मारको, मन्दिरो और विहारोंके अवशेष भी मिले हैं, जिनसे कुमारपाल और उसके युगके इतिहास-लेखनमें बड़ी सहायता प्राप्त हुई है। अनेक मुसलिम लेखकोके विवरणोंमें भी कुमारपाल और उसके समकालीन इतिहासका उल्लेख मिलता है। चौलुक्य शासकोंके सिक्के दुर्लभ और अप्राप्य है। उत्तरप्रदेशमे एक स्वर्णमुद्रा प्राप्त हुई है, जो जयसिंह सिद्धराजकी बतायी जाती है। कुमारपालीय मुद्राका भी उल्लेख मिलता है। इस सम्बन्धमें पाटन, सहस्रलिंग तालाब आदिके निकट उत्खननसे नवीन प्रकाशकी आशा की जाती है।

यह तो हुई पुस्तकके अतरंगकी बात। अब इसके बहिरंगपर भी सक्षेपमें चर्चा हो जानी चाहिए। चौलुक्य कुमारपालके इतिहासको सहज और रसमय बनानेके लिए तत्कालीन कलाके अवशेषोके अनुकृति चित्र प्रत्येक अध्यायके प्रारम्भमे दिये गये हैं। ये चित्र उस अध्यायमे वर्णित विषयके द्योतक तो है ही, तत्कालीन कलाकी झाकी भी प्रस्तुत करते है। प्रथम अध्यायमे सोमनाथ मन्दिर तथा तत्कालीन पाण्डुलिपिका अंकन है तो द्वितीयमे समुद्र, चन्द्रमा और कुमुदिनी प्रतीकात्मक रूपसे चौलुक्योके चन्द्रवशी होनेका परिचय देते हुए उनकी उत्पत्तिका सकेत करते हैं। तृतीय अध्यायके प्रारम्भका चित्र तत्कालीन समाजमे शिक्षाके स्वरूप और पद्धतिका परिचायक है। जैनमुनि किस प्रकार उस समय अध्यापन करते थे, इसका अकन इसमें हुआ है। चतुर्थ अध्यायका चित्र कुमारपालके समयके राजदरबार तथा वेश-भूषाके वर्णनके आधारपर प्रस्तुत किया गया है। इसकी पृष्ठभूमिमें देलवाडा मन्दिरके कलापूर्ण स्तम्भोकी अनुकृति प्रदर्शित है। पाचवे अध्यायमे चौलुक्यकालीन चित्रोके आधारपर सैनिक अभियानका स्वरूप अकित है और तत्कालीन अस्त्र-शस्त्र चित्रित किये गये हैं। छठें अध्यायके चित्राकनमें छत्र, सिंहासनके साथ, राजमुकुट और राजशक्तिकी प्रतीक तलवार अकित है। इस चित्रमें अलकरण और वेशभूषा तत्कालीन वर्णनके आधारपर है। सातवें

अध्यायमें व्यापारिक पोत, ध्वजा-पताका युक्त भवनोंका चित्रण कर जहां उस कालकी आर्थिक सम्पन्नताका संकेत किया गया है, वहीं एक ओर तत्कालीन साहित्यमें वर्णित स्त्रियोकी वेशभूषा, वस्त्र-सज्जा तथा अलकारोंकी रूपरेखा अकित है। आठवें अध्यायका चित्र विश्वप्रसिद्ध देलवाड़ा मन्दिरके श्वेत संगमरमरकी कलापूर्ण भीतरी छतकी अनुकृति है। साहित्य और कलाके नौवें अध्यायका प्रारम्भ, वीणा पुस्तकधारिणी सरस्वतीके चित्रसे हुआ है। अन्तिम और दसवें अध्यायके प्रारम्भमें आबू पहाड़ स्थित जैन मन्दिरमें श्वेत सगमरमरकी अलकृत मेहराब है, जो चौलुक्यकालीन शिल्पकौशलका उत्कृष्ट निदर्शन है।

अन्तमें जिन विद्वानो और महानुभावोकी प्रेरणा, निर्देश तथा परामर्शसे इस ग्रथको प्रस्तुत करनेमे मुझे सहायता मिली है, उनके प्रति मै हार्दिक आभार प्रकट करता हू। उत्तरप्रदेश राज्य सरकार तथा उसकी हिन्दी समितिने सन् १९५२ ई०में इस ग्रथकी पाण्डुलिपिपर ७००)का पुरस्कार प्रदान कर जो प्रोत्साहन दिया है, उससे मुझे बडा बल मिला है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके इण्डोलाजी कालेजके प्रिन्सिपल तथा प्राचीन भारतीय इतिहास और सस्कृतिके प्रधान श्रद्धेय डाक्टर राजबली पाण्डेय, एम० ए०, डी० लिट्०ने आमुख लिखने तथा ग्रंथ-लेखनके समय सतत निर्देश देनेकी जो महती कृपा की है, उसके लिए मै उनका परम कृतज्ञ हूं। आचार्य पण्डित विश्वनाथप्रसादजी मिश्रने, हेमचन्द्रके तथा कुमारपाल सम्बन्धी अन्य सस्कृत-प्राकृत ग्रथोका बोध न कराया होता तो यह ग्रथ इस रूपमें प्रस्तुत हो पाता, कहना कठिन है। लोकोदय ग्रथमालाके विद्वान् और यशस्वी सम्पादक बन्धुवर श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैन, एम० ए०ने इसे सुन्दर, सुपाठ्य और अद्यतन बनानेके लिए जिस सलग्नता और श्रमसे इसकी पाण्डुलिपिका अध्ययन कर परामर्श दिया तथा भारतीय ज्ञानपीठके मन्त्री साहित्य-मर्मज्ञ आदरणीय श्री गोयलीयजीने, इस ग्रंथमें तत्कालीन कलाके चित्रोंको सम्मिलित करनेकी सुझाव-सुविधा प्रदान कर, पुस्तकके सुन्दर

मुद्रणकी व्यवस्था की—इसके लिए मैं इन दोनों महानुभावोंके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं। चित्रकार श्री अम्बिका प्रसाद दुबे तथा कलाकार मुहम्मद इस्माइल साहबने क्रमश:, इस ग्रंथके दस अध्यायोंके चित्र तथा आवरण पृष्ठकी कलात्मक रूपरेखा प्रस्तुत की है, एतदर्थ वे हार्दिक धन्यवादके पात्र हैं। पुस्तक जैसी बन पड़ी है, सामने है। इसकी त्रुटियोंसे परिचित होना, मैं अपना अहोभाग्य समझूंगा।

रथयात्रा, २०११ वि० }
व्यास-निवास, काशी }

लक्ष्मीशङ्कर व्यास





सामग्री

साधारणतः लोगोकी ऐसी धारणा रही है कि प्राचीन भारतीय इतिहासको क्रमबद्ध रूपसे प्रस्तुत करनेके निमित्त उपयुक्त ऐतिहासिक सामग्रियो तथा तथ्योंका अभाव है। प्रोफेसर मैक्समूलर,[1] डाक्टर फ्लीट[2] तथा श्री एलफिनिस्टनका[3] यह अभिमत रहा है कि प्राचीन भारतीय सदा परलोकके ध्यानमे ही निमग्न रहा करते थे और उन्हे इहलोककी कोई चिन्ता न रहती थी। यही कारण है कि उन्होने इतिहासकी ओर ध्यान ही न दिया। अवश्य ही यह धारणा उस समय तक अल्पाधिक अशमें मान्य थी जब तक सस्कृत साहित्यकी छानबीन और प्राचीन ऐतिहासिक स्थानोका अनुसन्धान तथा उत्खनन नही हुआ था। किन्तु ऐतिहासिक साधनो और सामग्रियोके अनुसन्धान एव आविष्कारके पश्चात् प्राचीन भारतीय इतिहासके अधकारमय अतीतपर सर्वथा नवीन प्रकाश पडा है। सौभाग्यसे गुजरातके सोलकी महाराजाधिराज कुमारपालके इतिहास निर्माणके लिए पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्रिया उपलब्ध है। इन ऐतिहासिक सामग्रियोमे सस्कृत तथा प्राकृत साहित्यिक, ऐतिहासिक और अर्ध-ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इनके अतिरिक्त अनेक शिलालेख, ताम्र-

---

[1]मैक्समूलर : प्राचीन संस्कृत साहित्यका इतिहास : पृष्ठ ९।

[2]डाक्टर फ्लीट : इम्पीरियल गजेटियर आव इंडिया : द्वितीय खंड, पृष्ठ ३।

[3]एलफिनिस्टन : भारतवर्षका इतिहास : नवीन संस्करण : पृष्ठ १२।

पत्र, मुद्राएं तथा विदेशी यात्रियोंके ऐसे विवरण भी हैं, जो कुमारपाल तथा उसके समकालीन इतिहासका स्पष्ट चित्र हमारे समक्ष उपस्थित करते हैं। तत्कालीन स्मारक तथा भवन जिनके अवशेष अब तक प्राप्य हैं, कुमारपालके इतिहास निर्माणमें पर्याप्त सहायता प्रदान करते है।

संस्कृत तथा प्राकृत साहित्य

(१) **प्राकृत द्वयाश्रय काव्य (कुमारपाल चरित)** : यह कुमारपालके धर्मगुरु हेमचन्द्र द्वारा लिखित है। इसका नाम द्वयाश्रय इसलिए पडा कि ग्रन्थकर्त्ताका उक्त काव्य प्रणयनमें दो लक्ष्य था। प्रथम तो संस्कृत व्याकरण-के स्वरूपका प्रशिक्षण और दूसरा सिद्धराजके वंशका कथावर्णन। कुमार-पालचरित वास्तविक अर्थमें पूर्ण काव्य नही अपितु सम्पूर्ण काव्यका एक भाग है। इसके अतिरिक्त बहुतसी कविताए है, जिनमें द्वयाश्रय महाकाव्य सम्पूर्ण हुआ है। इस काव्यके प्रथम सात सर्गोमें कुमारपाल तथा अणहिल-पुरके राजकुमारोंका वर्णन है। इस महाकाव्यके अट्ठाइस सर्गोमें प्रथम बीस संस्कृतमें है तथा अन्तिम आठ प्राकृतमें। काव्यके प्रारम्भमें राजधानी पाटनका वर्णन है और कुमारपालके सिंहासनारूढ होनेके साथही उसके राज दरबारमें विभिन्न प्रान्तोके प्रशासकोंके प्रतिनिधियोंके उपस्थित होनेका भी विवरण है। प्रथम पाच तथा षष्ठ सर्गके कुछ भागमें अणहिल-पुर, महाराजकी विशाल सम्पत्ति तथा राजकीय जिन मन्दिरोके वैभवका विशद वर्णन है। चौलुक्य शासक इन मन्दिरोमें प्रतिष्ठित मूर्त्तियोकी किस श्रद्धा तथा उदार भावनासे युक्त हो अर्चना करते थे, इन सर्गोंमें उसका भी उल्लेख हैं। चौलुक्य नरेशोके उपवनो तथा वर्ष पर्यन्त राजा और प्रजाके आमोद प्रमोदोंका भी उक्त सर्गोंमें हृदयग्राही वर्णन मिलता है। षष्ठ सर्गके उत्तरार्धमें कुमारपालकी सेना तथा कोकण नरेश मल्लिकार्जुनके मध्य हुए युद्धका वर्णन हैं, जिसमें मल्लिकार्जुनकी पराजय तथा अन्त हुआ। इसी सर्गमें कुमारपाल तथा उसके समकालीन नरेशोके

साथ उसके सम्बन्धका भी संक्षिप्त वर्णन है। दो सर्गोमें नैतिक तथा धार्मिक चिन्तनकी विवेचना है। सप्तम सर्गमें स्वयं कुमारपालके मुखसे आध्यात्मिक चर्चा करायी गयी है और अष्ठममें श्रुतदेवी कुमारपालकी प्रार्थनापर उपदेश करती हैं। हेमचन्द्रका जन्म विक्रम सवत् ११४५ (सन् १०८८-११७२ ईस्वी)मे हुआ और निधन विक्रम सवत् १२२९में। हेमचन्द्रका यह ग्रन्थ चौलुक्य नरेश कुमारपालके जीवन सम्बन्धी इतिवृत्त-की प्रामाणिक कृति है। इसमें ऐतिहासिक घटनाओका उल्लेख नही तथापि उसके राजजीवनका रेखाकन करनेके लिए इसमे पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है।[1]

(२) **महावीर चरित्र** : यह ग्रन्थ भी हेमचन्द्रका लिखा हुआ है। इसमें कुमारपालके जीवनकी बहुतसी बातोका विवरण मिलता है। महावीर चरित्रमे हेमचन्द्रने कुमारपालकी महत्ताका उल्लेख करते हुए राजा तथा जैन धर्मके भक्त रूपमे उसके अनेकानेक गुणोका वर्णन किया है। कुमारपालके इतिहासको क्रमबद्ध करनेमे इस पुस्तकका महत्त्व इसलिए विशेष है कि इसमे वर्णित बातोका पता अन्य किसी साधनसे नही लगता। हेमचन्द्र कुमारपालका समसामयिक था और अपने कालका महापडित, इसलिए उसके कथनोपर अविश्वास या सन्देह नही किया जा सकता। यह हेमचन्द्रके जीवनकी अन्तिम कृति है। जैनधर्म स्वीकार कर लेनेके बाद कुमारपालका सक्षिप्त किन्तु सारभूत वर्णन इस ग्रन्थमे है।

(३) **कुमारपाल प्रतिबोध** : प्रसिद्ध जैन साहित्यकार सोमप्रभाचार्य कुमारपाल प्रतिबोधका प्रणेता है। इस ग्रन्थका प्रणयन उसने विक्रम सवत् १२४१ (सन् ११८५)मे कुमारपालके निधनके ग्यारह वर्ष उपरान्त किया। इससे स्पष्ट है कि सोमप्रभाचार्य, कुमारपाल तथा उसके गुरु हेमचन्द्रका समकालीन था। कुमारपाल प्रतिबोधकी रचना उसने कवि-

---

[1]मुनि श्री जिनविजयजी : राजर्षि कुमारपाल : पृष्ठ २।

सम्राट श्रीपालके पुत्र कविसिद्धपालके निवासमें रहकर की। इस ग्रन्थमें समय समयपर गुजरातके प्रख्यात चौलुक्यवंशी राजा कुमारपालको हेमचन्द्र द्वारा दी गयी, जैन शिक्षाओका भी वर्णन है। इनमें इस बातका भी उल्लेख मिलता है कि किसप्रकार क्रमश. कुमारपाल उक्त उपदेशोको ग्रहणकर जैन धर्ममे पूर्णरूपेण दीक्षित हो गया। इस ग्रन्थका नामकरण प्रणेताने "जिनधर्म प्रतिबोध" किया है किन्तु पुस्तकका दूसरा शीर्षक उसने "कुमारपाल प्रतिबोध" रखा है। यह ग्रन्थ मुख्यत. प्राकृत भाषामें लिखा गया है, किन्तु अन्तिम अध्यायमें कतिपय कथाए सस्कृत भाषामें हैं। इसका कुछ अश अपभ्रशमे भी है। इस ग्रन्थके प्रणयनका मुख्य उद्देश्य कुमारपाल आदिका इतिहास लिखना नही रहा है, अपितु जैनधर्मके उपदेशोका वर्णन करना रहा है किन्तु उसके साथ ही ऐतिहासिक व्यक्तित्वोकी कथाए भी सम्मिलित कर ली गयी है। इस सम्बन्धमे सोमप्रभाचार्यका कथन दृष्टव्य है—'यद्यपि कुमारपाल तथा हेमाचार्यका जीवनवृत्त अन्य दृष्टिकोणसे अत्यन्त रुचिकर है पर मेरी अभिरुचि केवल जैनधर्मसे सम्बद्ध शिक्षाओके वर्णन तक ही सीमित रहना चाहती है। क्या वह व्यक्ति, जो विभिन्न सुस्वादुपूर्ण पदार्थोंसे भरे पात्रमेंसे केवल अपनी विशेष रुचिकी ही वस्तुए ग्रहण करता है, दोषी ठहराया जा सकता है?'[1] यद्यपि इस ग्रन्थसे बहुत सीमित अशमें ही ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है तथापि यह स्वीकार करना पडेगा कि इसके द्वारा जो कुछ भी ज्ञातव्यता प्राप्त होती है, वह अत्यन्त प्रामाणिक एव विश्वसनीय है। सोमप्रभाचार्य,

---

[1] जइ वि चरियं इमाणं मणोहरं अत्थि बहुयमन्नं पि
तह वि जिणधम्म पडिबोह बंधुरं किं पि जंपेमि
बहु भक्ख जुयांइ वि रसवईऐ मज्झाओ किंचि भुंजंतो
निय इच्छा—अणुरुवं पुरिसोकिं होइवयणिज्जो
—कुमारपाल प्रतिबोध पृ० ३, श्लोक ३०-३१।

कुमारपालका केवल समकालीन ही न था अपितु उसके व्यक्तिगत जीवन-का भी विशेष ज्ञाता था। इस विचारसे 'कुमारपाल प्रतिबोध'का कुछ कम महत्त्व नही। इसमें लगभग बारह हजार श्लोक है किन्तु ऐतिहासिक सामग्री मुख्यत २००-२५० श्लोकोमें ही मिलती है।

(४) **प्रबन्ध चिन्तामणि :** प्रबन्ध चिन्तामणिका रचयिता प्रख्यात जैन पडित मेरुतुग है। इस ग्रन्थमे विभिन्न ऐतिहासिक व्यक्तियोंपर प्रबन्ध है। सम्पूर्ण पुस्तक पांच प्रकाशोमे विभक्त है। सर्वप्रथम विक्रम प्रबन्धमे सातवाहन शिलावर्त भोजराज, वनराज, मूलराज तथा मुजराज सम्बन्धी प्रबन्ध हैं। द्वितीय प्रकाशमें भोज भीम प्रबन्धका वर्णन है, तृतीयमें सिद्धराज प्रबन्ध है और चतुर्थमें कुमारपाल प्रबन्ध है, जिसमें वस्तुपाल तेजपाल प्रबन्ध भी सम्मिलित है। अन्तिम पचम प्रकाशमे प्रकीर्ण प्रबन्ध है। मेरुतुगसे कुमारपालके प्रारम्भिक जीवन, राज्यारोहण, चौहानो और अन्य राजाओंसे युद्ध, उसके जैनधर्ममे दीक्षित होने आदि विषयकी बहुतसी महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। वस्तुत प्रबन्ध चिन्तामणि उन महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक साधनोमे एक है जिनकी सहायतासे चौलुक्योका इतिहास प्रामाणिक आधारपर प्रस्तुत किया जा सकता है। विक्रम सवत् १३६१ (१३०५ ईस्वी)की वैशाखी पूर्णिमाको यह ग्रन्थ वर्द्धमानपुर (आधुनिक बडवान)मे सम्पूर्ण हुआ।[1] इसी नामका एक ग्रन्थ अथवा सम्भवतः उक्त ग्रन्थका ही प्रारम्भ श्री गुणचन्द्र आचार्य "पडितोके मस्तिष्क" द्वारा हुआ था। मेरुतुगने इस सम्बन्धमे स्वयं लिखा है कि प्राचीन गाथाओके श्रवणसे ही सन्तोष नही होता इसीलिए मैंने अपनी पुस्तक प्रबन्ध-चिन्तामणिमे हालके प्रख्यात राजाओका विस्तृत वृत लिखा है। मेरुतुगने यह भी लिखा है 'उक्त लेखनमे यद्यपि पाडित्यसे तो नही तथापि परिश्रमसे कार्य किया गया है।'

---

[1]रासमाला, १३ अध्याय पृष्ठ ३२९।

(५) **थेरावली :** थेरावली वह महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमें चौलुक्य नरेशोंकी नामावलीके अतिरिक्त उनकी तिथि तथा शासन अवधिके विवरण भी हैं। इस ग्रन्थके प्रणेता भी जैन पंडित मेरुतुंग ही है। इस कृतिमें मुख्यतः संस्कृत भाषामें वंशावली है तथा उत्तराधिकारियोंकी नामावली है। यद्यपि प्रबन्ध चिन्तामणि ऐतिहासिक ग्रन्थ है और थेरावली नरेशों और उनके समयकी सूची मात्र है तथापि यह अधिक प्रामाणिक मानी जाती है।[1]

(६) **प्रभावकचरित्र :** इसका प्रणयन श्री प्रभाचन्द्राचार्य द्वारा हुआ। ये जैन पंडित थे और इसकी गणना भी जैन ग्रन्थोंमें है। यह कृति द्वादश अध्यायोंमें है। इसके अन्तिम अध्याय "हेमचन्द्रसूरी चरितम्"में चौलुक्य नरेश कुमारपालका इतिहास है। इस अध्यायसे कुमारपालके प्रारम्भिक जीवन, उसका विभिन्न देशोंमें पर्यटन, राज्यारोहण, सैनिक अभियान तथा विजयके प्रसंगोंका सुस्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है।

(७) **पुरातन प्रबन्ध संग्रह :** यह रचना प्रबन्ध चिन्तामणिका अवशिष्ट अंश है। इसके अनेक प्रबन्ध, प्रबन्धचिन्तामणिके समान ही है। संक्षेपमें कहा जा सकता है कि इस कृतिमें प्रबन्धचिन्तामणिसे सम्बन्ध अथवा उसीके समान मिलते जुलते बहुत प्राचीन प्रबन्धोंका संग्रह है। इस संग्रहमें विभिन्न व्यक्तित्वोंपर कुल मिलाकर ६० प्रबन्ध है, इनमेंसे अनेक प्रबन्ध कुमारपालके इतिहासपर भी बहुत प्रकाश डालते है।

(८) **मोहराजपराजय :** यह पांच अंकोंका नाटक है और इसके रचयिता है श्रीयशपाल। इसमें गुर्जर नरेश कुमारपालके हेमचन्द्र द्वारा जैनधर्ममें दीक्षित होने, पशुहिंसापर प्रतिबन्ध लगाने तथा निःसन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्ति हस्तगत कर लेनेकी राज्य प्रथाको उठा देनेका वर्णन है। यह रूपक है। विषय तथा वर्णनके विचारसे यह मध्यकालीन

---

[1]**रासमाला : परिशिष्ट, पृष्ठ ४४२।**

युरोपके ईसाई नाटकोसे समता रखता है। सस्कृत साहित्यमे भी इस प्रकारके अन्य नाटक हैं, जिनमें श्रीकृष्णमिश्रके प्रबोध-चन्द्रोदय नाटकका नाम अत्यधिक प्रसिद्ध है। नरेश, उसके विदूषक तथा हेमचन्द्रके अतिरिक्त नाटकके सभी पात्र सत् अथवा असत् भावोंमे विभक्त हैं।

नाटककार यशपाल मोढ बनिया जातिका था और उसके माता पिताका नाम था रुकमिणी तथा धनदेव। धनदेवका वर्णन मन्त्रि रूपमें हुआ है तथा स्वय नाटककारने अपनेको चक्रवर्ती अजयदेवके चरण कमलों-का हस कहा है। अजयदेवका राज्यकाल ११२९से ११३२ पर्यन्त है। इसलिए नाटकका रचनाकाल इसी अवधिके मध्यमे निश्चित करना होगा। यह नाटक केवल लिखा ही नही गया था वरन् इसका अभिनय भी हुआ था। रगमचपर इस नाटकका अभिनय कुमार विहारमे (कुमारपाल द्वारा निर्मित) भगवान महावीरकी मूर्ति स्थापन समारोहके अवसरपर सर्व-प्रथम हुआ था। यह स्थान थारापद्र (आधुनिक पन्हणपुर एजेन्सी थराद गुजरात मारवाडकी सीमापर स्थित) में है। ऐसा प्रतीत होता है कि नाटक-कार इसी स्थानका राज्यपाल अथवा निवासी था।

(९) **उपर्युक्त ग्रन्थोंके अतिरिक्त :** चौलुक्य नरेश कुमारपालके इतिहासका परिचय करानेवाली अन्य अनेक साहित्यिक और ऐतिहासिक कृतिया भी हैं। इनमे विक्रमाकदेव चरितम्, सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी, कीर्ति कौमुदी, वसन्त विलास, हम्मीरमदमर्दन, चरित्रसुन्दरकृत कुमारपाल चरित्र, जिनमदनका कुमारपाल प्रबन्ध, जयसिंह प्रणीत कुमारपाल चरित्र तथा फोर्वस् द्वारा सम्पादित रासमाला मुख्य है।

इन ग्रन्थ समूहोमे सर्वाधिक महत्त्वकी रचना महाकवि श्री विल्हण कृत "विक्रमाकदेव चरितम्" है। इस महाकाव्यकी रचना बारहवी शताब्दीके प्रारम्भमें हुई थी। इसमें अठारह सर्ग है तथा इसका नायक चालुक्य विक्रमादित्य है। इसके सत्रहवे सर्गमे नायकका वर्णन है तथा अन्तमे कविने अपना ऐतिहासिक विवरण देते हुए कश्मीरका वर्णन किया

है। प्रथम सर्गमें चालुक्योंकी उत्पत्तिका विवरण है और कविने बताया है कि वे किस प्रकार अयोध्यासे दक्षिण दिशाकी ओर गये।

कुमारपाल प्रबन्धके रचयिता जिन मदनाग्निने कुमारपाल प्रतिबोधके अनेक ऐतिहासिक उद्धरण लिये है। जयसिंह सूरिने कुमारपाल प्रतिबोधकी रचना शैलीका रचना सादृश्य अपने कुमारपाल चरित्रमे किया है। इसी प्रकार अन्य ग्रन्थोसे भी कुमारपालके इतिहासकी रूपरेखाके निर्माणमें सहायता मिलती है।

उत्कीर्ण लेख

आधुनिक इतिहासज्ञ उत्कीर्ण लेखोको किसी ऐतिहासिक कालके प्रामाणिक विवरणके लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानते है। सौभाग्यसे कुमारपालके समयके एक दो नही, बाइस उत्कीर्ण लेख मिलते है। इनसे कुमारपालके इतिहासकी बहुतसी बातोका पता चलता है। इन उत्कीर्ण लेखोमेसे कुछ उसके अधीनस्थोके आदेश है, कतिपयमें राजकीय आज्ञाकी घोषणाए है तथा अन्य दान लेख है।

(१) **मंगरोल शिलालेख** (विक्रम सवत् १२०२ या सन् ११४५)—यह शिलालेख दक्षिणी काठियावाड, जूनागढके अन्तर्गत मगरोलके गदिस द्वारके निकट एक वापी (कूप)के श्याम प्रस्तरमे उत्कीर्ण है। यह शिलालेख पचीस पक्तियोका है और इसमे गुर्जर नरेश कुमारपालकी प्रशस्ति है। इसमें गुहिलवशके सौराष्ट्र नायक नूलक द्वारा सहजीजेश्वरके मन्दिरका निर्माण तथा दानका विवरण अकित है।[1]

(२) **दोहद शिलालेख** (विक्रम सवत् १२०२ या सन् ११४५)—यह गोद्राहकके महामडलेश्वर नयनदेवके समयका है। इसमें महामंडलेश्वरकी असीम कृपा द्वारा राजा शकरसिंहके उत्कर्षका उल्लेख

[1] भावनगर इन्सक्रिप्शन्स, पृष्ठ १५२-६०।

है और जिसने ईश्वराधनके निमित्त तीन हल चलाने योग्य भूमि का दान किया।[1]

(३) **किराडू शिलालेख** (वि० सं० १२०५)—किराडू जोधपुर राज्य, आधुनिक राजस्थानमें स्थित है। यह शिलालेख किराडू परमार सोमेश्वर-के समयका है जो कुमारपालके अधीनस्थ था।[2]

(४) **चित्तौरगढ़ शिलालेख** (वि० स० १२०७)—यह लेख चित्तौर स्थित नोकलजी मन्दिरमें उत्कीर्ण है। इसमें कुमारपालके चित्रकीर्ति (चित्तौर) आगमन तथा समीद्धेश्वर मन्दिरमें भेट चढानेका उल्लेख भी है।[3]

(५) **आबू पर्वत शिलालेख**—यह महामडलेश्वर यशोधवलके समयका है।[4]

(६) **चित्तौरका प्रस्तर लेख**—इस प्रकीर्ण लेखमे मूलराजसे कुमारपाल तककी वशावलीका विवरण है। इसमे कहा गया है वह चौलुक्य वशमे उत्पन्न हुआ, जिस वशका उदय ब्रह्माके हस्तसे हुआ बताया गया है। इसके पश्चात् इसमे मूलराजसे जयसिंह तककी वशावली दी गयी है। उसके अनन्तर त्रिभुवनपालका पुत्र कुमारपाल हुआ।[5]

(७) **वडनगर प्रशस्ति** (वि० स० १२०८)—गुजरातके वडनगरमें सामेत तालाबके निकट अर्जुनवाडीमे एक प्रस्तर खडपर यह लेख उत्कीर्ण है। इसमे चौलुक्योकी उत्पत्तिका विवरण है तथा कुमारपाल तककी

---

[1] इंडि० एंटी०, खंड १०, पृष्ठ १५९।
[2] इंडि० एंटी०, खंड १०, पृष्ठ १५९।
[3] सूची, क्रम संख्या २७४।
[4] इंडि० एंटी०, खंड २, पृ० ४२१-२४।
[5] सूची, क्रम संख्या २८०।

वंशावली अंकित है। १९-२० श्लोक नागर अथवा आनन्दपुर[1]में प्राचीन ब्राह्मण बस्तीकी प्रशसामे है। उसी प्रसगमे इस बातका भी उल्लेख मिलता है कि कुमारपालने अपने कालमे उक्त प्राचीन ऐतिहासिक क्षेत्रके चतुर्दिक घेरा बनवाया था। ३०वें श्लोकमे प्रशस्तिकार श्रीपालका नामोल्लेख है, जिससे सिद्धराजने अपना भ्रातृत्व सम्बन्ध स्वीकार किया था और जिसकी उपाधि कवि चक्रवर्तीकी थी।[2]

(८) पाली शिलालेख (वि० स० १२०९)—यह जोधपुर राज्यके पाली नामक स्थानमे सोमनाथ मन्दिर सभामडपमे अकित है। यह लेख कुमारपालके समयका है।[3] इस शिलालेखमे कुमारपालका, शाकम्बरी-धीशके विजेता रूपमे उल्लेख है। प्रधान मन्त्री महादेवका नाम भी इसमें अकित है तथा लेखकी छठीं पक्तिमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख है कि चामुड-राज पल्लिका विषयमे शासन कर रहे थे।

(९) किराडू शिलालेख (वि० स० १२०९)—यह लेख कुमारपालके समयका है। इसमे शिवरात्रि आदि पर्वोंपर पशुओंकी हिंसा करनेकी निषेधाज्ञा है।[4] इसमे कहा गया है कि राज परिवारके सदस्य द्रव्य दड देकर ही पशु हिंसा कर सकते थे और अन्य लोगोंके लिए तो इस अपराधके लिए प्राणदडकी व्यवस्था थी।

---

[1]आधुनिक वडनगर (विदग्धनगर) बड़ौदा राज्यके काड जिलेके केरल सब डिविजनमें है। इस स्थानकी प्राचीनताके लिए देखिये इंडि० एंटी० खंड १, पृ० २९५।

[2]इंडि० एंटी० खंड १, पृ० २९३-३०५ तथा आई० ए० खंड १०, पृ० १६०।

[3]ए० एस० आई० डब्लू० सी०, पृ० ४४-४५, १९०७-८, इंडि० एंटी० खंड ११, पृ० ७०।

[4]इंडि० एंटी०, खंड ११, पृ० ४४।

(१०) रत्नपुर प्रस्तर लेख—जोधपुरके रत्नपुरके बाहरी क्षेत्रमें एक प्राचीन शिव मन्दिरके मडपमे उक्त लेख उत्कीर्ण है। यह कुमार-पालके शासनकालका है। इसमे गिरिजादेवीकी, वह आज्ञा घोषित की गयी है जिसमे कहा गया है कि निश्चित विशेष तिथियोको पशुओका वध करना निषिद्ध है।[1]

(११) भटुंड प्रस्तर लेख (वि० स० १२१०)—यह जोधपुर राज्यके भटुड नामक स्थानके ध्वमावशेष मन्दिरमे है। शिलालेख उक्त मन्दिरके सभामडपके एक स्तम्भमे प्रकीर्ण है। लेख कुमारपालके शासन कालमे खुदवाया गया है। इसमे दडनायक वैजाकका भी उल्लेख आया है, जो नाडुल जिलेका कार्याधिकारी था।[2]

(१२) नाडोल्का दानपत्र (वि० स० १२१३)—यह कुमारपालके समयका है। इसका प्राप्ति स्थान जोधपुरके अन्तर्गत देसूर जिलाका नाडोल है। इसमे जैन मन्दिरोको दान देनेका उल्लेख है। इसमे वहडदेव प्रधान मन्त्री, महामडलिक प्रतापसिंह तथा बदारीके चुगी गृह (मडपिका)-का विवरण है।[3]

(१३) बाली शिलालेख (वि० स० १२१६)—जोधपुर, बालीके बहुगुण मन्दिरके द्वारके सिरेपर यह शिलालेख उत्कीर्ण है। इसमे कुमार-पालके शासनकालमे प्रदत्त भूमिके दानका उल्लेख है। इस लेखमे नाडुलके दडनायक तथा वल्लभी (आधुनिक बाली)के जागीरदार अनुपमेश्वरका नाम अकित है।[4]

(१४) किराडू शिलालेख (वि० सं० १२१८)—जोधपुर राज्यके

---

[1] इंडि० एंटी०, खंड २०, परिशिष्ट, पृ० २०९।

[2] ए० एस० आई० डब्लू० सी०, १९०८, पृ० ५१-५२।

[3] इंडि० एंटी, खंड, ४१, पृ० २०२-२०३।

[4] ए० एस० आई० डब्लू० सी०, १९०७-१९०८, पृ० ५४-५५।

किराडू स्थित एक शिवमन्दिरमें यह लेख अंकित है। इसका समय कुमारपालका शासनकाल ही है। इसमें कुमारपालके अधीनस्थ किराडू परमार सोमेश्वरका उल्लेख है।[1]

(१५) उदयपुर प्रस्तर लेख—यह ग्वालियर राज्यमें है। ग्वालियरके अन्तर्गत उदयपुरके विशाल उदयेश्वर मन्दिरके प्रवेश स्थलपर ही यह लेख उत्कीर्ण है। यह कुमारपालके समयका है और इसे उसके एक अधीनस्थ अधिकारीनें उत्कीर्ण कराया था। इसकी तिथि, लेखमें सुस्पष्ट नहीं है।[2]

(१६) उदयपुर प्रस्तर स्तम्भ लेख (वि० स० १२२२)—यह उक्त मन्दिरके एक प्रस्तर स्तम्भमें उत्कीर्ण है। इसमें ठाकुर चाहड द्वारा इसी मन्दिरको प्रदत्त ब्रह्मगिरिके अन्तर्गत सामगावत्ताके आधे गाव दानस्वरूप देनेका उल्लेख है।[3]

(१७) जालौर प्रस्तर शिलालेख (वि० स० १२२१)—जोधपुर राज्यके अन्तर्गत जालौर नामक स्थानमें एक मस्जिदके दूसरे खडके द्वारके ऊपर यह लेख उत्कीर्ण है। इस मस्जिदका उपयोग बादमें तोपखानेके रूपमें होता रहा है। इसमें कुमारपाल द्वारा निर्मित प्रसिद्ध जैन मन्दिर कुमार विहारके निर्माणका विवरण है। पार्श्वनाथका यह प्रसिद्ध जैन विहार जवालीपुर (जालौर) के कचनगिरि किलेपर बना हुआ है। इस विवरणके अतिरिक्त इसमें यह भी लिखा है कि कुमारपाल, प्रभु हेमसूरि द्वारा दीक्षित हुआ।[4]

(१८) गिरिनार शिलालेख (वि० स० १२२२-२३)—यह शिलालेख कुमारपालके समयका है।[5]

---

[1] ई० इंडि०, खंड २०, परिशिष्ट, पृ० ४७।

[2] इंडि० एंटी०, खंड १७, पृ० ३४१।

[3] इंडि० एंटी०, खंड १७, पृ० ३४१।

[4] इंडि० एंटी०, खंड ११, पृ० ५४-५५।

[5] आर० एल० ए० आर० बी० पी०, ३५९।

(१९) **जूनागढ़ शिलालेख** (वल्लभी सवत् ८५० (?) सिंह ६०)—यह जूनागढ़के भूतनाथ मन्दिरमे उत्कीर्ण है। यह लेख कुमारपालके समयका है। इसमें अनहिलपालकपुरके[1] धवलकी पत्नी द्वारा दो मन्दिरोंके निर्माणके विवरण है। दडनायक गुमदेवका नामोल्लेख भी इसमे आया है।

(२०) **नदलाई प्रस्तर लेख** (वि० सं० १२२८)—यह शिलालेख जोधपुर राज्यके नदलाई नामक स्थानके दक्षिण-पश्चिम एक महादेवके मन्दिरमें मिला है। यह भी कुमारपालके समयका है।[2]

(२१) **प्रभासपाटन शिलालेख** (वल्लभी सवत् ८५०)—यह शिलालेख प्रभासपाटन अथवा सोमनाथपाटनमे भद्रकाली मन्दिरके निकट एक प्रस्तर-पर उत्कीर्ण है। इसके अकनका समय कुमारपालका शासनकाल है। इसमे कुमारपाल द्वारा सोमनाथ मन्दिरके पुनर्निर्माणका विवरण है।[3]

(२२) **गाला शिलालेख**—काठियावाडके धारगधारा राज्यके गाला नामक ग्राममे एक देवीके ध्वस्त मन्दिरके प्रवेशद्वारपर यह शिलालेख खुदा हुआ है। यह गुर्जरनरेश कुमारपालके कालका है। इसमे प्रधान मन्त्री महादेवके अतिरिक्त राज्यके अनेक अधिकारियोका भी नामोल्लेख है।[4]

स्मारक

कुमारपाल जैनधर्ममे दीक्षित हो गया था और जैनधर्मके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करनेके निमित्त उसने विभिन्न स्थानोमे जैन मन्दिरोंका निर्माण कराना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम उसने पाटनमे अपने मन्त्री वहडके

[1] पी० ओ० खंड १, १९३६-३७, द्वितीय खंड, पृ० ३९।
[2] इंडि० एंटी०, खंड ११, पृ० ४७-४८।
[3] वी० पी० एस० आई०, १८६, सूची क्रम संख्या १३८०।
[4] पी० ओ० खंड १, पार्ट २, पृ० ४०।

निरीक्षणमें कुमारविहार नामक मन्दिर बनवाया। इस विहारके मुख्य मन्दिरमे उसने श्वेत सगमरमरकी पार्श्वनाथकी विशाल मूर्तिकी प्रतिष्ठा करायी। इसके पार्श्वके चौबिस मन्दिरोमे उसने चौबिस तीर्थंकरोकी सुवर्ण, रजत तथा पीतलकी मूर्तिया स्थापित करायी।

इसके पश्चात् कुमारपालने त्रिभुवनविहार[1] नामक और भी विशाल तथा उच्चशिखरोसे युक्त जैन मन्दिरका निर्माण कराया। इसके चतुर्दिक विभिन्न तीर्थंकरोके लिए बहत्तर मन्दिर बने थे। इन मन्दिरोके विभिन्न विशेष भाग सुवर्णके बने हुए थे। मुख्य मन्दिरमे तीर्थंकर नेमिनाथकी विराट तथा भव्यमूर्ति बनी थी तथा अन्य उपमन्दिरोमे विभिन्न तीर्थंकरोकी मूर्तिया स्थापित थी।

इनके अतिरिक्त कुमारपालने केवल पाटनमे ही चौबिस तीर्थंकरोंके लिए चौबिस जैनमन्दिर बनवाये, जिनमे त्रिविहारका मन्दिर प्रसिद्ध था। पाटनके बाहर राज्यके विभिन्न स्थानोमे उसने इतने अधिक जैन मन्दिरोका निर्माण कराया कि उनकी निश्चित सख्याका अनुमान करना भी कठिन है। इनमेसे जसदेव पुत्र सुबेदार अभयके निरीक्षणमें तरग पहाडीपर बना अजितनाथका विशाल मन्दिर उल्लेख्य है। यद्यपि आज ये स्मारक अपने पूर्व रूपमे अवस्थित नही, तथापि ध्वसावशेष भी अपने समयके जीते जागते अवशेष हैं तथा कुमारपालके इतिहास निर्माणमें बहुत सहायक है।

मुद्राए

सिक्कोका जहा तक सम्बन्ध है, पूर्व-मध्यकाल तथा उत्तरार्ध मध्य-काल दोनोमें ही कुछ विचित्र स्थिति है। यह आश्चर्यकी बात है कि वल्लभीके मैत्रिकोके अतिरिक्त किसी वशकी मुद्राए गुजरातमें नही प्राप्त होती।

---

[1]पी० ओ०, खंड १, भाग २, पृ० ४०।

जो प्राप्त हुई है वे भी गिनतीकी है। ये मुद्राए ब्रिटिश म्युजियममें रही है। इनमे कोई स्वरूप साम्य नही है। इसके एक ओर वृषभका आकार बना हुआ है। यह और भी आश्चर्यकी बात है कि अनहिलवाड़ेके चौलुक्यों-की कोई मुद्राए नही प्राप्त होती है। गुजरात तथा पाटनके लोग इस बातका गम्भीरतासे अनुभव ही नही करते।[1] पुरातत्ववेत्ता श्री एच० डी० सनकालिया जब अपने अनुसन्धानके दौरेपर गये थे और जब उन्होंने पाटनके लोगोंसे चौलुक्योके सिक्कोके सम्बन्धमे प्रश्न किया तो लोग आश्चर्य करते थे।[2] कई वर्ष पहले सहस्रलिंग तालाबके निकट, नगरकी सीमाओके बाहर जब एक सड़कका निर्माण हो रहा था तो सागर अप्सराके श्री मुनि पुण्य विजयजीको कुछ मुद्राओका पता लगा था। दुर्भाग्यवश किसी मुद्रा विशेषज्ञको ये सिक्के नही दिखाये गये और बादमे उनका कोई पता न चला।[3] चौलुक्योने अवश्य ही मुद्राए अंकित करायी होगी तथा उनका पर्याप्त प्रचलन होगा, इस तथ्यके समर्थनमे उत्तरप्रदेशसे प्राप्त एक सुवर्ण मुद्रासे यह धारणा और भी पुष्ट हो जाती है। उत्तरप्रदेशमें मिली उक्त सुवर्ण मुद्रा सिद्धराज जयसिंहकी बतायी जाती है।[4] इतने सुसम्पन्न कालमे चौलुक्योने अपनी मुद्राए न प्रचलित की होगी, ऐसा स्वीकार करना समुचित नही प्रतीत होता है। इसलिए इस धारणाको बल मिलता है कि यदि उचित रूपसे उत्खन तथा अनुसन्धानका कार्य किया जाय— विशेषकर सहस्रलिंग तालाबके निकट तो मुद्राओके अतिरिक्त चौलुक्य-कालीन अन्य बहुतसी सामग्री भी प्रकाशमे आवेगी।

---

[1]आर्कलाजी आव गुजरात, अध्याय ८, पृ० १९०।

[2]आर्कलाजी आव गुजरात, अध्याय ८, पृ० १९०।

[3]वही।

[4]जे० आर० ए० एस० बी, लेटर्स, ३, १९३७, नं० २, आर्टिकिल।

विदेशी इतिहासकारोंके विवरण

चौलुक्य उस कालमें शासन कर रहे थे, जब मुसलिम भारतके पश्चिमोत्तर भागपर आक्रमण कर विजय प्राप्त कर रहे थे। कुमारपालके पहले चौलुक्यों और मुसलिमोंमें संघर्ष[१] हुआ था तथा कुमारपालके बाद भीम द्वितीयके शासनकालमें मुसलिमोंसे प्रत्यक्ष संघर्ष हुआ। कालान्तरमें अन्ततोगत्वा मुसलिमोंने चौलुक्योंको पराजित कर दिया। अनहिलवाड़ेमें स्थापित कुतुबुद्दीनका मुसलिम सेनागार या तो हटा लिया गया था अथवा उसका पददलन हो गया था। प्रसिद्ध मुसलिम इतिहासकार फरिश्ता लिखता है कि भीमदेवकी मृत्युके पचास वर्ष बाद तत्कालीन दिल्लीके शासकको उसकी परामर्शदात्री परिषद्ने यह सलाह दी कि कुतुबुद्दीन द्वारा विजित गुजरातके प्रदेश, जो अब स्वतन्त्र हो गये थे उन्हें पुन: अधीन किया जाय। परिषद्ने गुजरात तथा मालवा सेना भेजनेका परामर्श दिया था।

अलाउद्दीनके सैनिक अभियानके पहले तेरहवीं शताब्दीके अन्तके पूर्व तक अनहिलवाड़ा मुसलिमोंके अधीन न हुआ। मुसलिम विवरणोंमें भी चौलुक्योंका उल्लेख बहुत मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक मुसलिम लेखकने कुमारपालको गुरुपाल[२] सम्बोधित किया है। अबुल्फजलने भी लिखा है कि जयसिंहकी मृत्यु[३] तक कुमारपाल सोलंकी निर्वासनमें रहता था। इसीप्रकार जियाउद्दीन बरानीकी तारीख-ए-फिरोजशाही[४] निजामुद्दीनकी तबकाते-ए-अकबरी,[५] तारीख-ए-

---

[१] युद्धके १४ वर्ष पूर्व चामुंडराजकी सन् १०१०में मृत्यु हुई जब मुसलिम आक्रमण हुआ तो भीम शासनारूढ़ था।

[२] फोर्बस : रासमाला।

[३] आइने-अकबरी, खंड २, पृ० २६३।

[४] इलिएट, खंड ३, पृ० ९३।

[५] बिबलिओथिका इनडिका : बी०के० कृत अनुवाद, १९१३।

फरिश्ता,[1] आइने-अकबरी,[2] तबकाते-नसीरी तथा मीराती-अहमदीसे चौलुक्य कुमारपालके समय तथा इतिहासका बहुत कुछ विवरण प्राप्त होता है।

विभिन्न सामग्रियों पर एक दृष्टि

इन प्रभूत साहित्यिक रचनाओ, शिलालेखो, स्मारको तथा अन्य प्राप्त साधनोकी सहायतासे चौलुक्यनरेश कुमारपालके इतिहासको प्रामाणिक और विधिवत ऐतिहासिक पद्धतिपर लिखा जा सकता है। साहित्यिक एव अर्ध-ऐतिहासिक ग्रन्थोसे कुमारपालके प्रारम्भिक जीवन, उसके सिंहासनारूढ़ होने, चौहानों, परमारो तथा अन्य शक्तियोसे युद्ध, उसके जैनधर्ममें दीक्षित होने तथा अन्तमे उसके निधनका विवरण मिलता है। इन साहित्यिक साधनोसे देशकी तत्कालीन आर्थिक तथा सामाजिक स्थितिपर भी पूर्ण प्रकाश पडता है। वस्तुत. तत्कालीन साहित्यमें उल्लिखित एव चित्रित ऐतिहासिक तथ्य कुमारपालके इतिहासके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधनोमें प्रमुख है।

इनके बाद कुमारपालके समयके विभिन्न शिलालेखो, प्रकीर्ण लेखो, तथा ताम्रपत्रोंसे उसकालके शासन-प्रबन्ध तथा देशकी विभिन्न परिस्थितियोका परिचय मिलता है। तत्कालीन साहित्यिक रचनाओमें भले ही अर्ध-ऐतिहासिक तथ्य अकित हो, क्योकि उनमे कही-कही वास्तविक सत्यके साथ साथ कवित्वपूर्ण प्रशस्तिया भी रहती है किन्तु प्रकीर्ण लेखोके सम्बन्धमें ऐसी बात नही कही जा सकती। अधिकांश शिलालेख राजाज्ञाके रूपमे है अथवा उनमे राजकीय घोषणाए है। इनमेंसे कुछमे जैन मन्दिरोको दान देनेका भी उल्लेख है। शिलालेखोसे बहुतसी महत्त्वपूर्ण बातोका पता लगता है। इन प्रकीर्ण लेखोसे अनेक प्रशासकीय इकाइयोंके साथ ही विभिन्न राज्याधिकारियोके नाम भी विदित होते है। कुमारपालने जिन अनेक युद्धोमे भाग लिया था उनके विवरण भी, इन्हीसे प्राप्त होते

[1] ब्रिग्स द्वारा अनूदित, खंड १।

[2] ब्लोचमन जेरट, खंड २।

है। वास्तवमे कुमारपाल और उसके समयके इतिहासकी प्रामाणिक रूपरेखा प्रस्तुत करनेमें उसके शिलालेख ही प्रधान रूपसे सहायक है।

कुमारपाल महान निर्माता था। जैनधर्ममे दीक्षित होनेके परिणाम-स्वरूप उसने अनेक विशाल तथा भव्य विहार एवं जैन मन्दिरोका निर्माण कराया। यद्यपि आज ये समस्त स्मारक अपने पूर्वरूपमे विद्यमान नही तथापि उनके ध्वसावशेष अब भी तत्कालीन इतिहासकी गौरव-गाथा मौन भाषामे कहते है। इन स्मारकोमे कुछके ध्वस है, कुछके अल्प अवशेष और बहुत कुछ तो काल कवलित हो गये है। इनका क्षेत्र मुख्य रूपसे पाटन तथा गुजरातके विभिन्न स्थानमे विस्तीर्ण है। दुर्भाग्यसे चौलुक्यो-की मुद्राए नही मिलती। उत्तरप्रदेशमें एक स्वर्ण मुद्रा मिली है जिसे सिद्धराज जयसिंहकी कहा जाता है। वस्तुतः यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि व्यापार एव व्यवसायके ऐसे समुन्नत साम्राज्यके विधायकोंने अपने समयमे मुद्राए प्रचलित न की हो। ऐसा कोई कारण नही जिससे इस समय सिक्कोके प्रचलनके सम्बन्धमे सन्देह किया जा सके। सिक्कोके सर्वथा अभाव एव अप्राप्यताके लिए ऐतिहासिक घटनाए उत्तरदायी है। इन दिनो यवनोके अनेकानेक आक्रमण हुए जिनमे भयकर लूटपाटकी घटनाए हुई। चौलुक्यो-के सिक्कोकी दुष्प्राप्यताको इस प्रकार अच्छी तरहसे समझा जा सकता है।

कुमारपालके इतिहास निर्माणकी प्राप्य सामग्रियोके सिहावलोकनके प्रसगमे विदेशी इतिहासकारो विशेषत मुसलिम इतिहासकारोके विवरणोका भी उल्लेख आवश्यक है। मुसलिम इतिहासज्ञोने तत्कालीन राजनीतिक घटनाओका तो उल्लेख किया ही है, विभिन्न राजाओ और उनकी तिथियो-के विषयमे भी लिखा है। अनेक मुसलिम इतिहास-लेखकोने कुमार-पालका उल्लेख करते हुए जिन ऐतिहासिक तथ्योको लिपिबद्ध किया है, उनकी पुष्टि अन्य ऐतिहासिक सामग्रियोसे भी होती है। इस प्रकार चौलुक्य कुमारपालके प्रामाणिक इतिहासकी रूपरेखा और स्वरूपअकनके निमित्त प्रभूत सामग्री उपलब्ध है।


वंश की उत्पत्ति
और विधिक्रम

गुप्त साम्राज्य और पुष्यभूतियोके पराभव तथा पतनके पश्चात् कोई ऐसा शक्तिसम्पन्न राजवश न हुआ, जितना व्यापक विस्तार एवं विराट राजनीतिक प्रभुत्व अनहिलवाड़ेके चौलुक्योका भारतमे हुआ। चौलुक्य शब्द चालुक्यका सस्कृत रूप है। गुजरातमें चौलुक्योका लोकप्रसिद्ध सम्बोधन "सोलकी" अथवा "सोलकी" है। गुजरातके लोकगीतोमें अब तक गायक इसका प्रयोग करते रहे हैं। प्राचीन शिलालेखो, ताम्रपत्रों तथा समकालीन साहित्यमे इस वशका नाम "चौलुक्य", "चालुक्य" अथवा "चुलुक" मिलता है। इसके अतिरिक्त चालुक्का चलुक्य, चालक्य, चलक्य, चौलुकिक, चौलुक्क तथा चुलुग शब्दोका प्रयोग भी इस वशके सम्बोधनके रूपमे हुआ है।

लाट प्रदेशके राजा कीर्तिराज सोलकीके ताम्रपत्रमें इस वशका नाम चालुक्य[1] कहा गया है। उसके पौत्र त्रिलोचनपालके ताम्रपत्रमे वशका नाम चौलुक्य[2] आया है। गुजरातके सोलकी राजाओके पुरोहित सोमेश्वरने अपनी कीर्तिकौमुदी[3]मे "चौलुक्य" तथा "चुलुक्य"का प्रयोग किया है।

---

[1]वियना ओरियन्टल जर्नल, खंड ७, पृ० ८८।

[2]इत्थयत्र भवेत्क्षत्र सन्ततिर्ज्जिनता किल। चौलुक्यात्प्रथिता न ष्या....इंडि० ऐंटी० खंड १२, पृ० २०१।

[3]अथ चौलुक्य भूपालपाल यामास तत्पुरम्। कीर्तिकौमुदी २ : १। अणहिलपुरमस्ति स्वतिपालं प्रजानाम।

हेमचन्द्रने गुजरातके सोलंकी शासकोंके लिए चौलुक्य, चुलुक्य, चालुक्का, चुलुक्का तथा चुलुग[1]का व्यवहार किया है। कृष्ण कविने अपनी कृति रत्नमालामें चालुक्य, चुलुक्य, चुलुक, चौलुक्य शब्दोका प्रयोग सोलकी शासकोके लिए किया है।[2] पृथ्वीराज रासामें सोलकी वशके लिए चालुक्काका व्यवहार किया गया है।[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि एक ही वशके लिये विभिन्न लेखो तथा विभिन्न तत्कालीन साहित्यमें भिन्न-भिन्न वश परिचायक शब्दोका प्रयोग हुआ है। इन शब्दोमें कौन शब्द सोलकी (चौलुक्य) वशके लिए सर्वथा उपयुक्त है इसके निर्णय एव निर्धारणके लिए समकालीन लेखको, ताम्रपत्रो तथा शिलालेखोकी प्रभूत सामग्री है। सभीके सम्यक् समालोचनके अनन्तर यह स्पष्ट है कि इस राजवशके लिए सबसे अधिक तथा सर्वमान्य प्रयोग

जरजिरघुतुल्यै पाल्यमानं चुलुक्यैः : ३ :

विरचयति वस्तुपालश्चुलुक्य सचिवेषु कविषु च प्रवरः :१४:

—आबू स्थित वस्तुपाल तेजपाल मन्दिरमें सोमेश्वर रचित प्रशस्ति।

[1]कुन्तेन सर्वसारेणावधोल्लस चुलुक्य राट् द्वयाश्रय महाकाव्य, सर्ग ५:१२८।

उद्दालिआ दसंणाणसिरी चालुक्क सुइडेहिं, सर्ग ६:८४।

जत्य चुलुक्कनि वाणं परिमल जम्मो जसो कुसुमदामं १:२२, धवल-गहेय अइनिच्चलाकि दो वच्छलो चुलुगवंश दोवओ। सर्ग २:९१।

कुमारपाल चरित।

[2]असौ वंश चालुक्यको शुभ रीति, पुनीवंश चावोत्कटाको सप्रीति, रत्नमाला, पृ० २०। चौलुक्य वंश नृप भुवरनाम —रत्नमाला, पृ० ४३।

[3]मुनि प्रगम्यौ चालुक्क। ब्रह्मचारी व्रत धारिय—पृथ्वीराज रासोः आदिपर्व, पृ० ४९।

"चौलुक्य" शब्दका ही हुआ है। हेमचन्द्र, सोमेश्वर, यशपाल तथा अन्य तत्कालीन साहित्यकारोके अतिरिक्त शिलालेखों और ताम्रपत्रोंमें जो आधुनिक कालमें किसी तथ्य अथवा घटनाकी मान्यताके लिए सर्वोपयुक्त प्रमाण माने जाते हैं, उक्त शब्दका ही बहुतायतसे प्रयोग हुआ है। यही नहीं, आठ चौलुक्य ताम्रपत्रोमे जो चौलुक्योंकी वंशावली दी हुई है उन सभीमे एक ही शब्द "चौलुक्य"का व्यवहार किया गया है।[1]

उत्पत्तिका अग्निकुल सिद्धान्त

इसमे सन्देह नही कि अन्य भारतीय राजवशोकी अपेक्षा चौलुक्योका अकित तिथिक्रम अत्यधिक विश्वसनीय और प्रामाणिक है। चौलुक्योकी उत्पत्ति विषयक विभिन्न सिद्धान्त हैं। इनमेसे एक अग्निकुल सिद्धान्त है। इसके अनुसार कहा जाता है कि आबू पर्वतपर वशिष्ठ ऋषिने यज्ञ किया और उसकी वेदीसे प्रथम चौलुक्य अथवा चालुक्यकी उत्पत्ति हुई। किन्तु इस सिद्धान्तके समर्थनमे न कोई शिलालेख है और न ताम्रपत्र अथवा कोई ऐतिहासिक इतिवृत्त ही। पश्चिमी सोलकी राजा विक्रमादित्यके शिलालेखमे (विक्रम सवत् ११३३ और ११८३) यह लिखा है कि चालुक्य (सोलकी) वशकी उत्पत्ति चन्द्रवशसे हुई जो ब्रह्माके पुत्र अत्रि द्वारा आविर्भूत हुआ था।[2] यह शिलालेख बम्बई प्रान्तके धारवाड जिलेके गोहाद गाव स्थित वीरनारायण मन्दिरमें मिला है। उक्त सोलकी राजाके दूसरे उत्कीर्ण लेखसे भी उक्त कथनोकी ही पुष्टि होती है।[3] पूर्वीय सोलकी

[1]इंडि० ऐंटी०, खंड ६, पृ० १८१।

[2]ओं स्वस्ति समस्त जगत्प्रसूतेर्भगवतो ब्रह्मणः पुत्रस्यात्रेर्नेत्रसमुत्पन्नस्य यामिनी कामिनी ललाम भूतस्य सोमस्यान्वये सत्यत्याग शौर्यादि गुणं निलयः केवल निज ध्वजिनीजव क्षपित प्रतिपक्ष क्षितीश वंश श्रीमानस्ति चालुक्यवंशः। इंडि० ऐंटी०, खंड २१, पृ० १६७।

[3]कर्नाटक इन्सक्रि० खंड १, पृ० ४१५।

राजा राजराजा प्रथम (वि० सं० १०७६-११२०=सन् १०२२-१०६३)के एक ताम्रपत्रमें यह लिखा है कि भगवान पुरुषोत्तमके "नाभि-कमल"से ब्रह्मा उत्पन्न हुए और उन्होने अनेकानेक राजाओं तथा राजवशोंकी उत्पत्ति की। इन राजवंशो और राजाओने चक्रवर्ती सम्राटोकी भाति अयोध्यामें शासन किया। इसी राजवशमे राजा विजयादित्य हुआ। वह दक्षिण विजयके लिए गया और उसीके वंशमें राजराजा[1] हुआ। इस कथनकी पुष्टि राजराजाके पिता राजा विमलादित्य (वि० सं० १०७५=सन् १०१८)के एक ताम्रपत्र[2] द्वारा भी होती है।

चुलुक सिद्धान्त

चौलुक्योंकी उत्पत्ति विषयक एक चुलुक सिद्धान्त भी है। कश्मीरी कवि विल्हणने अपने "विक्रमाकदेवचरित" (वि० स० ११४३=सन् १०८५)मे लिखा है कि ब्रह्माके "चुलुक"से एक वीर पुरुष उत्पन्न हुआ जिसके वशमे हरित तथा मानव्य हुए। इन क्षत्रियोंने पहले अयोध्यामें शासन किया और तदनन्तर दक्षिण दिशामे एकके बाद दूसरी विजय करते आगे बढ़े।[3] यही सिद्धान्त अल्प परिवर्तनके साथ कुमारपालके

---

[1] इंडि० ऐंटी०, खंड १४, पृ० ५०-५५।

[2] इंडि० ऐंटी०, खंड ६, पृ० ३५१-५८।

[3] सुधाकरं वार्धक्तः क्षपायाः संप्रेक्ष्य मूर्धानमिवानमन्तम्
तद्विप्लवायेव सरोजिनीनां स्मितोन्मुखं पंकज वक्तमासीत :३६:
ज्ञात्वा विधातुश्चुलुकात्प्रसूति तेजस्विनोन्यस्य समस्त जेतुः
प्राणेश्वरः पंकजिनीवधूनां पूर्वाचलं दुर्गमिवारुरोह :३७:
जगाम यांकेषु रथांगनाम्नां परस्परादर्शन लेपनत्वम्
सा चन्द्रिका चन्दनपंककान्ति शीतांशुशाणाफलके ममज्ज :३८:

समयकी वडनगर प्रशस्ति (वि० स० १२०८ : सन् ११५१) में भी व्यक्त किया गया है। इसमे कहा गया है कि देवताओंने नम्रतापूर्वक जब राक्षसोंके अपमानोंसे रक्षा करनेकी प्रार्थना ब्रह्मासे की तो उस समय वे सन्ध्यावन्दन करने जा रहे थे। उन्होने अपने "चुलुक"में गगाका पवित्र जल लेकर एक वीरकी उत्पत्ति की। उस वीरका नाम चौलुक्य था जिसने तीनों संसारको अपने यश एव कीर्तिसे पवित्र किया। उससे एक जाति उत्पन्न हुई। इसमे एकसे एक शौर्यवान और वीर्यवान शासक हुए। पतनावस्थामें भी इनका वैभव इनसे विलग नही हुआ। यह जाति अपनी वीरताके कारण प्रख्यात हुई और इसने समस्त ससारके सर्वसाधारणोको आशीर्वाद दिया।[1]

सोलकी राजा कुलोतुगके ताम्रपत्र तथा चोड़देव द्वितीय (वि० सं० १२००=सन् ११४३) के प्रकीर्ण लेखमें यह स्पष्ट लिखा है कि सोलकी शासक चन्द्रवशी मानव्य गोत्री, तथा हरित[2] के वशज थे। मानव्य

संध्या समाधौ भगवान्स्थितोय शक्रेण बद्धाञ्जलिना प्रणम्य
विज्ञापितः शेखर पारिजातद्विरेफनादद्विगुणैर्व चोभिः :३९:
विक्रमांकदेवचरितः सर्ग १ : ३६-३९।

[1]. नमस्यन्नपि निज चुलुके पुण्यगंगाम्बुपूर्णे।
सद्यो वीरं चुलुक्याह्वयमसृजमिवंयेन कीर्त्तिप्रवाहैः
पूतं त्रैलोक्यमेतत्त्रियतमनुहंरत्ये हेतो फलं श्री :२:
वंशकोपिततो बभूव विविधाश्चर्यैकलीलास्पदं।
यस्यमाव् भुमि भृतोपि वीतगणिताः प्रादुर्भवंत्यन्वहं।
छायां यः प्रथित प्रताप महतीं वे विपक्षोपिसन्।
यो अन्यावधि सर्ववापि जगतो विश्वस्यदत्तेफलं :३:
वडनगर प्रशस्ति : श्लोक २-३, इपि० इंडि० खंड १, पृ० २९६।

[2]गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : सोलंकी राजाओंका इतिहास, पृ० ६।

तथा हरित कौन थे यह उक्त ताम्रपत्रमें उल्लिखित नहीं किन्तु पश्चिमी सोलंकी राजा जयसिंह द्वितीय (वि० सं० १०८२=सन् १०२५)के एक प्रकीर्ण लेखमें उनका इतिहास दिया हुआ है। इसमें कहा गया है कि ब्रह्मासे मनु और मनुसे मानव्यका आविर्भाव हुआ। मानव्यके वंशज ही मानव्य गोत्रिय कहलाये। मानव्यका पुत्र हरित था और उसका पुत्र पंचशिखी हरित हुआ। इसका पुत्र चालुक्य हुआ जिसका वंश चालुक्य (सोलंकी) वंशके नामसे प्रसिद्ध हुआ।[1]

राजा पुरुषोत्तम[2] (वि० स० १३३०-१३७५=सन् १२७३-१३१८) के दो उत्कीर्ण लेखोंमें लिखा है कि सोलंकी राजा चन्द्रवंशी थे। सोलंकी राजराजाके दानपत्रमें जहा उसके राज्यारोहणका वर्णन है (वि० स० १०७९=सन् १०२२) वहा लिखा है कि "वह सोमवंश तिलक" है। कलिंगतुम्भारानी एक तामिल काव्यमें सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोडदेव प्रथमका ऐतिहासिक वर्णन है, उसमें लिखा है कि उसका जन्म चन्द्रवंशमें हुआ था।[3] वीर चोडदेवके ताम्रपत्रमें (वि० सं० ११४७=सन् १०९०) उसके पितामह राजराजाको सोमकुलभूषण[4] कहा गया है। अभिप्राय यह कि वह चन्द्रवंशी राजा था। सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोडदेवके सामन्त बुद्धराजके दानपत्र (वि० स० १२२८=सन् ११७१)में चोडदेवके प्रख्यात प्रपितामह कुब्ज विष्णु (कुब्ज विष्णु वर्धन)को चन्द्रवंशी कहा गया है।[5]

---

[1](i) कर्नाटक इन्सक्रिपशन : खंड १, पृ० ४८।
(ii) बाम्बे गजेटियर : खंड १, भाग २, पृ० ३३९।

[2]गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : सोलंकी राजाओंका इतिहास, पृ० ७।

[3]इंडि० ऐंटी० खंड १९, पृ० ३३८।

[4]इंडि० ऐंटी० खंड १, पृ० ५४।

[5]इंडि० ऐंटी० खंड ७, पृ० २६९।

हेमचन्द्रका अभिमत

शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा दानपत्रोके इन प्रमाणोके अतिरिक्त समकालीन ऐसे प्रमाण हैं, जिनसे बिना किसी सन्देहके कहा जा सकता है कि सोलंकी राजा चन्द्रवशी थे। यह पुष्ट प्रमाण हेमचन्द्रका है। अपने द्वयाश्रय काव्यमे उसने सोलकी राजा भीमदेव तथा चेदि नरेश कर्णदेवके दूतोंका मिलन कराया है। वार्ताके प्रसगमे राजा भीमदेवके दूतने पूछा कि महाराज भीमदेव जानना चाहते है कि आप (चेदि नरेश कर्णदेव) मेरे मित्र है अथवा शत्रु। इस प्रश्नके उतरमे चेदिराज कर्णदेवने कहा कि राजा भीमदेव अविजेय सोम (चन्द्र) वशके हैं।[1] जिन हर्षगनीके वस्तुपाल चरित (वि० स० १४६७=सन् १४४०)मे सोल्कीराज भीमदेव चन्द्र-वशका भूषण कहा गया है।[2]

इस प्रकार पृथ्वीराजरासोमे वर्णित चौलुक्योंकी उत्पत्तिकी अग्निकुल कथा, आधुनिक ऐतिहासिक विश्लेषणके द्वारा अतिरजित वर्णन तथा प्रशस्तिमात्र स्वीकार की जाती है। गुजरातके इतिहासके कुछ विशेषज्ञ तो अग्निकुल उत्पत्तिकी कथाको किसी प्रकार स्वीकार ही नही करते। उनका तो रासोकी ऐतिहासिकतापर भी सन्देह है।[3] उत्पत्तिकी "चुलुक कथा"के सम्बन्धमे यह कहा जाता है कि सस्कृत व्याकरणके अनुसार "चौलुक्य" शब्द "चुलुक्य"से बना है और इस कारण प्राचीन लेखकोंने ब्रह्माके "चुलुक"से "चौलुक्य"की उत्पत्तिकी कल्पना सहज ही कर ली होगी। इस विवादास्पद प्रश्नका निर्णय करनेमे जहातक उत्कीर्ण लेखो तथा ताम्रपत्रोके प्रमाण मिलते है, यह स्वीकार करना समीचीन होगा कि चौलुक्य प्राचीन कालके चन्द्रवशी क्षत्रिय थे।

---

[1] द्वयाश्रय काव्य : सर्ग ९, श्लोक ४०-५९।

[2] हर्षगनी कृत वस्तुपाल चरित्र ९:७९।

[3] गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : सोलंकी राजाओंका इतिहास, पृ० १२।

चौलुक्य वंशका मूलस्थान

चौलुक्य वंशके मूलस्थानके विषयमें लोगोमे बहुत मतभेद है। कुछ विद्वान् इनका मूलस्थान उत्तरभारत बताते है, तो कुछ इस मतके हैं कि वे दक्षिणसे आये। श्री टाड[1]का कथन है कि भाटो तथा परम्परासे राजदरबारमें विरुदावली गानेवाले कवियोकी रचनाओंमें सोलंकियों-को गंगा तटके शूरके प्रसिद्ध राजकुमारके रूपमें चित्रित किया गया है। यह उस समयकी बात है जब राठौरोने कन्नौजपर अधिकार नही किया था। वंशावली सूची[2]मे लाकोट जो आधुनिक लाहौर है, उनका स्थान कहा गया है। इसमे ये उसी शाखा (माध्वनी)के कहे गये है, जो चौहानोकी शाखा थी। इतना निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि आठवी सदीमे लंगहस तथा टोगरा मुलतान और उसके निकटवर्ती प्रदेशमे रहते थे। ये भट्टिसोके शत्रु थे। ये मालाबार तटपर कैलियन (कल्याण)के राजकुमार[3] थे, जिस नगरमे आज भी प्राचीन गौरवके चिह्न विद्यमान है। यही कैलियन (कल्याण)से सोलंकी वंशका एक वृक्ष अनहिलवाडा पुतलन (पाटन)के चौवुरस राजवंशमे पनपा। विक्रम सवत् ९८७ (९३१ ई०)मे चौवुरस वंशके अन्तिम राजा विजराज तथा स्त्रियोको उत्तराधिकारसे वंचित रखनेके अधिनियम, इन दोनोकी अवमानना हुई। इसी समय युवक सोलंकी मूलराज

---

[1]टाड : राजस्थान, खंड १, भाग ७, पृ० १०४।

[2]सोलंकी गोत्राचार इस प्रकार है—"माध्वनि शाखा-भारद्वाज गोत्र गुरत्स लोकोश नेकस-सरस्वती (नदी) सामवेद कपिलेश्वरदेव कर्दुमन रिकेश्वर तीन प्रवर अेनार-कुंजदेवी-"मंयाल पुत्र"—टाड : राजस्थान: पृष्ठ १०४।

[3]बम्बईके निकट, कल्याण शुद्ध रूप।

के सम्मुख सुदृढ़ चौलुक्य साम्राज्य स्थापित करनेके लिए मार्ग प्रशस्त हुआ।[1]

इस सम्बन्धमे श्री सी० वी० वैद्यका कथन है कि "इस प्रश्नके विषयमें सबसे पहले यह ध्यानमे रखना होगा कि यह "चौलुक्य" तथा दक्षिणका "चालुक्य" परिवार एक ही नही हैं अपितु पृथक्-पृथक् है। यद्यपि इन दोनोमे साम्य है तथा प्राचीन कवियो तथा कथाकारोंने इन्हे एकही माना है। गोत्रकी भिन्नतासे ही परिवारकी पृथकताका परिचय मिलता है। छठीं शताब्दीमे दक्षिणके चालुक्योने अपना गोत्र मानव्य अकित कराया है। जैलापा तथा अन्य स्थानोके चौलुक्य इसी वश तथा विवरणके है। दुर्भाग्यसे गुजरातके चौलुक्योने अपने विवरणोंमें अपने गोत्र नही दिये है। फिर भी हम निश्चित रूपसे कह सकते हैं, जैसा कि १०वी शतीके एक चेदि विवरणमें दिया गया है कि उनका गोत्र भारद्वाज था।[2] पृथ्वीराजरासोमे चँदने भी चौलुक्योका यही गोत्र कहा है। रीवा तथा गुजरातके सोलंकी अब तक अपनेको इसी गोत्रका बताते है और इस प्रकार बिना सन्देह हमें भी यह निश्चय मानना चाहिए कि उनका गोत्र सदा भारद्वाज ही रहा है।[3]

वंशका संस्थापक : मूलराज

श्री एच० सी० रेका कथन है कि ७२०-९५६ ईस्वीमे कपोतक जो चावड़ाके नामसे अधिक प्रसिद्ध थे, पाचसारामे शासन कर रहे थे। वहाके

---

[1]यह जयसिंह सोलंकीका पुत्र था तथा कैल्यिनका प्रसिद्ध राजकुमार था। इसने भोजराजकी पुत्रीसे विवाह किया था। यह विवरण एक बिना शीर्षककी अपूर्ण भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पुस्तकसे लिया गया है, जो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। टाड : राजस्थान, खण्ड १, पृ० १०३।

[2]सी० वी० वैद्य : मध्यकालीन भारत खण्ड ३, अध्याय ७, पृ० १९५।

[3]इंडि० ऐंटी० : खंड १, पृ० २५३।

[4]एच० एम० एच० आई०, खंड ३, अध्याय ७, पृ० १९५-६।

अन्तिम सामन्तसिंह उर्फ भुवतके राज्यकालमें कन्नौजके कल्याणकल्कके शासक भुवनादित्यके तीन पुत्र, राजी, बीजा तथा दडक भिक्षुकका वेष धारणकर सोमनाथकी तीर्थ यात्रा करने निकले। लौटते समय वे सामन्तसिंह द्वारा आयोजित रथ प्रदर्शनके समारोहमें उपस्थित हुए। राजीने रथ सचालन सम्बन्धी कलाकी कुछ ऐसी आलोचना की जिससे सामन्तसिंह प्रसन्न हो गया। इतना ही नही उसने राजीको किसी राजवंशका समझकर उससे अपनी बहन लीलादेवीका विवाह कर दिया। संयोगसे लीलावती गर्भवती ही मर गयी। उसका गर्भस्थ शिशु शस्त्रोपचारके उपरान्त निकाला गया। यह शस्त्रोपचार उस समय हुआ जब मूलग्रह था। यही शिशु मूलराज था। वह योग्य तथा शक्तिशाली राजकुमार निकला। इसने अपने चाचाकी हत्या कर राज्यसिंहासन हस्तगत कर लिया।[1]

इस कथासे सत्य तथा कल्पनाको पृथक करना कठिन है लेकिन इसमें सन्देह नही कि इसमें कुछ तथ्य अवश्य है। ६३७ ईस्वीके चालुक्य पुलकेशी अवनीजनाश्रयके नौसेरी दानपत्रसे यह बात भलीप्रकार प्रमाणित हो जाती है कि आठवी शताब्दीके पूर्वार्धमें चावडा वश गुजरातमें राज्य कर रहा था।[2] इससे यह भी पता चलता है कि ७६३ ईस्वीके कुछ पहले अरबो (ताजिको)की सेनाने सैन्धव, कच्छेला, सौराष्ट्र, कपोतक लोगोको पराजित एव पददलित किया था। मौर्य तथा गुर्जरनरेश नवासारिका (लाटप्रदेशमें)के सुदूर दक्षिण क्षेत्र तक पहुचे थे। महिपालके हड्डाला-दानपत्रसे स्पष्ट है कि कैपस लोग पूर्वी काठियावाड तथा मध्य गुजरातमें ६१४ ईस्वी तक शासनाधिकारी रहे। यूना दानपत्रसे विदित होता है

---

[1] (i) बी० जी० खंड १, भाग १, पृ० १५६-५७, (ii) कुमारपाल चरित : निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९२६ (१-१५), (iii) ए० ए०के० खंड २, पृ० २६२।

[2] बाम्बे गजेटियर : खंड १, भाग २, पृ० १८७-८८ तथा ३७५।

कि ८९३ ई० तथा बादमें भी कन्नौजके शासकोंके चौलुक्य राज्याधिकारी गुजरातमें शासन कर रहे थे। इसमे कोई आश्चर्य नही कि इन्ही अधीनस्थ शासकोमें जिसका सम्बन्ध कल्याणीके चौलुक्योसे रहा होगा, कन्नौजके प्रतिहारोंसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर पाचसेराके छोटे चावडा राज्यवशको उखाड फेंकनेमे समर्थ एव सफल हुआ हो। इसप्रकार कल्याणके एक राजकुमारकी राज्यपरम्पराका कन्नौजमे प्रारम्भ हुआ। यह निश्चित मान लेना भी उचित न होगा कि दसवी सदीके पूर्वार्धमें कन्नौज प्रान्तमें कल्याण नामक नगरका अस्तित्व था और वहाका शासन भी चौलुक्य राजवशके अधीन था। इन अनुमानोका ठीक ठीक महत्त्व चाहे जो हो, इस निर्णयपर आना उचित ही होगा कि गुजरातके चौलुक्योका सस्थापक मूलराज, चावड राजकुमारीका पुत्र था और उसने अपने मामाको अपदस्थ कर अनहिलपाटक[1]का राज्य हस्तगत कर लिया। अधिकाश जैन ऐतिहासिक तिथिक्रमोमे यह स्वीकार किया गया है कि गुजरातका प्रथम चौलुक्य शासक राजीका वशज था। यह राजी कन्नौजकी राजधानी कल्याणके राजा भुवनादित्य तथा अनहिलवाडपाटनके अन्तिम चौड राजा अथवा चावडा राजाकी बहिन लीलादेवीका पुत्र था।[2]

मेरुतुगका अभिमत है कि विक्रम सवत् ९९८मे राजी अपने दो भाइयोके साथ वेशपरिवर्तन कर सोमनाथपाटनकी यात्रा करने गया था। यात्रामे लौटते समय अणहिलवाडाके रथ प्रदर्शन समारोहमें वे शामिल हुए। राजीसे रथ सचालन कलाकी आलोचना सुनकर वहाका राजा सामन्तसिंह अत्यधिक प्रसन्न हुआ। राजीके वशका विवरण जानकर उसने अपनी

---

[1]डो० एच० एन० आई० : खंड २। बादके विवरण पत्रोंमें "अणहिलपाटक", अनहिलबाड़ा या उनहिलपुरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। सरस्वती नदीके तटपर अवस्थित आधुनिक पाटन।

[2]फोर्बस् : रासमाला, खंड १, पृ० ४९।

बहिन ललितादेवीसे उसका विवाह कर दिया। प्रसवके समय ललितादेवीकी मृत्यु हो गयी किन्तु शिशु शस्त्रोपचारके पश्चात् जीवित निकाल लिया गया। मूल नक्षत्रमें उसका जन्म हुआ था, इसीलिए उसका नाम मूलराज रखा गया। मूलराजकी शिक्षा-दीक्षा उसके मामाके यहां हुई तथा उसके मामाने उसे गोद ले लिया। मूलराज बड़ा हुआ, तो सामन्तसिंह जब आसवके आवेगमें रहते तो बार बार इस आशयका कथन व्यक्त करते कि "मैं तुम्हे राज्यसत्ता सौंपकर पृथक हो जाऊंगा।" किन्तु जब सामन्तसिंह गम्भीर मुद्रामें होते थे तो कहते कि राज्यसत्ता छोड़नेकी, अभी मेरी इच्छा नही। कहते हैं कि यह बात विभिन्न मुद्राओमे इतनी बार कही गयी कि मूलराज इससे ऊब उठा। एकदिन उसने अपने मामा सामन्तसिंहकी हत्या कर डाली तथा राजसिंहासनपर अधिकार कर लिया।[1]

इतिहासकार फोर्बस्ने यह ऐतिहासिक विवरण कुछ अन्तरके साथ स्वीकार कर लिया है कि मूलराजका पिता कन्नौजका न था बल्कि दक्षिणके कल्याणका था जो स्थान दक्षिणमें महान चालुक्य राजवशका केन्द्र था।[2] प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री एलफिनिस्टनका भी यही मत है।[3] मूलराजकी माता चौड राजवशकी राजकुमारी थी और उसका पिता चौलुक्य था, यह सभी प्राप्त सामग्रियोसे स्पष्ट है। किन्तु यदि मेरुतुगके ऐतिहासिक तिथिक्रमसे उक्त कहानीकी तुलना की जाय तो उक्त कथाका व्यतिक्रम स्पष्ट हो जायगा। मेरुतुगका कथन है कि सामन्तसिंह ९९१ विक्रम सवत्में राजसिंहासनपर आसीन हुआ और सात वर्षों तक ९९८ विक्रम सवत् तक राज्य करता रहा। उसी समय राजी अणहिलवाडेमे ९९८ वि० सं०में आया और उसने लीलादेवीसे विवाह किया। लीलादेवीसे उन्हे एक पुत्र

---

[1]प्रबन्धचिन्तामणि : पृ० १५-१६।
[2]रासमाला : खंड १, पृ० २४४।
[3]भारतका इतिहास : पृ० २४१, छठां संस्करण।

हुआ। उसका पालन पोषण उसके मामाके संरक्षणमें हुआ तथा उसने अपने मामाकी हत्या कर डाली।

अब प्रश्न उठता है कि इन समस्त घटनाओके लिए बीस वर्षका समय तो चाहिये ही। लेकिन बताया जाता है कि राजी वि० सं० ९९८में पाटन आया तथा मूलराजने अपने मामाको उसी वर्ष अपदस्थ कर दिया। यदि कहा जाय कि राजीका पाटन आगमन पहले होना चाहिये तो भी स्थिति सुस्पष्ट नही होती। इसका कारण यह है कि सामन्तसिंहने केवल सात वर्षों तक शासन किया और उसके राज्यकालमें यह घटना सम्भवतः नही हुई। इस प्रकार पाटनमे राजी तथा राजसिंहासनारूढ सामन्तसिंहके मिलनकी घटना सत्यकी कसौटीपर खरी नही उतरती। घटनाओका यह विश्लेषण मेरुतुंगकी पूरी कथाको अपुष्ट जनश्रुति तथा कल्पनाके आधारपर खड़ा सिद्ध करता प्रतीत होता है। चावडा तथा चौलुक्य शासकोके मिलनकी उक्त कहानी इसप्रकार कल्पितसी ही प्रतीत होती है। इस विषयमे द्वयाश्रय काव्यका मौन और भी सन्देहजनक है। यद्यपि यह कहा जाता है कि यह काव्य हेमचन्द्रकी ही अकेले रचना नही, फिर भी मेरुतुगके ऐतिहासिक वृतसे यह अधिक प्रामाणिक तथा विश्वसनीय है।[1] द्वयाश्रयमे मात्र यही कहा गया है कि मूलराज चौलुक्य था। उसकी शक्ति अत्यधिक थी और वह वीर था। मूलराज[2]के दानपत्र क्रमसंख्या १मे वशकी उत्पत्तिके विषयमें कोई विशेष विवरण नही। यह अत्यन्त सक्षिप्त है फिर भी इससे मेरुतुगके मतका खडन हो जाता है। इसमें मूलराजने "अपनेको सोलंकियो (चालुकिकानव्य)का वशज बताया है तथा महान राजा राजीके वशका कहा है। इसमें यह भी कहा गया

---

[1]इंडि० ऐंटी० : खंड ६, पृ० १८२।

[2]अणहिलवाड़ेके चौलुक्योंके एकादश दानपत्र : इंडि० ऐंटी० खंड ६, पृ० १८१।

है कि उसने सारस्वत मडलपर (सरस्वती नदीसे सिंचित प्रदेश) अपने बाहुबलसे विजय प्राप्त की थी।"

चौलुक्य इतिहासपर नया प्रकाश

अब यह स्वीकार किया जा सकता है कि सामन्तसिंहकी हत्याको पंडितो तथा भाटोने "बाहुबल तथा शक्तिसे प्राप्त विजय"का रूप दे दिया होगा, लेकिन मेरुतुगकी कहानीसे इसका साम्य नही होता। उसने राजीको "महान् राजाओमे महान्" नही स्वीकार किया है।

अनहिलवाडेके चौलुक्य राजवशके संस्थापकके इतिहासपर कुमारपालके समयके शिलालेख वडनगर प्रशस्तिसे एक नवीन प्रकाश पडा है। इसमे चौलुक्य वशकी उत्पत्तिका इतिहास है। इस शिलालेखमे कहा गया है कि "प्रसिद्ध वीर मूलराज राजाओके मुकुटका ऐसा बहुमूल्य और बेजोड मोती था जिसने अपने वशकी प्रसिद्धि चतुर्दिक फैलायी . " उसने चावडा वशकी राजकुमारीके भाग्यको उत्कर्षके उच्चशिखरपर पहुचाया। राज्यलक्ष्मी उसकी दासी थीं। वह विद्वत् समूहके आह्लादका विषय था। उसके सम्बन्धी उससे प्रसन्न थे। ब्राह्मण, भाट तथा सेवक सभी उसके शौर्यपर मुग्ध थे। उसकी वीरताके कारण सभी क्षेत्रोके राजाओकी सौभाग्यलक्ष्मी उस समय उसकी अनिकक्षमे ही रहनेमे प्रसन्नताका अनुभव करती थी।[1] वश उत्पत्तिका यह विवरण मूलराजके उस दानपत्र[2]से बहुत कुछ मिलता जुलता है जिसमे कहा गया है कि उसने अपने बाहुबलसे सरस्वती नदीमे सिंचित प्रदेशपर विजय प्राप्त की। इन प्रमाणोंसे अब यह स्वीकार करनेमे बल मिलता है कि प्रथम चौलुक्यने गुजरातपर

---

[1]वडनगर प्रशस्ति : श्लोक २से ६, इपी० इंडि० : खंड १, पृ० २९३-३०५।

[2]इंडि० ऐंटी० : खंड ६, पृ० १९२।

विजय प्राप्त की थी, न कि जैसा प्रबन्धोंमें वर्णन है कि उसने अपने निकट सम्बन्धी अन्तिम चावडा राजासे विश्वासघात कर उसकी हत्या की थी।[1]

वडनगर प्रशस्ति तथा मूलराजके दानपत्रके इन ठोस प्रामाणिक आधारोंपर गुजरातके चौलुक्य राजवंशकी उत्पत्तिकी रूपरेखा अंकित करना युक्तियुक्त होगा। उत्कीर्ण लेखोंमे उक्त वर्णन, दानपत्र तथा अन्यत्र सर्वत्र मूलराजको अनहिलवाडेका प्रथम चौलुक्य राजा कहा गया है। इनसे इस तथ्यका भी स्पष्ट संकेत मिलता है कि मूलराजका पिता चौलुक्य वंशके मूलस्थानका राजा था तथा मूलराजने "राज्यकी खोजमें" उत्तरी गुजरातपर आक्रमण किया।

अब इस प्रश्नका उठना स्वाभाविक है कि राजीका मूलस्थान तथा राज्य कहा था? गुजरातके इतिहाससे पता चलता है कि विक्रम संवत् ७५२में कन्नौजमें कल्याण कटकमें भूराजा तथा भूवड (भूपति)ने जयशेखरको पराजित कर गुजरातको अपने अधीन कर लिया। उसके बाद कर्णादित्य, चन्द्रादित्य, सोमादित्य तथा भुवनादित्य कल्याणके राजसिंहासनपर आरूढ हुए। अन्तिम राजा भुवनादित्य राजीका पिता था। पाश्चात्य इतिहासकार श्री फोर्बस्, श्री एलफिनिस्टन तथा अन्य लोगोने उक्त कल्याणको दक्षिणी चौलुक्योंकी राजधानी माना है। उनका कथन है कि गुजराती उक्त स्थानकी जो अवस्थिति बताते है वह भ्रमात्मक है। इन यूरोपीय इतिहासकारोंके तर्कके पक्षमें यह तथ्य सबसे प्रबल है कि दक्षिण स्थित कल्याण आठ सदी पूर्व चौलुक्योंकी राजधानी थी, और कन्नौजमें इस नामके कोई प्रसिद्ध नगरका पता नही चलता किन्तु सोलंकी चौलुक्योंके शासनके मूलप्रदेशोंके निवासियोंका अभिमत, जैसा कि डाक्टर बूलरका कथन है उससे भी अधिक प्रबल है।[2]

---

[1]प्रबन्ध चिन्तामणि : पृ० १६।

[2]जी० बूलर : ए कन्ट्रीब्यूशन टू दी हिस्ट्री आव गुजरात, इंडि० ऐंटी० खंड ६, पृ० १८१।

मूलस्थान उत्तर भारत

अनहिलवाडेके चौलुक्योका मूलस्थान उत्तरभारत अथवा दक्षिण-भारतमें था; इस सम्बन्धमें अन्तिम निर्णयके निमित्त निम्नलिखित तथ्योकी ओर ध्यान देना आवश्यक है—

१. गुजरातके चालुक्य अपनेको चौलुक्य (सोलंकी) कहते हैं और अब इनके वशका नामकरण चौलुक्य या चालिक्य अथवा चालक्य हो गया है। इसीलिए इनके आधुनिक वशधरोको "चालके" सम्बोधित किया जाता है। यद्यपि चौलुक्य और चालुक्य एक ही नामके दो रूप हैं तथापि यह बात समझमें नही आती कि पाटन राजवशके सस्थापकने, यदि वह सीधे कल्याणसे आता जहां कि चालुक्य शब्द चलता है तो अपनेको "चौलुकिक" क्यो कहा? ठीक इसके विपरीत यदि वह दक्षिणके अपने बन्धुओसे काफी वर्षों पूर्व विलग हो गया हो और उत्तर भारतमें रहनेवाले परिवारका हो तो यह अन्तर समझा जा सकता है।

२ दक्षिणी चालुक्योके कुलदेवता विष्णु हैं जबकि उत्तरी चालुक्योके कुलदेवता शिव रहे है।

३. दक्षिणी चालुक्योका प्रतीक चिह्न शिवका नन्दी है।[1]

४. भूपतिसे राजी तकके चालुक्य नरेशोकी वशावली और दक्षिणी चालुक्योके शिलालेखोमे उत्कीर्ण वशावलीमे साम्य नही है।

५. चौलुक्य वशके प्रसिद्ध सस्थापक मूलराज तथा उसके दक्षिणी सम्बन्धियोमे मैत्री सम्बन्ध न था। मलराजको सिंहासनारूढ होनेके पश्चात् तेलगानाके तेलपा द्वारा वरपके नेतृत्वमें भेजी हुई सेनासे सामना करना पडा था।

---

[1] इंडि० ऐंटी० : खंड ६, पृ० १८१।

६. मूलराज तथा उसके उत्तराधिकारियोने गुजरातमें ब्राह्मणोकी अनक बस्तियाँ बसायी। ये ब्राह्मण आज तक औदीच्य (उत्तरी)के नामसे प्रसिद्ध है। उसने इन ब्राह्मणोको पूर्वी काठियावाडमें सिंहपुर, स्तम्भतीर्थ या कैम्बेल तथा अन्य अनेक ग्राम प्रदान किये जो बनस तथा साबलमतीके मध्यमे अवस्थित थे।[1] साधारणत यह नियम है कि जब कोई राजा नये प्रदेशोपर विजय प्राप्त करता है तो वह अपने मूलस्थानके निवासियोको बुलाकर उन्हे वहा बसाता है। इसप्रकार यदि मूलराज दक्षिण भारतसे आया होता तो वह तैलगाना तथा कर्नाटक ब्राह्मणोकी बस्तिया बसाता। फलस्वरूप औदिच्य (उत्तरी) ब्राह्मणोके स्थानपर दक्षिणी ब्राह्मणोका बाहुल्य एवं प्राधान्य रहता। पर ऐसा नही है। यदि जैसा कि गुजरातके ऐतिहासिक तिथि-क्रम अंकित करनेवाले कहते हैं वह स्वीकार कर लिया जाय कि चौलुक्य उत्तर भारतके थे, तो औदिच्य(उत्तरी) ब्राह्मणोकी बस्तियोके बसानेकी बात तत्काल समझमे आ जाती है। यह तथ्य इतना युक्तियुक्त और न्यायसगत है कि इससे गुजरातियोके ऐतिहासिक विवरणको प्रबल समर्थन प्राप्त होता है कि चौलुक्य उत्तरी भारतके ही थे और वे दक्षिण भारतसे नहीं आये थे।

अब प्रश्न आता है—कन्नौजमे चौलुक्य राज्य तथा एक दूसरे कल्याणके अस्तित्वका। यह कोई असम्भव नही। आठवी शतीमे यशोवर्धनके कालसे दसवी शताब्दीके अन्त तक जबकि राठौर आये कन्नौजका इतिहास अन्धकारमे है। कन्नौजके इतिहासका यह अन्धकार युग लगभग उसी कालका है जिसमे भूपति तथा उसके उत्तराधिकारी हुए थे। भूपति सन् ६६५-६मे शासन कर रहा था तथा सन् ६४१-४२में राज्यसिंहासनपर आसीन हुआ। फिर यह भी बात है कि उनके पूर्वज उत्तरसे आये और उन्होने अयोध्या तथा अन्य नगरोपर शासन किया था।[2] यह बात भी

---

[1]फोर्बस् : रासमाला, खंड १, पृ० ६५।
[2]इंडि० ऐंटी० : खंड १४, पृ० ५०-५५।

ध्यान देने योग्य है कि अब तक कन्नौजके जिलोंमें चौलुक्य राजपूत है। दूसरे कल्याणकी स्थिति तथा अस्तित्वका जहा तक प्रश्न है यह ध्यानमें रखा जाना चाहिये कि यह नाम कई स्थानोका रहा है। इस नामके दो नगर तो प्राचीन तथा बहुत प्रसिद्ध है। इनमेंसे एक बम्बईके निकट कल्याण है जिसे यूनानियोने "कैलिनी" कहा है तथा दक्षिण कल्यान। यह पहले ही बताया जा चुका है कि चौलुक्य मलाबार तटके "कैलियन" (कल्याण) नामक नगरके राजकुमार थे; जिसके वैभवपूर्ण ध्वंसावशेष अब तक विद्यमान है।[1] इन समस्त स्थितियोका विश्लेषण तथा गुजरातियोके कथनों-को ध्यानमे रखकर यह स्वीकार करना उचित होगा कि मूलराज उस राजा-का पुत्र था जो कान्यकुब्जमे शासन करता था। उसने गुजरातपर विजय प्राप्त की जो सम्भवत उसके पैतृक साम्राज्यका प्राचीन अधीनस्थ प्रदेश था। इस प्रकार अनहिलवाडेमें चौलुक्य साम्राज्यका सस्थापक मूलराज दक्षिण भारतका नहीं, अपितु उत्तरी भारतवर्षका ही मूल निवासी था।

वंशावली

अनहिलवाडेको चौलुक्योकी वशावली जाननेके लिए प्रभूत तथा प्रामाणिक सामग्री विद्यमान है। सोलकी चौलुक्योके सस्थापक मूलराजसे लेकर बारहवें तथा अन्तिम राजा त्रिभुवनपाल तककी सम्पूर्ण वशावलीके लिए प्रामाणिक इतिहास, शिलालेख तथा ताम्रपत्र है।[2] विश्वसनीय तथा लिखित इतिहासोमे मेरुतुगकी थेरावली है, जिसमें वशावली तथा वशवृक्ष दिया गया है। यह ऐतिहासिक तिथिक्रम सहित है। यह सस्कृत भाषामें है।[3] अनेक चौलुक्य नरेशोके शासनकालका उल्लेख

---

[1]यह स्थान बम्बईके निकट है। टाड : राजस्थान : खंड १, भाग १, पृ० १०४-५।

[2]इंडि० ऐंटी० खंड ६, पृ० १८१।

[3]जे० बी० आर० ए० एस० : खंड ९, पृ० १४७।

प्रबन्ध-चिन्तामणिमें भी दिया हुआ है। इसके अतिरिक्त अनेक जैन ग्रन्थकारोने अपनी अर्ध-ऐतिहासिक रचनाओमें चौलुक्य राजाओंकी वंशावलीका उल्लेख किया है।[1] किन्तु वंशावलीकी सबसे प्रामाणिक वृक्षावली शिलालेखों[2] तथा ताम्रपत्रों[3]से प्राप्त होती है। उक्त आठ भूमिदानपत्रोंमेंसे[4] सात (४से १० तक) में चौलुक्य राजाओंकी सम्पूर्ण वंशावली दी हुई है।

थेरावलीमें चौलुक्योंकी वंशावली इसप्रकार दी गयी है—श्री मूलराजका पुत्र वल्लभराज हुआ और वल्लभराजके पश्चात् उसका भाई दुर्लभराज उत्तराधिकारी हुआ। उसके बाद उसका भाई नागगिलाका पुत्र भीमदेव राज्यगद्दीका उत्तराधिकारी हुआ। भीमदेवके पश्चात् उसके पुत्र श्री कर्णदेवको राजगद्दीका उत्तराधिकार मिला। श्री कर्णदेवके पुत्र जयसिंह सिद्धराज हुए। जयसिंह सिद्धराजके बाद श्री त्रिभुवनपालका पुत्र श्रीकुमारपाल शासनारूढ हुआ। त्रिभुवनपाल, भीमदेवके पुत्र क्षेमराजके पुत्र देवपालका पुत्र था। कुमारपालके अनन्तर उसके भाई महिपालके पुत्र अजयपालको राज्यका उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। उसके बाद लघु मूलराज हुआ और पश्चात् भीमदेव द्वितीयने शासन किया। चौलुक्य वंशके अन्तिम राजा त्रिभुवनपालका नाम थेरावलीमें नहीं दिया गया है।[5]

सोमप्रभाचार्यके कुमारपाल प्रतिबोधमें भी चौलुक्य नरेशोंकी वंशावली दी हुई है। इसमें लिखा हुआ है कि अनहिलपुर पाटनमें पहले चौलुक्य

---

[1]सोमप्रभाचार्य : कुमारपालप्रतिबोध।

[2]इंडि० ऐंटी० : खंड ६, पृ० १८१। चौलुक्य राजाओंके एकादश दानपत्र।

[3]इपि० इंडि० : खंड १, वडनगर प्रशस्ति, प्राची शिलालेख।

[4]इंडि० ऐंटी० : खंड ६, पृ० १८१।

[5]जे० बी० आर० ए० एस० : खंड ९, पृ० १४७।

वंशका राजा मूलराज शासन करता था। उसके बाद उसके उत्तराधिकारी क्रमशः इस प्रकार हुए—चामुंडराज, वल्लभराज, दुर्लभराज, भीमराज, कर्णदेव तथा जयसिंहदेव। जयसिंहदेवका उत्तराधिकारी कुमारपाल हुआ जो भीमराजका प्रपौत्र था। भीमराजको क्षेमराज नामक पुत्र था। क्षेमराजका पुत्र देवप्रसाद था। इसी देवप्रसादका पुत्र त्रिभुवनपाल था, जो कुमारपालका पिता था।[1]

इन ग्रन्थोंमें उल्लिखित विवरणोंके अतिरिक्त चौलुक्योंकी वंशावलीका प्रामाणिक विवरण अन्य सूत्रोंसे भी मिलता है। ये हैं गुजरातके चौलुक्य नरेशोंके सात ताम्रपत्र[2] जिनमें चौलुक्य राजवंशकी सम्पूर्ण वंशावली दी हुई है—

१. मूलराज प्रथम
२. चामुंडराज
३. वल्लभराज
४. दुर्लभराज
५. भीमदेव प्रथम
६. कर्णदेव, त्रैलोक्यमल्ल
७. जयसिंहदेव
८. कुमारपालदेव
९. अजयपाल, महामाहेश्वर
१०. मूलराज द्वितीय
११ भीमदेव
१२. जयसिंह
१३. त्रिभुवनपालदेव

---

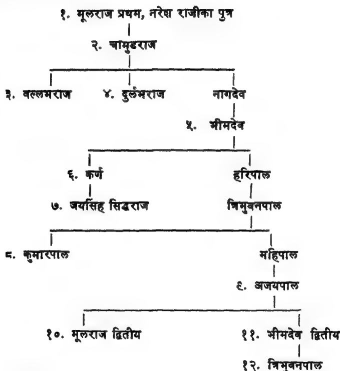
[1]कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४-५।

[2]इंडि० ऐंटी० : खंड ६, पृ० १८१ तथा मूल ताम्रपत्र।

वंशावली सम्बन्धी इन ताम्रपत्रोंका विश्लेषण करनेपर यह स्पष्ट है कि थोड़े बहुत अन्तरके अतिरिक्त सभीमें साम्य है। इसप्रकार दानपत्र ४ तथा ३में जो अत्यल्प अन्तर है, वह नगण्य है। ५वें दानपत्रका प्रथम पत्र उन्ही राजाओंका उल्लेख करता है जिनका विवरण दानपत्रकी ४ क्रमसख्याके सातवें पत्रमें मिलता है। इन दोनोमे ही जयसिंहका नामोल्लेख नही हुआ है। छठवे दानपत्रके प्रथम पत्रकी वशावली तथा विक्रम सवत् १२८३के ५वे दानपत्रमें उल्लिखित वशवृक्षमे जयसिंहके विवरणके अतिरिक्त कोई अन्तर नही। दानपत्र ७:१ तथा वि० सं० १२८३के ५वे दानपत्रमे वि० स० १२६३के ३रे दानपत्रके अनुसार जयसिंह तथा मूलराज द्वितीयका विवरण है। दानपत्र ८ १की वशावली तथा वि० स० १२८८के ७वे दानपत्रमे भी साम्य है। कुछ अन्तर है तो इतना ही कि एकमे मूलराज द्वितीयकी तुलना म्लेच्छोके अन्धकारसे व्याप्त संसारमें प्रकाश फैलानेवाले प्रात रविसे की गयी है। दानपत्र ९:१की वशावलीका क्रम वि० सं० १२९५ के ८वे दानपत्रसे प्रायः मिलता जुलता है। अन्तर एकमें केवल यह है कि चौलुक्य वशके नवम राजा अजयपालको महामाहेश्वरकी उपाधि दी गयी है। इसीप्रकार दानपत्र संख्या १०:१की वशावली तथा वि० स० १२६६के दानलेखमे वशके ग्यारह राजाओकी नामावलीमे साम्य है। प्रथममे त्रिभुवनपालदेवका नाम नही है।

कुमारपालके समयकी वडनगर प्रशस्ति तथा प्राची शिलालेखोंमें चौलुक्य राजाओकी वशावली कुमारपाल तक दी हुई है। वडनगर प्रशस्तिमे गुजरातके चौलुक्य राजाओका क्रम इस प्रकार है—१. मूलराज, २. उसका पुत्र चामुडराज, ३. उसका पुत्र वल्लभराज, ४. उसका भाई दुर्लभराज, ५. भीमदेव, ६. उसका पुत्र कर्ण, ७. उसका पुत्र जयसिंह सिद्धराज और ८. कुमारपाल। प्राची शिलालेखमे चौलुक्य राजाओकी यही वशावली कुमारपाल तक अंकित है। अन्तर केवल इतना है कि इसमे वल्लभराजका नामोल्लेख नहीं हुआ है।

वंशावली सम्बन्धी इन समस्त सामग्रियोंपर विचार तथा विश्लेषणके अनन्तर चौलुक्य राजाओंका वंशवृक्ष निम्नलिखित प्रकार स्थापित करना उचित होगा—



तिथिक्रम

मेरुतुंगकी थेरावलीसे विदित होता है कि विक्रम संवत् १०१७में चौलुक्य श्रीमूलराजने उत्तराधिकार प्राप्त किया तथा ३५ वर्षों तक

शासन किया। उसके पश्चात् विक्रम संवत् १०५२में उसका पुत्र वल्लभराज शासनारूढ हुआ और १४ वर्षों तक राज्य करता रहा। वि० सं० १०६६में उसका भाई दुर्लभ उत्तराधिकारी हुआ और वह १२ वर्षों पर्यन्त शासन करता रहा। वि० सं० १०७८में उसके भाई नागदेवके पुत्र भीमदेवने उत्तराधिकार प्राप्त किया तथा ४२ वर्षों तक सुदीर्घ शासन किया। वि० सं० ११२०मे उसका पुत्र श्रीकर्णदेव राजगद्दीपर बैठा और ३० वर्षों तक शासनारूढ़ रहा। मेरुतुगका कथन है कि वि० स० ११३० कार्तिक शुद्ध तृतीयासे तीन दिन तक पादुका राज्य था। उसी वर्ष मार्गशीर्ष शुद्ध ४को त्रिभुवनपालका पुत्र कुमारपाल राज्याधिकारी हुआ तथा वि० स० १२२६ पौष, शुद्ध द्वादशी तक शासन करता रहा। कुमारपालने ३० वर्ष, १ मास तथा ७ दिनोंकी अवधिपर्यन्त राज्य किया। कुमारपालके बाद उसी दिन उसके भाई महिपालका पुत्र अजयपाल राज्यगद्दीपर बैठा। ३ वर्ष, २ मासके पश्चात् विक्रम सवत् १२३२, फाल्गुन शुद्ध द्वादशीको लघु मूलराज (मूलराज द्वितीय) राजगद्दीपर बैठा। वि० स० १२३४की चैत्र सुदीसे २ वर्ष, १ मास तथा २ दिनो तक उसने शासन किया। इसी दिन भीमदेव द्वितीय शासनारूढ हुआ।

विभिन्न ऐतिहासिक सूत्रोसे जो प्रामाणिक विवरण प्राप्त हुए हैं, उनके आधारपर चौलुक्य राजाओंका तिथिक्रम इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

राजाओंका क्रम	प्रबन्ध चिन्तामणि	कुमारपाल प्रबन्ध	पाठावलि	शासनावधि[1]
मूलराज	३५ वर्ष	३५ वर्ष	३५ वर्ष	सन् ९६१-९९६
चामुडराज	१३ वर्ष	१३ वर्ष	१३ वर्ष	सन् ९९७-१००९

[1] इंडि० ऐंटी० : खंड ६, इपि० इंडि० : खंड ८ इनमें डाक्टर बूलर तथा अन्य विद्वान इससे सहमत है।

वल्लभराज	६ मास	६ मास	६ मास	सन् १००६-
दुर्लभराज	११ वर्ष ६ मास	११ वर्ष ६ मास	११ वर्ष ६ मास	सन् १००६-१०२१
भीमदेव	४२[1] वर्ष	४२ वर्ष	४२ वर्ष	सन् १०२१-१०६३
कर्णदेव	अलिखित	२६ वर्ष	२६ वर्ष	सन् १०६३-१०६३
जयसिंहदेव	४६ वर्ष	अलिखित	४८ वर्ष ८ मास १० दिन	सन् १०६३-११४२
कुमारपाल	३१ वर्ष	३१ वर्ष	३० वर्ष ८ मास २७ दिन	सन् ११४२-११७३
अजयपाल	३ वर्ष	...	३ वर्ष ११ मास २८ दिन	सन् ११७३-११७६
मूलराज द्वितीय	२ वर्ष	...	२ वर्ष १ मास २४ दिन	सन् ११७६-११७८
भीमदेवराज	६३ वर्ष	...	६५ वर्ष २ मास ८ दिन	सन् ११७८-१२४१
पादुकाराज	३ दिन	...	६ दिन	...
त्रिभुवनपाल	...	...	२ मास १२ दिन	सन् १२४१-१२४२

[1] एक प्रतिमें ५२ वर्ष दिया है।

कुमारपालके पारिवारिक सम्बन्धी

कुमारपालप्रतिबोधके अनुसार कुमारपाल, भीमराजप्रथमके पौत्रका पौत्र था। भीमदेवको क्षेमराज नामक पुत्र था और उसका पुत्र देवपाल था। देवपालका पुत्र त्रिभुवनपाल था। इसी त्रिभुवनपालका पुत्र कुमारपाल[1] था। मेरुतुगका कथन है कि भीमदेवने चकुलादेवीको अपने रनिवासमे रखा था और उसीसे क्षेमराज उत्पन्न हुआ। उसकी दूसरी रानी उदयमतिसे कर्ण नामका पुत्र हुआ। कर्णदेवने मीनलदेवीसे विवाह किया और उसीसे जयसिंह हुए। क्षेमराजके पुत्रका नाम देवपाल[2] था और उसके पुत्रका नाम त्रिभुवनपाल था। त्रिभुवनपालने काश्मीरादेवीसे विवाह किया। इनके तीन पुत्र तथा दो पुत्रिया हुईं। तीनो पुत्रोके नाम थे—(१) महिपाल (२) कीर्तिपाल तथा (३) कुमारपाल, और पुत्रियोके नाम क्रमश. प्रेमलदेवी तथा देवलदेवी थे। तत्कालीन द्वयाश्रय काव्यमें क्षेमराज तथा कर्ण, भीमदेवके दो पुत्रके रूपमे अकित है। इसमे यह भी लिखा है कि क्षेमराजका पुत्र देवप्रसाद हुआ। प्रबन्ध चिन्तामणि[3]में लिखा है कि भीमदेवके एक पुत्रका नाम हरिपाल था और त्रिभुवनपाल उसीका पुत्र था। कुमारपालका पिता यही त्रिभुवनपाल था। कुछ स्थानोमे भीमका पुत्र क्षेमराज, उसका पुत्र हरिपाल, हरिपालका पुत्र त्रिभुवनपाल और त्रिभुवनपालका पुत्र कुमारपाल,[4] ऐसा भी क्रम मिलता है।

---

[1] कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ५-६।

[2] मेरुतुंगकी थेरावलीमें देवप्रसादके स्थानपर "देवपाल" लिखा है।—जर्नल आव बंगाल रायल एशियाटिक सोसायटी खंड ९, पृ० १५५।

[3] प्रबन्ध चिन्तामणि, पृ० ११६।

[4] बाम्बे गजेटियर : खंड १, उपखंड १, पृ० १८१।

उपर्युक्त विवेचनके आधारपर कुमारपालके पारिवारिक सम्बन्धियों-का क्रम इसप्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

रानी : बकुलादेवी=भीमदेव=उदयमति : रानी

|

क्षेमराज

|

देवपाल या देवप्रसाद अथवा हरिपाल

|

त्रिभुवनपाल=काश्मीरादेवी

|

महिपाल | कीर्तिपाल | कुमारपाल | प्रेमलदेवी | देवलदेवी

वंशावली तथा उक्त पारिवारिक सम्बन्ध सूत्रसे विदित होता है कि कुमारपालका पिता त्रिभुवनपाल था, उसकी माता थी काश्मीरादेवी। कुमारपालको महिपाल तथा कीर्तिपाल नामके दो भाई थे और दो बहिनें भी थी जिनके नाम क्रमश: प्रेमलदेवी तथा देवलदेवी थे।


प्रारम्भिक जीवन
और
शिक्षा-दीक्षा

विगत अध्यायमे हमे विदित हो चुका है कि कुमारपालका पिता त्रिभुवनपाल था और उसकी माताका नाम काश्मीरादेवी था। कुमारपालका जन्म विक्रम संवत् ११४९ अथवा सन् १०९२ ईस्वीमे हुआ था। कहा जाता है कि विक्रम सवत् ११९९ अथवा सन् ११४२ ईस्वीमें जब वह राजगद्दीपर आसीन हुआ तो उसकी अवस्था पचास वर्षकी थी।[1] इस गणनाके अनुसार भी कुमारपालके जन्मकी उक्त तिथि ही निश्चित प्रतीत होती है। कहा जाता है[2] कि कुमारपालके प्रपितामह क्षेमराजने जो भीमदेव प्रथमका पुत्र था, स्वेच्छासे राज्यगद्दीका त्याग कर दिया था।[3] किन्तु दूसरे सूत्रके आधारपर यह भी पता चलता है कि उसे उत्तराधिकारसे इसलिए वंचित कर दिया था कि भीमदेवने चकुलादेवी या बकुलादेवी नामकी नर्तकीको अपने रनिवासमे रख लिया था। प्रबन्ध चिन्तामणिके रचयिताका कथन है कि अणहिलपुरके राजा भीमदेवने चकुलादेवीको जो यद्यपि क्षत्रिय नही थी अपितु वृत्तिसे नर्तकी थी, उसकी चारित्रिक दृढ़ता तथा भक्तिके कारण अपने अन्त पुरमे स्थान दिया था। क्षेमराजके पुत्र देवप्रसाद तथा भीमदेवके पुत्र कर्णदेवमे अत्यन्त घनिष्ठ मैत्री थी। कहा

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश ६, पृ० ९५।

[2] वही, पुरातन प्रबन्ध संग्रह, परिशिष्ट १, पृ० १२३। "संपादलक्ष प्रहित क्षुरिकातः पालिताब्द युगशीला बकुलादेवी वेश्या श्री भीमेनोढ़ा"।

[3] के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व, खंड १, पृ० ४२।

जाता है कि कर्णदेवकी मृत्युके समय देवप्रसादने अपने पुत्र त्रिभुवनपालको जयसिंहको सौंपकर अपनेको चितापर समर्पित कर दिया।[1]

शिक्षा-दीक्षा

कुमारपालकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षाके सम्बन्धमें दुर्भाग्यसे कोई ऐसी प्रामाणिक सामग्री नहीं, जिसके आधारपर उसके शिक्षा क्रमकी रूपरेखा प्रस्तुत की जा सके। किन्तु कुमारपालका पालन पोषण जिस स्थिति-विशेष तथा विशिष्ट वातावरणमें हुआ था, उससे हम उसकी शिक्षा-दीक्षाके स्वरूपका सकेत प्राप्त कर सकते हैं। कुमारपालका पिता त्रिभुवनपाल अपने राजपरिवारके शीर्षस्थ व्यक्तिका सदा विश्वस्त बना था। युद्धभूमिमें राजाके सम्मुख वह इसी अभिप्रायसे उपस्थित रहा करता था कि राजाके शरीरकी रक्षा प्राण देकर की जा सके। द्वयाश्रय काव्यमें इस बातका उल्लेख मिलता है कि सिद्धराजसे त्रिभुवनपालका सम्बन्ध बहुत अच्छा था और वह सिद्धराजके साथ रणभूमिमें जाया करता था। कुमारपालचरितमें भी इसका विवरण मिलता है कि वह सिद्धराज जयसिंहके राजदरबारमें जाया करता था। इन परिस्थितियोंमें इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि कुमारपालकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा निस्सन्देह एक राजकुमारकी भांति ही हुई होगी।

मेरुतुंग तथा हेमचन्द्रने अणहिलपाटकका जो वर्णन तथा विवरण लिखा है उसमें सम्राटके पार्श्वमें युवराज अथवा उत्तराधिकारी राजकुमारका उल्लेख आया है।[2] इसका भी विवरण मिलता है कि राजधानीमें बहुतसे मन्दिर तथा उच्च शिक्षा प्रदान करनेवाले विद्यापीठ थे।[3]

---

[1] रासमाला : अध्याय ६, पृ० १०७।

[2] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

[3] वही, पृ० २३९।

इस प्रकारका वर्णन आया है कि कुमारपाल प्रातःकालमें पठन-पाठन तथा सूतोंसे गाथा सुना करता था। राजदरबारमें भाटजन प्राचीनकालका इतिहास सुनाया करते थे। इतिहासका अध्ययन युवराजके लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता था। कुमारपालने बाल्यकालमें अश्वारोहण, शस्त्र-सचालन तथा लक्ष्यभेदकी शिक्षा अवश्य ग्रहण की थी। प्रौढ़ जीवनमे जब वह समरभूमिमे युद्ध करने गया और वहा उसने जैसा सफल नेतृत्व किया, विशेषकर जिस शौर्य तथा वीर्यप्रदर्शनके लिए उसे शाकम्बरी[2] भूपालविजेताकी उपाधि मिली थी, उसे देखते हुए यह स्वीकार करनेमे कोई सन्देह नही कि बाल्यावस्थामे कुमारपालने उक्त सैनिक शिक्षाए समुचित ढगसे प्राप्त की थी। प्राचीन कालमे पर्यटन शिक्षाका आवश्यक अग माना जाता था, जिसके बिना कोई शिक्षाक्रम पूर्ण हुआ नही मान्य किया जाता था। कुमारपालको भाग्यचक्रके कारण सात वर्षों तक सतत विभिन्न प्रदेशोमें पर्यटन करना पडा था। इसी भ्रमणके फलस्वरूप वह विभिन्न राजदरबारो, मन्त्रियो तथा विद्वानोसे सम्पर्क स्थापित कर सका और ये अनुभव उसे उस समय अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुए, जब वह अणहिलवाडकी राज्यगद्दीपर शासनारूढ हुआ।

कुमारपालके प्रति सिद्धराजकी घृणा

जयसिंह सिद्धराज अपनी वृद्धावस्था पर्यन्त नि.सन्तान रहे। इस अवस्थामे यह स्वाभाविक था कि कुमारपाल उस युवराजकी स्थितिमे होता, जिसे राज्यका उत्तराधिकार मिलनेवाला था। जैन इतिहासोके अनुसार सिद्धराजको भगवान सोमनाथ, साधु हेमचन्द्र, माता अम्बिका

---

[1] द्याश्रय काव्य, प्रथम सर्ग, श्लोक ४८-४९।

[2] निज भुज विक्रम रणांगण विनिर्जित, शाकंवरी भूपालः इंडि० ऐंटी०: खंड ६, पृ० १८१।

कोडीनर[1] तथा ज्योतिषियोने कह दिया था कि उसे पुत्र न होगा और कुमारपाल ही उसका उत्तराधिकारी होगा, किन्तु यह बात जयसिंहको तनिक अच्छी न लगती। वह कुमारपालसे अत्यधिक घृणा करने लगा और इस बातके लिए भी प्रयत्नशील हुआ कि कुमारपालकी हत्या कर डाले।[2] मेरुतुंगके कथनानुसार जयसिंहकी यह घृणा कुमारपालके नर्तकी बकुलादेवीका वंशज होनेके कारण थी। जिनमदनके विवरणके अनुसार जयसिंह सिद्धराज उक्त कार्यके लिए इस आशासे भी प्रयत्नशील था कि यदि उसकी हत्या हो जाती है तो भगवान शिव उसे एक पुत्ररत्नका वर दे सकते है। कुमारपालचरितके अनुसार तो यहा तक पता लगता है कि सिद्धराजने कुमारपालके सहित त्रिभुवनपालके समस्त परिवारकी हत्या कर देनेकी भी योजना बनायी थी। त्रिभुवनपालकी हत्या हुई किन्तु कुमारपाल बच निकला। सिद्धराजकी घृणासे क्लेशित तथा अपने बहनोई कृष्णदेवके परामर्शानुसार उसने परिवार छोड दिया और अज्ञातवास करने लगा।

कुमारपालका अज्ञातवास

प्रबन्ध चिन्तामणिके रचयिताने लिखा है कि कुमारपाल अनेक वर्षों तक साधुके वेशमे विभिन्न स्थानोमे घूमता रहा। सयोगवश एक बार वह पाटन (अणहिलपुर)के एक मठमे आकर रहा। जिस दिन वह पाटन आया सिद्धराजके पिता कर्णदेवका वार्षिक श्राद्ध था। उसीदिन सिद्धराजने नगरके सभी सन्यासियोको निमन्त्रण दिया था।[3] कुमारपालको

[1] अणहिलवाड़ा राजधानीका प्रसिद्ध जैनमन्दिर : बाम्बे गजेटियर।

[2] प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० १९५-१९६ तथा प्रबन्ध चिन्तामणि प्रकाश : "भवदनन्तरमयं नृपो भविष्यति सिद्धनृपो विज्ञप्तस्तस्मिनन्हीन जाता चित्य सहिष्णुतया विनाशावसरं सततमन्वेषयामास"

[3] प्रबन्ध चिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७७।

भी सभी सन्यासियोंके साथ उपस्थित होना पड़ा। सिद्धराज जयसिंह सभी सन्यासियोंके समूहका एक-एक कर श्रद्धाभक्तिके साथ चरण धो रहे थे। साधुवेशमे कुमारपालका जब वे चरण धोने लगे तो उनकी कोमलता तथा उसपर अंकित राजत्वके विशेष चिह्नोको देखकर आश्चर्यचकित रह गये। सिद्धराजकी मुखमुद्रापर इस घटनाके परिणामस्वरूप हुए परिवर्तनको कुमारपालने सावधानीसे देख लिया तथा तत्काल ही वहासे भाग निकला। सिद्धराजके सैनिकोने जब उसका पीछा किया तो वह पहले कुम्हारके घरमे जा छिपा और फिर एक किसानके खेतकी कटीली झाडियोमे छिप गया। इसप्रकार उसने सैनिकोसे पीछा छुड़ाया।

पलायनके समय जब वह एक वृक्षके नीचे विश्राम कर रहा था उसने देखा कि एक चूहा एक छिद्रसे एक एक कर इक्कीस रजत मुद्राए ला रहा है। बादमे चूहा जब उन रजत मुद्राओको फिर ले जाने लगा तो कुमारपालने उसे एक मुद्रा तो ले जाने दी और शेषको अपने अधिकारमे कर लिया। चूहा बिलसे बाहर आया और अपनी रजत मुद्राओको न पाकर इतना दुखित हुआ कि तत्काल वही उसके प्राण निकल गये। इस घटनाके कारण कुमारपालको बहुत क्लेश हुआ। एक बार जब वह अज्ञात दिशाकी ओर चला जा रहा था तो उसे एक भद्र महिलासे भेट हुई जो अपने पिताके घर जा रही थी। महिलाने कुमारपालको भाईके नाते निमन्त्रित कर सुस्वादु भोजन कराया। इसीप्रकार यात्राके पश्चात् यात्रा करता हुआ कुमारपाल खम्भातकी खाडीमे स्तम्भतीर्थ जा पहुचा। यही प्रसिद्ध महान् जैनमुनि हेमचन्द्राचार्य उस समय निवास कर रहे थे।[1]

हेमाचार्यसे मिलन

स्तम्भतीर्थमें कुमारपाल मन्त्री उदयनके यहा सहायता मांगने गया।

---

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि : पृ० ७७ तथा पुरातन प्रबन्ध संग्रह : पृ० १२३।

उदयन भी उससे भेंट करनेके लिए मठमें गया। उसके प्रश्नोंके उत्तरमें हेमाचार्यने कुमारपालके अंगोंपर विशेष राजचिह्नोंको देखकर भविष्य-वाणी की कि कुमारपाल ही इस समस्त प्रदेशका भावी शासक होगा। यह देखकर कि कुमारपाल इस कथनपर विश्वास करनेमें संकोच कर रहा है उन्होंने अपनी भविष्यवाणीकी दो प्रतिलिपियां प्रस्तुत करायीं। एक कुमारपालको दी तथा दूसरी मन्त्री उदयनको। हेमाचार्यकी भविष्य-वाणी[1] यह थी कि यदि सवत् ११९९ कार्तिक मासके कृष्ण पक्षकी द्वितीया रविवारको जब चन्द्रमा हस्त नक्षत्रमें रहेगा, कुमारपाल सिंहा-सनारूढ़ न हुआ तो मैं इसके बादसे भविष्यवाणी करना ही छोड़ दूंगा। यह देख कुमारपाल तथा उदयनने स्वीकार किया कि यदि भविष्य-वाणी सत्यमें परिणत हुई तो वे उनकी आज्ञाका पालन करेंगे। हेमचन्द्रने उसी समय कुमारपालसे भी प्रतिज्ञा करा ली कि यदि वह राजा हुआ तो जैनधर्म स्वीकार कर लेगा। इसके बाद कुमारपाल उदयनके घर गया। उदयनने उसका आदर सत्कार किया तथा सभी साधनोंसे युक्त कर उसे मालवा भेजा।

मालवामें खडगेश्वरके मन्दिरके एक शिलापट्टमें जिसमें उसके शिलान्यासका विवरण उत्कीर्ण था, उसे एक श्लोक[2] दिखायी पड़ा जिसमें यह भाव व्यक्त थे कि जब ११ सौ ९९ वर्ष पूर्ण हो जायगे तो ओ विक्रम, तुम्हारे समान ही कुमार नामका प्रतापी राजा होगा।[3] इस उत्कीर्ण लेखको

---

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि : पृ० १९४ : सं० ११९९ वर्षे कार्तिक वदि २ रवौ हस्त नक्षत्रे यदि भवतः पट्टाभिषेको न भवति तदातः परं निमित्तावलोक सन्यासः।

[2] प्रबन्ध चिन्तामणि : पृ० १९४, "पुण्ये वर्ष सहस्र शते वर्षाणां नव नवत्यधिके भवति कुमार नरेन्द्रस्तव विक्रम राज सदृशः"।

[3] पुरातन-प्रबन्ध संग्रह : पृ० १२३।

पढ़कर वह अत्यधिक आश्चर्यचकित हुआ। उसी समय कुमारपालको विदित हुआ कि सिद्धराज जयसिंहका देहान्त हो गया। यह सुनकर वह अणहिलपुरकी ओर चला।

प्रभावकचरित्रमें कुमारपालका प्रारम्भिक जीवन

कुमारपालके प्रारम्भिक जीवनके सम्बन्धमें प्रभावकचरित्रका विवरण अल्पान्तरके साथ उक्त आशयका ही है। हेमचन्द्रने कुमारपालके भाग्योदयमें कितना योगदान दिया, उसका वर्णन इसमें मिलता है। कहते हैं कि जयसिंहको गुप्तचरों द्वारा विदित हो गया था कि कुमारपाल साधुवेशमें तीन सौ साधुओंके साथ अणहिलवाडा आया है। कुमारपालको पकडनेके लिए ही राजाने सभी साधुओंको निमन्त्रित किया और सिद्धराज जयसिंहने सभी साधुओंके चरण धोनेका निश्चय किया। ऐसा करनेमें बाह्य रूपसे तो असीम भक्तिका प्रदर्शन था किन्तु वास्तवमें कुमारपालको उसके विशिष्ट राजचिह्नोंके आधारपर पकडना ही उसका अभिप्रेत था। ज्योंही उसने कुमारपालके पैरका स्पर्श किया उसमें उसे कमल, छत्र तथा पताकाके विशिष्ट राजचिह्न अंकित मिले।[1] जयसिंहने अपने सेवकोंकी ओर संकेत किया। कुमारपालने यह देख लिया और तत्क्षण हेमचन्द्रके निवासमें जा छिपा। गुप्तचर उसका पीछा करते रहे। हेमचन्द्रने उसपर ताड वृक्ष फैला दिये। ताडके पत्रोंको राज्याधिकारियोंने शीघ्रतामें नहीं देखा। जब तात्कालिक सकट दूर हो गया तो कुमारपाल अणहिलवाडेसे

---

[1] विज्ञप्रमन्यदाचारैर्जटाधरशत त्रयम्। अभ्यागादस्ति तन्मध्ये भ्रातृपुत्रो भवद्रिपुः॥ भोजनाय निमन्त्रयन्ते ते सर्वेऽपि तपोधनाः। पादयोर्यस्य पद्मानि ध्वजश्छत्रं सते द्विषन॥ श्रुत्वेत्या ह्वाय्यतान् राज्य तेषां प्राक्षालयत् स्वयम्। चरणौ भक्तितो यावत् तस्या प्यवसरोऽभवत्। पद्येषु वृश्य मानेषु पदयोर्हष्टि संज्ञयां। स्यातेऽत्र तैर्नृपोज्ञानात कुमारोऽपि बुबोध तत्।

भाग निकला। एक शैव ब्राह्मण वोसरीके साथ वह स्तम्भतीर्थ चला गया। यहा आकर उसने अपने मित्रोको मन्त्री उदयनके पास सहायताका सन्देश लेकर भेजा। उदयनने राजाके शत्रुको किसी प्रकारकी सहायता देना स्वीकार नही किया। रात्रिमे कुमारपाल बहुत क्षुधा पीडित हुआ। वह रातमें ही एक जैनमठमे आया। सयोगसे यही हेमचन्द्र चातुर्मास्य कर रहे थे। हेमचन्द्रने कुमारपालके विशिष्ट राजचिह्नोको पहचानकर और यह समझकर कि यही भावी राजा है उसका स्वागत किया।[1] हेमचन्द्रने भविष्यवाणी की कि सातवें वर्ष वह राज्य सिंहासनपर आसीन होगा। हेमचन्द्रकी प्रेरणासे ही उदयनने कुमारपालकी भोजन, वस्त्र तथा धनसे सहायता की।[2] इसके पश्चात् सात वर्षों तक कुमारपाल कापालिकके वेशमे अपनी पत्नी भोपालादेवीके साथ विभिन्न प्रदेशोमे भ्रमण करता रहा।[3] ११९९ विक्रम सवत्‌मे जयसिंहकी मृत्यु हुई।[4] कुमारपालको जब यह समाचार मिला तो वह सिंहासनपर अधिकार प्राप्त करनेके निमित्त अणहिलपुर वापस लौटा।[5]

कुमारपालका भ्रमण और जिनमदन

जिनमदनके "कुमारपालचरित्र"मे कुमारपाल तथा हेमचन्द्रका मिलन बहुत पहले कराया गया है। कुमारपालके अज्ञातवास तथा भ्रमणकी

---

[1] प्रभावक चरित्र : अध्याय २२, श्लोक ३७६-३८४।

[2] वही,—'वरासन्युपवेश्योक्चे राजपुत्रास्त्वनिर्वृतः। अमुतः सप्तमे वर्षे पृथ्वीपालो भविष्यसि।'

[3] वही, पृ० १९७।

[4] वही : द्वादशस्वय वर्षाणां शतेषु विरतेषु च एकोनेषु महीनाथे सिद्धाधीशे दिवंगते।

[5] वही : श्लोक ३९५-३९७।

कहानी जिनमदनने भी थोडे बहुत अन्तरके साथ उसी प्रकार कही है। उसने लिखा है कि जयसिंहकी दृष्टि कुमारपालके प्रति उस समयसे बदली जब वह उसके दरबारमे अपनी अधीनता प्रकट करने गया था। जयसिंहके दरबारमें उसने हेमचन्द्रको देखा। हेमचन्द्रसे मिलनेके लिए वह तत्काल मठमें गया। वहा हेमचन्द्रने कुमारपालको उपदेश दिया तथा प्रतिज्ञा करायी कि वह परदाराको बहिन समझेगा।[1]

कुमारपालके पलायनकी जो कथा जिनमदनने लिखी है उसमे प्रभावक-चरित्र तथा प्रबन्धचिन्तामणिमे वर्णित कथाका मिश्रण है। जिनमदन तथा मेरुतुग दोनो ही इसपर एकमत है कि पलायन और भ्रमण करते हुए कुमारपालने हेमचन्द्रसे पहले कच्छमे भेट की। किन्तु कुमारपाल हेमचन्द्र-का यह मिलन कच्छके बाहरी द्वारपर स्थित एक मन्दिरमे होता है। यही उदयन भी हेमचन्द्रके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने आता है। उदयनकी उपस्थितिमे कुमारपालके प्रश्न करनेपर कि आगन्तुक कौन है, हेमचन्द्रने पूर्वके इतिहासकी चर्चा की है। इसके पश्चात् हेमचन्द्रकी भविष्यवाणी होती है और जिस प्रकार मेरुतुगने लिखा है उसी प्रकार उदयनके यहा कुमारपालका आदर सत्कार होता है। जिनमदनने तो यहा तक लिखा है कि कुमारपाल बहुत दिनो तक उदयनका अतिथि रहा। जब जयसिंहको कुमारपालके कच्छमे रहनेकी बात ज्ञात हुई तो उसने कुमारपालको पकड़नेके लिए सैनिक भेजे। पीछा करते हुए सैनिकोसे बचनेके लिए कुमारपाल हेमचन्द्रके मठमे भागा तथा वहा पाडुलिपिके समूहकी कोठरीमें छिप गया। पलायनकी अन्तिम कथा सम्भवतः प्रभावक-चरित्रमें वर्णित हेमचन्द्रकी सहायता विषयक कहानीकी पुनरावृत्ति है। सम्भवतः जिनमदनने यह उचित नही समझा कि अणहिलपुरमे हेमचन्द्र-

---

[1] जिनमदन : कुमारपाल चरित्र, पृ० ४४-५४। यह उपदेश ब्राह्मण साहित्यके अनेक उद्धरणोंसे युक्त है।

कुमारपाल मिलन हो और तत्काल बाद ही कच्छमें। इसीलिए उसने ताडपत्रोमें छिपनेके प्रसगको कच्छकी घटना बताया है। इस घटना प्रसंग-को वास्तविकताका रूप देनेके लिए उसने पाडुलिपियोंकी कोठरीका उल्लेख किया है। इसके पश्चात्के भ्रमणोका विवरण जिनमदनने बहुत विस्तृत-रूपसे लिखा है। प्रभावकचरित्र तथा प्रबन्धचिन्तामणिमे इनका उल्लेख नही मिलता। निश्चय ही जिनमदनके इस विस्तृत विवरणोका स्त्रोत पृथक रहा है। इस विवरणके अनुसार कुमारपाल वातपद्र (बडौदा)की ओर जाता है और तत्पश्चात् क्रमशः भृगुकच्छ (भडौंच) कोल्हापुर, कल्याण, कनेई तथा दक्षिणके अन्य नगरोमे परिभ्रमण करता हुआ पैथान-प्रतिष्ठान होता हुआ अन्तमें मालवा पहुचता है। जिनमदनका यह वर्णन श्लोकबद्ध है और ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक कुमारपालचरित्रोंके आधारपर यह प्रस्तुत किया गया है।[१]

मेरुतुगकी प्रबन्धचिन्तामणि, प्रभावकचरित्र तथा जिनमदनके कुमार-पालमें, अज्ञातवास और पलायनकी मिलती जुलती ही कथाएं मिलती हैं। मेरुतुगका उक्त वर्णन प्रभावकचरित्रसे प्राय. एकदम साम्य रखता है। इनके वर्णनमें जो कुछ अन्तर है, उनमें एक ध्यान देने योग्य यह है कि मेरुतुगकी कथामे हेमचन्द्र एक ही बार सामने आते है। इसमे न तो अणहिल्पुरमें ताडकी पाडुलिपियोमें छिपनेका कथा प्रसग उसने वर्णित किया है और न कुमारपालके सिंहासनारूढ होनेके पूर्व दूसरी भविष्यवाणीका उल्लेख। कुछ अन्तर सहित उसने हेमचन्द्र तथा कुमार-पालके स्तम्भतीर्थमें मिलनेकी कथाप्रसगका ही विवरण दिया है।

मुसलिम इतिहासकी साक्षी

सम-सामयिक देशके इन विवरणोके अतिरिक्त विदेशी इतिहासकारने

---

[१] जिनमदन : कुमारपाल चरित्र, पृ० ५८-८३। इसमें हेमचन्द्र तथा उदयनके मिलनका भी विवरण है।

भी कुमारपालके पलायनकी घटनाका उल्लेख किया है। इसमें कहा गया है कि कुमारपालको अपने प्रारम्भिक जीवनमें वेश बदलकर जयसिंहकी मृत्यु तक अनेकानेक देशोंका परिभ्रमण करना पड़ा था। अबुल फजलने अपनी आईन-ए-अकबरीमें लिखा है कि कुमारपाल सोलंकीको अपने प्राणके भयसे जयसिंहके मृत्यु पर्यन्त निर्वासनमें रहना पड़ा था।[1]

उपलब्ध विवरणोंका विश्लेषण

संस्कृत, प्राकृत तथा जैनग्रन्थोंमें अल्पाधिक अन्तरके साथ कुमारपालके अज्ञातवास, पलायन और परिभ्रमणके जो वर्णन मिलते हैं, उनसे इस निश्चित निष्कर्षपर आना स्वाभाविक है कि कुमारपालका प्रारम्भिक जीवन राजनीतिक था। इस कालमें उसे अनेकानेक संकटों और कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। जैनग्रन्थोंमें कुमारपालके भाग्योदय तथा उसको हेमचन्द्र द्वारा दी गयी सहायताके जो विवरण मिलते हैं, उसमें इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि जैनमुनि हेमचन्द्रने कुमारपालको महान् सहायता प्रदान की थी। जिस समय कुमारपाल आश्रयविहीन हो अज्ञातवास तथा असहायावस्थामें इधर-उधर भ्रमण कर रहा था, उस समय न केवल हेमचन्द्रने उसकी सहायता की, अपितु उसका पथ-प्रदर्शन भी किया। वस्तुत: उस समय जैनमुनि श्रीहेमचन्द्रके आदेशसे ही उदयनने राजा सिद्धराज जयसिंह द्वारा शत्रु समझे जानेवाले कुमारपालकी सहायता की। उदयनके यहां कुमारपालके लिए न केवल शरण तथा भोजनकी व्यवस्था हुई अपितु उसने कुमारपालको धनादिकी सहायता देकर मालवा भेजा। हेमचन्द्राचार्यने ही भविष्यवाणी की थी कि कुमारपाल गुजरातका भावी राजा होगा तथा सिद्धराज जयसिंहके पश्चात् उसका उत्तराधिकारी और सिंहासनाधिकारी होगा। जिन संकट तथा

[1] आइने-अकबरी : खंड २, पृ० २६३।

विषय परिस्थितियोमें कुमारपाल वेश परिवर्तनकर विभ्रमित भ्रमण कर रहा था उनमे यदि जैनमुनि हेमचन्द्रकी प्रेरणा, पथप्रदर्शन और सहायता न मिली होती, तो सम्भवत उसके राजनीतिक जीवनकी विकासधारा कुछ और ही होती।

अणहिलपुर (पाटन) आगमन

सतत सात वर्षों तक साधु वेशमें अनेकानेक आपत्तियो और विपत्तियों-का सामना करता हुआ कुमारपाल अपनी पत्नी सहित जब विक्रम संवत् ११९९मे मालवामे था तो उसे सिद्धराज जयसिंहके देहान्तका समाचार विदित हुआ।[1] वह तत्काल ही राजगद्दीपर अधिकार करने अणहिलपुर लौटा। प्रबन्धचिन्तामणि तथा प्रभावकचरित्र दोनोमे ही यह स्पष्ट रूपसे लिखा है कि जब जयसिंह सिद्धराजकी मृत्यु हुई तो यह समाचार पाकर कुमारपाल अणहिलपुर वापस आया। सात वर्षों तक निरन्तर देश-देशान्तर तथा राजदरबारोंके भ्रमणसे ज्ञानार्जन और अनुभवोका सग्रहकर वह अणहिलपुर (पाटन) लौटा।[2]

---

[1] प्रभाकर चरित्र : अध्याय २२, श्लोक ३९१-४००।

[2] वही,—प्रस्थापितो मालवके देशं गतः . . गुर्जरनाथं सिद्धाधिपं परलोक गतमवगम्य:—प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७८।


निर्वाचन और
राज्याभिषेक

प्रबन्धचिन्तामणिकार मेरुतुगने लिखा है कि मालवासे जिस समय कुमारपाल अणहिलपुर लौटा तो उस समय रात्रिका समय हो गया था। उस समय वह बहुत ही भूखा था और उसके पासका सारा धन भी शेष हो गया था। उसने एक मिष्ठान्नगृहसे कुछ मागकर खाया और तब अपने बहनोई कान्हदेव (कृष्णदेव) के घर गया। कान्हदेव जयसिंह सिद्धराजके मन्त्रियोंमें सर्वप्रमुख था और उसीको जयसिंहने योग्य तथा उपयुक्त शासकको सिंहासनारूढ करनेका कार्यभार सौंपा था।[1] राज्य दरबारसे आकर कान्हदेवने कुमारपालको देखा तो विशिष्ट सम्मानपूर्वक उसका स्वागत किया। फोर्बस्ने इस अवसरका वर्णन करते हुए लिखा है कि जैसे ही कान्हदेवने कुमारपालके आगमनका समाचार सुना वह राजमहलसे बाहर निकल आया और उसने कुमारपालका हार्दिक स्वागत किया और उसे आगेकर स्वयं पीछे चलकर प्रासादके भीतर ले गया।[2]

राजसिंहासनके लिए निर्वाचन

दूसरे दिन प्रात काल प्रस्तुत सेनाके साथ कान्हदेव (कृष्णदेव) कुमारपालको राजमहल ले गया। जयसिंहका उत्तराधिकारी कौन हो

---

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७८।

[2] रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७६।

इसी प्रश्नको हल करना था।[1] जब सभी राजदरबारी और प्रमुख सभामें एकत्र हुए तो पहले जयसिंहको एक युवक सम्बन्धी निर्वाचनके निमित्त गद्दीपर बैठाया गया। लेकिन यह युवक एकदम असावधान व्यक्तिसा प्रतीत होता था। उसने अपने पैरोको उचित प्रकार वस्त्रसे ढंका तक न था; इसलिए साधारण लोकज्ञानके अभावमें उसे राजगद्दीके अयोग्य समझा गया। उक्त पदके लिये एक अन्य व्यक्तिको भी राजसिंहासनपर बैठाया गया, किन्तु वह भी मान्य सभासदो और प्रमुखो द्वारा अनुपयुक्त ठहराया गया। जब वह सिंहासनपर बैठा तो बडी विनम्रताकी मुद्रामें, अपने दोनो हाथोंसे प्रणाम करता दृष्टिगत हुआ, इतना ही नही, जब उससे पूछा गया कि जयसिंह द्वारा छोडे गये अठारह प्रदेशोंका शासन तुम किसप्रकार करोगे तो उसने उत्तर दिया आप लोगोंके परामर्श और आदेशसे। यह उत्तर जयसिंह सिद्धराजके शौर्यपूर्ण स्वरको सुननेवाले अभ्यस्त प्रधानोके कानको प्रभावपूर्ण और उचित नही लगे। ऐसा विनम्र और प्रभावहीन व्यक्तित्व भला सर्वोच्च राजकीय पदके लिए कैसे मान्य हो सकता था ?

कान्हृदेवने, जिसे ही मुख्यत. योग्य शासकका चुनाव करना था, कुमारपालको सभाके सम्मुख उपस्थित किया। कुमारपाल राजकीय गौरवके अनुरूप ज्योही सिंहासनपर बैठा चारो ओर हर्षध्वनि छा गयी। उससे भी प्रश्न पूछा गया कि वह सिद्धराज द्वारा छोडे गये राज्योका शासन किस प्रकार करेगा ? इसका उत्तर उसने शब्दोमे नही, अपितु पैरोंपर खडे हो, नेत्रोको आरक्त तथा अपनी असिको कक्षसे आधा बाहर निकालकर दिया।[2] राज्यपुरोहितने इसपर तत्काल ही राज्याभिषेक सम्बन्धी विविध सस्कार सम्पन्न किये। कान्हृदेवने राजाके सम्मुख आदर तथा

---

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७८।

[2] रासमाला, अध्याय ११, पृ० १७६।

श्रद्धाका भाव प्रदर्शित किया। राजभवन हर्षध्वनिसे गूंज उठा। गुजरातके बडे बडे जागीरदारों तथा भूमिधरोने कुमारपालके सिंहासनके सम्मुख नतमस्तक होकर अपनी अधीनता व्यक्त की। शंखध्वनि तथा मंगलवाद्यके मध्यमें इसप्रकार कुमारपाल जयसिंह सिद्धराजका उत्तराधिकारी निर्वाचित और मान्य हुआ। जब सन् ११४२ ईस्वीमें कुमारपाल सिंहासनारूढ हुआ तो उसकी अवस्था पचास वर्षकी थी।[1]

प्रभावकचरित्रमे कुमारपालके राज्यारोहणकी एक भिन्न कथा वर्णित है। इसमे कहा गया है कि अणहिलपुर आनेपर कुमारपाल एक श्रीमत सम्बा (?)से मिला। इस अज्ञात व्यक्तित्वके विषयमे कुछ प्रामाणिक पता नही चलता। श्रीमत सम्बा जैनमुनि हेमचन्द्रके पास इस अभिप्राय और आशयसे गया कि कुमारपालमे, जयसिंहके उत्तराधिकारी होनेके विशिष्ट चिह्न एव लक्षणादि है अथवा नही। जैसे ही उसने वहां प्रवेश किया उसने देखा कि कुमारपाल मठके गद्दीदार सिंहासनपर बैठा था। हेमचन्द्रके अनुसार यह चिह्न ही वाछित राजचिह्न था। दूसरे दिन कुमारपाल अपने बहनोई कान्हदेवके साथ, जो सामन्त था और जिसके पास दस सहस्र सैनिकोकी सेना थी, राजमहल गया और राज्याधिकारी निर्वाचित किया गया।[2]

कुमारपालप्रतिबोधके रचयिता सोमप्रभाचार्यका मत है कि कुमारपालके समस्त शरीरपर राज्यचिह्न थे। इसलिए दरबारके सरदारोंने ज्योतिषियो तथा ज्योतिष-विज्ञानके विशेषज्ञो सामुद्रिक, मौहूर्तिक, शाकुनिक तथा नैमित्तिकोसे परामर्श कर और राज्यके प्रमुख मन्त्रियोंसे विचार-विमर्श कर कुमारपालको सिंहासनारूढ किया। कुमारपालका

---

[1] वही।

[2] आयात् पुरान्तरा श्रीमत्सांबस्य मिलतस्ततः चिरं संविश्य राज्याप्ति निमित्तान्वेषणादृतः—प्रभावक चरित्र, २२, श्लोक ३५६, ४१७।

यह निर्वाचन सभीको इतना सन्तोषजनक प्रतीत हुआ कि निष्पक्ष निर्गुणोंने भी इसे न्यायोचित स्वीकार किया तथा प्रसन्नता प्रकट की।[1]

राज्यारोहणकी तिथि और चुनाव

इसप्रकार सिद्धराज जयसिंहकी मृत्युके पश्चात् यद्यपि कुमारपाल बिना किसी संघर्षके सिंहासनारूढ हुआ, किन्तु राजगद्दीके लिए एक प्रकारका निर्वाचन संघर्ष तो अवश्य हुआ। यह बहुत सम्भव प्रतीत होता है कि सिद्धराजकी मृत्युके बाद जो स्थिति उत्पन्न हो गयी थी उसमें कुमारपालके बहनोई कान्हदेवने उसके सत्वोंकी रक्षाका पूर्ण ध्यान रखा। राजगद्दीके तीन उम्मीदवार थे। कुमारपाल तथा अन्य दो। ये दोनों सम्भवतः उसके भाई महिपाल तथा कीर्तिपाल ही थे।[2] राज्यमन्त्रि-परिषद्के सम्मुख ये दोनों भी कुमारपालके साथ ही, कौन शासक चुना जाय, इस प्रश्नका निर्णय करनेके लिए उपस्थित किये गये थे। राजसभा और प्रमुखोंके सम्मुख उत्तराधिकारीके चुनावमें ये दोनों ही राज्याधिकारके लिए अयोग्य समझे गये तथा कुमारपाल राजा निर्वाचित हुआ।

हेमचन्द्रके कुमारपालचरितमें भी इस बातका स्पष्ट उल्लेख हुआ है कि कुमारपाल अपने मित्रों तथा राज्यके प्रमुख मन्त्रियोंकी सहायतासे

---

[1] एसो जुग्गो रज्जस्स रज्जलक्खण सणाह सव्वंगो
ता भत्ति ठविज्जउ निग्गुणेहिं पज्जत्तमन्नेहिं।
एवं परुप्परं मंतिऊण तह गिण्हिऊण सव्वायं।
सामुद्दिय मोहुत्तिय-साउणिय नेमित्तिय-नराणं।
रज्जंमि परिट्ठवियो कुमारवालो पहाण पुरिसेहिं।
तत्तो भुवणमसेसं परिओस-परं व संजायं।
कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ५।

[2] रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७६।

राजसिंहासनपर अधिकार कर सका।[1] इसीप्रकार प्रभावकचरित्रके प्रणेताका भी कथन है कि कुमारपालका राज्यपदके लिए निर्वाचन हुआ था।[2] इन स्पष्ट उल्लेखोको ध्यानमे रखकर हम इस निर्णयपर आते है कि सिंहासनारूढ होनेके पूर्व कुमारपालका वैधानिक निर्वाचन हुआ था। राज्य उत्तराधिकारके लिए वहा जो प्रतियोगिता हुई उसमे कुमारपालने अपनेको सबसे योग्य सिद्ध किया और इसीलिए राज्यके प्रधानोने उसे राजा निर्वाचित किया। यह भी कहा जाता है कि कुमारपालको राजसिंहासनारूढ करानेमें गुजरातके शक्तिशाली जैन दलका प्रमुख हाथ था। कुमारपालको दस सहस्र सेनापर प्रभुत्व रखनेवाले कान्हदेवका समर्थन प्राप्त था। यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है।

प्रबन्धचिन्तामणि,[3] प्रभावकचरित्र[4] तथा पुरातनप्रबन्धसंग्रह[5] सभी इस तथ्यकी पुष्टि करते है कि कुमारपाल सामन्त कान्हदेवके साथ एक बडी सेना सहित राजदरबारमे गया था।[6] इससे स्पष्ट है कि राज्याधिकारके लिए कुमारपालके निर्वाचनके पीछे सशस्त्र सेनाका भी बल था। इसलिए वास्तविक अर्थमे उसे निर्वाचन नही कहा जा सकता। कुमारपाल-

---

[1] तत्थसिरि कुमर-वालो बाहाए सव्वओ वि धरिअ-धरो।
सुपरिट्ठव-परीवारो सुपइट्ठो आसि राइन्दो।
कुमारपाल चरित : प्रथम सर्ग, पृ० १५।

[2] प्रभावक चरित्र : अध्याय २२, ३५६, ४१७।

[3] प्रबन्ध चिन्तामणि : चतुर्थ, प्रकाश पृ० ७८ "...प्रातस्तेन भावुकेन स्वसैन्यं सन्नह्यं नृपसौधमानीयाऽभिषेक"।

[4] प्रभावक चरित्र : २२ अध्याय, पृ० १९७ : "तत्रास्ति कृष्ण-देवाख्यः सामन्तोऽश्वायुतस्थितिः.. ."

[5] पुरातन प्रबन्ध संग्रह : पृ० ३८।

[6] रासमाला, अध्याय ११, पृ० १७६।

का प्रभावशाली व्यक्तित्व, सम्पन्न जैनदलोंका सहयोग और राज्याधिकारियो द्वारा प्रदत्त सैनिक सहायता, इन समस्त विशेष स्थितियोने कुमारपालको सिद्धराज जयसिंहका उत्तराधिकारी बनाने तथा राजसिंहासन प्राप्त करानेमे सहायता की, इसमे सन्देह नही।

विचारश्रेणीके अनुसार कुमारपाल मार्गशीर्ष शुद्ध चतुर्थीको सिंहासनारूढ हुआ और कुमारपालप्रबन्धके[1] मतानुसार मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्थीको। प्रबन्धचिन्तामणि[2] और कुमारपालप्रबन्ध[3]का अभिमत है कि राज्याभिषेकके समय कुमारपालकी अवस्था लगभग पचास वर्षकी थी। मेरुतुगकी थेरावलीमें लिखा है कि मार्गशीर्ष शुद्ध चतुर्थीको श्रीकुमारपाल सिंहासनारूढ हुए।[4] इसप्रकार प्राप्य सभी विवरणोके अनुसार राज्याभिषेकके समय सन् ११४२ ईस्वीमें कुमारपालकी अवस्था पचास वर्षकी थी।[5]

कुमारपालका राज्याभिषेक

सोमप्रभाचार्यने अपने कुमारपालप्रतिबोधमे कुमारपालके राज्याभिषेक सस्कार तथा समारोहका वर्णन किया है। यह विवरण अत्यन्त रोचक तथा तत्कालीन वातावरणकी अनुपम झाकी कराता है। इसमे कहा गया है जब कुमारपाल सिंहासनारूढ हुआ तो सुन्दर नर्तकिया नृत्य तथा गायनकलाका प्रदर्शन करने लगी। समस्त ससारमें मगलवाद्यका घोष होने लगा। राजप्रासादका प्रागण टूटी हुई मालाओसे आच्छादित हो

---

[1] वही।

[2] प्रबन्ध चिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ९५।

[3] रासमाला : ११ अध्याय, पृ० १७६।

[4] मेरुतुंग : थेरावली, पृ० १४७ तथा बंगाल रायल एशियाटिक सोसायटी जर्नल : खंड १०।

[5] रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७६।

गया था। उसका प्रभाव दिक्-दिगान्तर तक फैल गया। इस प्रकार कुमारपालने अपना शासनकाल प्रारम्भ किया।[१] प्रभावकचरित्र, प्रबन्धचिन्तामणि तथा पुरातनप्रबन्धसंग्रहमें भी राज्याभिषेक संस्कार समारोहके विस्तृत वर्णन मिलते हैं।[२]

समसामयिक नाटक मोहराजपराजयमें यशपालने कुमारपालके राज्यारोहणके अवसरपर प्रजावर्गमें प्रसन्नताकी व्याप्त लहरका वर्णन किया है। इसमें कहा गया है कि सिद्धराजकी मृत्युसे शोकग्रस्त प्रजाके हृदयमें उसने आनन्दकी धारा प्रवाहित कर दी।[३] सिंहासनपर आसीन होनेके उपरान्त कुमारपाल उन लोगोंको नहीं भूला था जिन्होंने विपत्तिकालमें उसकी सहायता की थी। उन सभी सहायक लोगोंको सम्मानित

---

१ तुट्टहार वंतुरिय घरंगण नच्चिय चारु विलास पणंगण
निब्भर सद्द भरिय भुवणंतर वज्जिय मंगल तूर निरंतर।
साहिय विसा चउक्को चउ व्विहोवाय वरिय चउ वग्गो
चउ वग्ग सेवण परो कुमर-नरिंदो कुणइ रज्जं।
कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ५, श्लोक ६२, ६३।

२ अभिषेकमिहैवास्य विदध्वं ध्वस्तबुद्धयः
आसमुद्रावधि पृथ्वीपालयिष्यत्यसौ ध्रुवम्
अथ द्वादशधा तूर्यध्वनिडम्बररितास्वरम्
चक्रे राज्याभिषेकोऽस्य भुवनत्रयमंगलम्
प्रभावक चरित्र, २२ अध्याय, पृ० १९७।

३ एको यः सकलं कुतूहलितया बभ्राम भूमंडलं
प्रीत्या यत्र पतिवर समभवत्साम्राज्य लक्ष्मीः स्वयम्।
श्री सिद्धाधिपवि प्रयोग विधुरामप्रीणयद्यः प्रजां
कस्यासौ विदितो न गुर्जरपतिश्चौलुक्य वंशध्वजः
मोहराज पराजय : १, २८ पृ० १६।

पद प्रदान किये गये। कहा जाता है कि उस कुम्हारको जहां कुमारपालने शरण ली थी, सात सौ ग्राम चित्रकूट अथवा राजपुतानेके निकट चिटोडा किलेके पास दिये गये। प्रबन्धचिन्तामणिकार मेरुतुंगका कथन है कि उसके समयमें उक्त कुम्हारके वंशज विद्यमान थे और हीनवंशमें उत्पन्न होनेकी लज्जासे अपनेको सगरा पुकारते थे।[1] भीमसिंह जिसने कुमारपालकी जीवन रक्षा की थी उसका अंगरक्षक नियुक्त किया गया। देवश्रीने राज्यारोहणके अवसरपर कुमारपालको तिलक किया और उसे देवपो[2] नामक ग्राम प्रदान किया गया था। बड़ौदाके कलूक वणिकको, जिसने कुमारपालको चना दिया था वातपद्र अथवा बड़ौदा ग्राम मिला। कुमारपालके चिरसाथी वोसारीको लतामंडल अथवा दक्षिण गुजरातका राज्यपाल नियुक्त किया गया था।

राज्याभिषेकके पश्चात् कुमारपालने अपनी पत्नी भोपालदेवीको पटरानी बनाया। अपने सबसे पुराने समर्थक तथा प्रारम्भिक सहायक उदयनके पुत्र भागवत अथवा वहडको उसने अपना महामात्य (प्रधान सचिव) नियुक्त किया तथा आलिंगको महाप्रधान बनाया।[3] उदयनका दूसरा पुत्र अहड या अर्पभट्ट कुमारपालके आदेशानुसार न चला तथा उसके अधीन न रहा।[4] वह साभरप्रदेशके राजाके यहा नौकरी करनेके निमित्त भाग गया।[5]

---

[1] आलिग कुलालाय सप्तशती ग्रामभिता विचित्रा चित्रकूटपट्टिका ददे। प्रबन्ध चिन्तामणि, चतुर्थ प्रकाश, पृ० ८०।

[2] कुमारपाल प्रबन्धके अनुसार धवलक्का अथवा धोलकर।

[3] कुमारपालप्रतिबन्धमें लिखा है कि उदयन महामात्य तथा भागवत सेनापतिके पदपर नियुक्त किये गये थे। उदयनके सबसे छोटे पुत्र सोल्लाने राजनीतिमें भाग नहीं लिया।

[4] रासमाला, अध्याय ११, पृ० १७७।

[5] सांभरके अणक या अरुणोराजाने, कहते हैं कुमारपालकी बहनसे

कुमारपाल, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, पचास वर्षकी अवस्थामें राजगद्दीपर बैठा।[1] अपने प्रारम्भिक जीवनमें विभिन्न देशों और राज्य-दरबारोंमें भ्रमणके फलस्वरूप अर्जित अनुभवोंके कारण, कुछ कालके अनन्तर ही कुमारपाल तथा उसकी राज्यसभाके अनेक पुराने उच्च अधि-कारियोंमें प्रशासन सम्बन्धी नीति विषयक मतभेद उत्पन्न हो गया।[2] पुराने मंत्रियोंने अनुभव किया कि इतने योग्य तथा प्रभावशाली शासकके अधीन होनेके परिणामस्वरूप उनका समस्त प्रभाव एवं प्रभुत्व समाप्त हो गया है। इसलिए उन्होंने राजाकी हत्या करने और अपने प्रभावमें रहनेवाले शासकको राजगद्दीपर बैठानेकी मन्त्रणा की। इसप्रकार सभी सरदारोंने मिलकर यह षड्यन्त्र रचा कि कुमारपालकी हत्या कर दी जाय। इस षड्यन्त्रको कार्यान्वित करनेके लिए उन्होंने, उस नगर द्वारपर हत्यारोंको एकत्र किया, जिससे उसी रात्रिको कुमारपाल प्रवेश करनेवाला था। किन्तु "पूर्वजन्मकृत सुकृतोंके फलस्वरूप" इस षड्यन्त्रका आभास कुमारपालको समय रहते लग गया और वह कार्यक्रममें पूर्व निश्चित मार्गसे न आकर दूसरे मार्गमें नगरमें आया। इसके पश्चात् कुमारपालने षड्यन्त्रकारियोंको मृत्युदंड दिया।[3]

थोड़े कालके पश्चात् ही कान्हदेवने, जिसने कुमारपालको राज-सिंहासनपर आसीन कराया था, अपनी सेवाओंको अत्यधिक बहुमूल्य समझकर, कुमारपालके प्रति अशिष्ट व्यवहार करना प्रारम्भ किया।

विवाह किया था। बहनके साथ दुर्व्यवहार करनेपर कुमारपालने उससे युद्ध किया। इसी नामके कुमारपालकी चाचीके पुत्र, बघेल वंशके पूर्वज तथा भीमपल्लीके प्रशासक उक्त अरुणोराजाका कोई सम्बन्ध नहीं है, यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये।

[1] रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७६।

[2] प्रबन्ध चिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ७८।

[3] वही।

यही नहीं, कान्हदेव कुमारपालकी पूर्वदशा तथा उसकी वंशोत्पत्तिका उल्लेख कर राज्यसत्ताकी स्पष्ट अवज्ञा करने लगा। कुमारपालने जब इसका विरोध किया तो उसे और भी अशिष्ट उत्तर सुनना पडा। थोडे दिनोंके बाद कुमारपालने जब यह भलीप्रकार अनुभव कर लिया कि कान्हदेव सदा अवज्ञा करनेका ही निश्चय कर चुका है तो उसने उसे भी मृत्युदंड दिया। इस सम्बन्धमें मेरुतुगने लिखा है कि कुमारपालने कान्हदेवसे अपनी आलोचनाएं, व्यक्तिगत भेंट-मुलाकात तक ही सीमित रखनेकी बात कही, किन्तु कान्हदेवके अपमानजनक व्यवहारका अन्त होते न देख अन्तमें उसकी आँखे निकलवाकर उसे घर भिजवा दिया।[1] अवज्ञाके परिणामका यह उदाहरण उसकी राज्यसत्ताको सुदृढ करनेमें बहुत प्रभावकारी सिद्ध हुआ और उस दिनसे फिर सभी सामन्त राजाज्ञाकी अवहेलना करनेका साहस न कर सके। उन्हे भलीप्रकार यह तथ्य समझमें आ गया कि इस भावनासे दीपकको अगुलीसे स्पर्श करना भ्रमपूर्ण है कि हमने ही इसे ज्योतित किया है, इसलिए इसके प्रति अनुचित व्यवहारसे भी हमारा हाथ न जलेगा। और ठीक यही बात राजाके प्रति भी है।[2] अवज्ञा तथा अशिष्टताके प्रति कुमारपालके इन कठोर निश्चयों तथा दण्डोंने, सभी प्रदेशों तथा अधीनस्थ राजाओंपर उसका प्रभुत्व स्थापित कर दिया।[3]

कुमारपाल द्वारा उपाधिधारण

प्राचीनकालसे राजा-महाराजा अपनी राजशक्तिके प्रभाव और प्रतीक रूपमें विभिन्न उपाधियां धारण किया करते हैं। ब्राह्मणोमे

---

[1] वही, पृ० ७९।

[2] वही। आस्थो मयैवायमवीपि नूनं न तद्देहेन्मामावहेलितोपि। इति भ्रमादङ्गुलिपर्वणापि स्पृश्येत नो दीप इवावनीपः।

[3] वही। इति विमृशद्भिः समन्ततः सामन्तैर्भयभ्रान्तचित्तैस्ततः प्रभृति स नृपतिः प्रतिपदं सिषेवे।

कहा गया है कि पारमेष्ठ्यम्, राज्यं, महाराज्य तथा स्वराज्यंकी उपाधियां देवलोककी है, किन्तु शिलालेखो तथा उत्कीर्ण लेखोंके अध्ययन और विश्लेषणसे ज्ञात होता है कि मर्त्यलोकके राजा-महाराजा भी इनमेंसे अधिकांश उपाधियां धारण किया करते थे। इस प्रकार ये उपाधिया केवल देवलोकके सम्राटो तथा शासको तक ही सीमित न थी।[1] पहले ये उपाधियां गुणोकी प्रतीक थीं। बादमें ये किसी राज्य अथवा राजाकी वार्षिक आयकी अर्थबोधक हो गयी। शुक्रनीतिमे इन उपाधियोंके क्रमिक अर्थका विशद विवरण है।[2]

कुमारपालके सभी उत्कीर्ण लेखोमें अनेकानेक विशद् उपाधियां मिलती है, जिनसे उसकी महानशक्ति, शौर्य और सत्ताका बोध होता है। विभिन्न शिलालेखो तथा ताम्रपत्रोमे कुमारपालकी निम्नलिखित उपाधियोका वर्णन मिलता है—कुमारपालको सभी राजाओमें सर्वशक्तिमान कहते हुए "समस्त राजावली"[3]की उपाधि दी गयी है। वह शिवभक्त "उमापति-वरलब्ध"[4], "परम भट्टारक"[5], "महाराजाधिराज", "परमेश्वर"[6], चक्रवर्ती,[7] गुर्जरधराधीश्वर[8] परमार्हत चौलुक्य[9]की विभिन्न उपाधियोंसे भी विभूषित किया गया था।

निश्चय ही कुमारपालकी ये उपाधियां उसकी महान राजसत्ता और उसके प्रभाव द्योतक है। इनमेंसे एक उपाधि निज भुज विक्रम रणांगण

[1] मैक्समूलर : वैदिक परिशिष्ट, चतुर्थ खंड।
[2] शुक्रनीति : १ : १८४-७।
[3] गाला शिलालेख : पूना ओरियन्टलिस्ट, खंड १, उपखंड २, पृ० ४०।
[4] वही।
[5] जालोर शिलालेख : इपि० इंडि० खंड ९, पृ० ५४, ५५।
[6] वही।
[7] ए० एस० आई० डब्लू० सी०, १९०८, ५१, ५२।
[8] इपि० इंडि० खंड ९, पृ० ५४, ५५।
[9] वही।

विनिर्जित शाकंभरी भूपाल, (उसने समरभूमिमें शाकमरी नरेशको पराजित किया था)का तो कुमारपालके अनेक शिलालेखोमे उल्लेख हुआ है।[1]

इसप्रकार स्पष्ट है कि कुमारपालकी उपाधिया अत्यन्त विशद तथा महान सत्ताव्यक्त करनेवाली थी। और इनसे यह भी स्पष्ट है कि कुमारपाल अपने समयका एक महान राजा हो गया है। कुमारपालकी वीरता, उसकी महान राजकीय सत्ता, उसका साहित्य, संस्कृति तथा कलासे प्रेम उक्त उपाधियोंके अनुरूप भी रहा है, इसमे सन्देह नही। गुजरातके चौलुक्योके पूर्व उत्तरीभारतमे गुप्तवश तथा पुष्यभूति राज्यवशकी महान राज्यशक्ति थी। गुप्तवशके राजाओने भी परमभट्टारक महाराजाधिराज जैसी उपाधिया ग्रहण की थीं। इसप्रकार राजा-महाराजाओ द्वारा उपाधि ग्रहणकी प्रथा तथा परम्परा बहुत प्राचीन चली आ रही थी। अत. यह स्वाभाविक ही था कि महान विजेता कुमारपाल, जिसके समयमे गुजरातके चौलुक्योकी राजशक्ति चरम उत्कर्षपर पहुच गयी थी, प्राचीन राजकीय परम्परानुसार विशद उपाधिया ग्रहण करता।

गुर्जराधिप चौलुक्य कुमारपालकी विभिन्न उपाधियोके विवेचन तथा विश्लेषण करनेपर हम इस निष्कर्षपर पहुचते है कि उसने "समस्त राजावली"की उपाधि इसलिए ग्रहण की क्योकि वह सघटित तथा पंक्तिबद्ध राजाओंका प्रतीक था और उनमे सर्वशक्तिशाली था। महाराजाधिराज, परमेश्वर. परमभट्टारक तथा चक्रवर्ती उपाधिया उसकी व्यापक और विशद राजकीय सत्ताकी द्योतक थी। 'निज भुज विक्रम रणागण विनिर्जित शाकभरी भूपाल' उपाधि कुमारपाल द्वारा रणभूमिमे शाकभरी नरेशको पराजित करनेकी घटनाका स्मारक है और अन्तमे "उमापति वरलब्ध" तथा "परमार्हत चौलुक्य" क्रमशः उसकी शिवभक्ति तथा जैनधर्मके प्रति असीम प्रेम एव श्रद्धाभक्तिकी परिचायक है।

---

[1] ए० एस० आई० डब्लू० सी० : १९०८-५१-५२।


सैनिक
अभियान
और साम्राज्य विस्तार

गुजरातके इतिहासकारोंका अभिमत है कि कुमारपाल अपने पूर्वजोंकी भांति महान योद्धा था। जयसिंहसूरिके कुमारपालचरितमे उसके दिग्विजयका विशद वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थके सम्पूर्ण चौथे सर्गमें कुमारपालके विजयी सैनिक अभियानोका विस्तृत उल्लेख है। इसमें कहा गया है कि कुमारपाल पहले जावालपुर[1] (आधुनिक जालोर) पहुचा। यहाके नायकने उसका स्वागत किया। जावालीपुरसे कुमारपाल सपादलक्ष प्रदेशपर आक्रमण करनेके लिए आगे बढा। सपादलक्षके (शाकभरी) राजा अरुणोराजाने जो कुमारपालका बहनोई भी था, उसका अत्यन्त आदर सत्कारपूर्वक अर्चन किया। यहासे कुमारपालने कुरुमडलकी दिशामें प्रस्थान किया और मन्दाकिनी (गगा)के तटपर जाकर रुका। इसके अनन्तर गुर्जरनरेश कुमारपाल मालवाकी ओर अग्रसर हुआ। मालवाकी दिशामें सैनिक अभियानके मध्यमें चित्रकूटके अधिपतिने उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। अवन्ती देश पहुचकर कुमारपालने इस प्रदेशके शासकको बन्दी बनाया। इसके बाद उसके सैनिक अभियानकी दिशा नर्मदा तटके किनारे-किनारे हुई। रेवलूरमे थोडा विश्राम करनेके पश्चात् उसने नदी पार की तथा आभीर-विषयमें प्रवेशकर प्रकाशनगरीके अधिपतिको अधीनस्थ होनेके लिए बाध्य किया। कुमारपालका सुदूर दक्षिण

[1] कहीं कहीं "जावालीपुर" उच्चारण है। डी० एच० एन० आई० : खंड २, पृ० ९८२।

अभियान विन्ध्य पर्वतोके कारण अवरुद्ध रहा। फिर भी उसने इस क्षेत्रके छोटे-छोटे ग्रामपतियोंसे कर वसूला तथा पश्चिम दिशाकी ओर मुडकर लाटप्रदेशके अधिपतिको अपने अधीनस्थ किया।

लाटप्रदेशसे कुमारपाल पश्चिमोत्तर दिशामे आगे बढा तथा उसने सौराष्ट्र विषयके प्रधानको पराजित किया। सौराष्ट्रसे उसने कच्छमें प्रवेश किया। यहांके प्रधान शासकको पराजित कर कुमारपाल पचनद-धिप नौसाधन समुद्घातासे युद्ध करने गया। उसपर विजय प्राप्त कर कुमारपाल मूलस्थान (आधुनिक मुलतान)के राजा मूलराजपर आक्रमण करने गया। मूलराजसे भीषण युद्ध कर तथा विजयश्री हस्तगत कर चौलुक्य नरेश कुमारपाल शक प्रदेशसे जालधर और मरुस्थान होता हुआ लौटा। इसके आगे जयसिंहने शाकभरी नरेश अरुणोराजा और कुमारपालके बीच हुए युद्धका विस्तृत विवरण दिया है। जयसिहका कथन है कि इस युद्धका कारण, अरुणोराजाका कुमारपालकी बहिन देवलदेवीके प्रति दुर्व्यवहार था। कहते है कि चौहान राज्यको छोड़कर वह चली आयी और अपने भाई कुमारपालसे असद्व्यवहारकी शिकायत की। इसीकारण कुमारपालने चौहान राज्यपर आक्रमण किया और अरुणोराजाको रणभूमिमें पराजित किया, किन्तु अन्तमें उसे ही सिंहासनारूढ किया।[1]

यशपालके तत्कालीन नाटक मोहराजपराजयसे भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है कि गुर्जराधिप कुमारपालने अपने शौर्य-वीर्यसे साभरप्रदेशके अधिपतिको पराजित किया था।[2] सांभरके राजाके पक्षमे रहनेवाले एक प्रसिद्ध राजा त्यागभट्टने कुमारपालके विरुद्ध सैनिक आक्रमण किया।

---

[1] कुमारपाल चरित : जयसिंह, चतुर्थ सर्ग पृ० १७० ।

[2] देवगुज्जर नरेसर परक्कमक्कंत सायंबरी भूपाल—मोहराजपराजयः चतुर्थ अंक पृ० १०६ ।

इस आक्रमणको कुमारपालने पूर्णतया विफल ही नहीं किया अपितु त्याग-भट्टको पराजित करनेमें भी पूर्ण सफलता प्राप्त की।[१]

द्वयाश्रय काव्यमें हेमचन्द्रने कुमारपाल द्वारा श्रीनगर कांची तथा तिलंगानापर विजय प्राप्त कर राज्य-विस्तारको व्यापक करनेकी घटनाका संक्षेपमें विवरण दिया है।[२] कुमारपालके इन सैनिक अभियानोंमें पश्चिमोत्तरसे सिन्धुके राजाने भी अपनी सेवाएं अर्पित की थी।[३] द्वयाश्रय महाकाव्यके प्राकृत भागमें कुमारपालके सम्मुख अन्य प्रदेशोंके राजाओं द्वारा अधीनता स्वीकार करनेकी घटनाका उल्लेख बहुत ही संक्षेपमें किया गया है। जवणके राजाने कुमारपालके भयसे सभी राग-रंगका परित्याग कर दिया था।[४] उव्वेस्वरने कुमारपालको प्रचुर धनराशिकी भेंटके साथ उत्तम कोटिके अश्व प्रदान किये थे।[५] वाराणसीका राजा कुमारपालसे

---

[१] धन्यस्त्यागभरः कुमारतिलकः शाकम्भरीमाश्रितो
योऽसौतस्य कुमारपाल नृपतेश्चौलुक्य चूड़ामणेः।
युद्धायाभिमुखोऽभवज्जय विधि स्त्वास्यं विधिः प्रेक्षते
प्रोक्गर्जन विफलं शरद्घन इव त्वं केवलं वल्गसि ॥
—मोहराजपराजयः अंक ५, श्लोक ३६।

[२] पहु सिरि नयर सिरीए जुज्जसि जुप्पसि तिलंग लच्छीए
जुज्जसि कंचि सिरीए भुंजन्तो दाहिणि इण्हि :७२:।

[३] सिंधु वई तुह चमाण चेलिल्लो तुमइ विस चहुणओ
न जिमई दिवसे जेमई निसाइ पश्छिम दिसाइ तह:७३:

[४] तम्बोलं न समाणई कम्मण-काले वि नण्हए जवणो
विसए अ नोव भुंजइ भएण तुह वसुह कम्मवण :७५:

[५] मणि गढ़िअ कणय घड़िआहरणे उव्वेसरो वर-तुरंगे
संगलिअ लक्ख संखे पेसइ तुह रिउ असंघड़ियो :७५:

मिलनेके लिए सदा उसके प्रासाद द्वारपर अवस्थित रहा करता था।[1] मगध देशसे बहुमूल्य रत्नोकी तथा गौड़ देशसे श्रेष्ठतम हाथियोंकी भेंट कुमारपालके समक्ष आती थी। उसकी सेनाने कान्यकुब्ज प्रदेशको पादाक्रान्त कर वहांके राजाको आतंकित कर दिया था। दशर्न देशकी तो अत्यधिक शोचनीय स्थिति हो गयी थी। वहांका राजा भयत्रस्त होकर मृत्युको प्राप्त हुआ। इस प्रदेशका सारा धन कुमारपालके सैनिक ले गये तथा दशर्न देशके अनेकानेक सेनापति युद्धमें हत हुए। चेदिराज (त्रिपुरी, त्रिपुरा) की शक्ति तथा गर्वका मर्दन कर कुमारपालकी सेनाने रेवा नदीके तटपर अपना शिविर स्थापित किया। सैनिको द्वारा रेवा नदीके घड़ियालोको मारने तथा यहाके उपवनोको क्षतिग्रस्त करनेका भी उल्लेख मिलता है। इसके अनन्तर कुमारपालकी सेनाने यमुना नदी पार की और मथुराके राजापर आक्रमण किया। मथुराका राजा अपनी निर्बल स्थितिको अच्छी तरह समझता था। उसने स्वर्णराशिकी भेंट द्वारा आक्रामकोको सन्तुष्ट किया और अपने नगरकी रक्षा की। कुमारपालकी व्यापक प्रभुता तथा महत्ताका परिचय इस तथ्यसे भी मिल जाता है कि "जगलराज", "तुर्क मुसलमानोका शासक" तथा "दिल्लीके सम्राट" भी उसकी प्रशंसा और प्रशस्ति किया करते थे। षष्ठ सर्गके अन्तमें कविने जगलराजको कुमारपालकी प्रशस्ति करते हुए अंकित किया है।[2]

---

[1] हरिस मुरिआणणो सो महि मंडण कासि-रोडयोराया
टिविडिक्कइ तुह वारं हय चिंचिअ हत्थि चिंचइअं :७६:

[2] नोपाइअ जय कंज अविअट्टिअ विक्कमं बलं तुज्झ
अविलोहिअ जय महुराहिवस्स फंसावहो विजयं :८८:
अविसंवाइ परिक्खा तणु पक्खोडण झडन्त पंसु कणा
णोहरिअ नक्क चक्कं तुट्ट तुरया जंउणमुत्तिआ :८९:

चौहानोंके विरुद्ध युद्ध

द्वयाश्रय काव्यमें कुमारपाल तथा अण अथवा अणकसे युद्धका जो वर्णन मिलता है, वह भिन्न है। इसमे कहा गया है कि उदयनके एक दूसरे पुत्र वहडने, जो सिद्धराज जयसिंहका अत्यन्त विश्वासपात्र था, कुमारपालके अधीनत्व और आदेशोंपर कार्य करना अस्वीकार कर दिया। वहड कुमारपालकी सेवामें न रहकर, नागोरके राजा "अण" या जिसे मेरुतुंगने "अणक" कहा है, के यहां चला गया। अणो या अणक बीसलदेव चौहानका पौत्र था। लक्षग्रामोके राजा "अण"ने जब सिद्धराज जयसिंहकी मृत्युका समाचार सुना तो उसने सोचा कि नये और निर्बल सिंहासनाधिकारी कुमारपालके नेतृत्वमें इस समय गुजरातकी सरकार है। अब अपनेको स्वतन्त्र करनेका उपयुक्त समय आ गया है। इतना ही नही, अणने किसीसे कुछ प्रतिज्ञा करा और किसीको धमकी देकर, उज्जयनीके राजा वल्लाल तथा पश्चिमी गुजरातके राजाओंसे मैत्री कर ली। कुमारपालके गुप्तचरोंने उसे सूचना दी कि अणराजा सेना लेकर गुजरातके पश्चिमी सीमान्तकी दिशामे अग्रसर हो रहा है। उसकी सेनामे अनेक सेनापति विदेशी भाषाओके भी ज्ञाता थे। अण राजाको कूथागम (कुठकोट)के राजाका सहयोग मिल गया तथा अणहिलवाड़ेकी सेनाका एक सैनिक वहड भी उसके पक्षमें जा मिला था। उज्जयिनीराज देश-देशान्तरमे भ्रमणशील व्यवसा-

---

रिउ अक्कन्दावणयं अंखिजमाण हयमजूरिएभकुलं
अचिसूरन्त चमूवं पत्तं मवुुराइ तुह सेन्नं :९०:
सग्गल्लि अन्त जस भर जंगल वहणोवसप्पिउं विण्णा
तुह रिउ झंखावण घण पयाव संतप्पि एण गया :९४:
तइ पेल्लिओ तुरुक्को टिल्ली नाहो गलत्थिओ तह य
अड्डुक्खिओ अ कासी रिउ घत्तण छुह महाएसं :९६:
द्वयाश्रय काव्य : सर्ग चतुर्थ, पृ० २१३, २१६।

थियोंसे गुजरातकी वास्तविक स्थितिसे परिचित हो चुका था। उसने मालवनरेश वल्लालसे एक सैनिक अभिसन्धि कर ली थी। उसने सैनिक आक्रमणकी योजना बनायी थी कि जैसे ही अणराजा आक्रमण कर प्रगति करेगा, वह पूर्व दिशाकी ओरसे गुजरातके विरुद्ध युद्ध घोषित कर देगा। कुमारपालको जब यह स्थिति विदित हुई तो उसके क्रोधका पारावार न रहा।

कुमारपालका सैनिक संघटन

इस अवसरपर कुमारपालकी सहायता तथा सहयोगके लिए भी अनेकानेक राजा आगे आये। कुमारपालको कूली जातिके लोगोंका भी सहयोग प्राप्त हुआ जो प्रसिद्ध अश्वारोही माने जाते थे। पहाड़ी जातिके लोग भी चारों ओरसे कुमारपालके साथ आ गये। कुमारपालके अधीनस्थ कच्छकी जनताने भी उसका साथ देना निश्चय किया। कच्छके साथ ही सिन्धुकी जनता भी सहयोगके लिए प्रस्तुत हो गयी। जैसे ही कुमारपाल आबूकी ओर अग्रसर हुआ उसके साथ मृगचर्मका वस्त्र धारण करनेवाले पहाड़ी भी आ मिले। आबूका परमार राजा विक्रमसिंह, जो जालंधर देशकी जनताका नेता था, कुमारपालके साथ हो गया और उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। अणराजाने कुमारपालके आगमनकी सूचना पाकर अपने मन्त्रियोंके परामर्शकी अवहेलना कर युद्ध करनेका निश्चय किया। किन्तु अभी उसकी सेना युद्धके लिए प्रस्तुत भी न थी कि रणभेरी सुनाई पड़ी और गुजरातकी सेना पर्वतोंकी ओरसे प्रवेश करने लगी।

मेरुतुंग तथा हेमचन्द्र दोनों ही इस बातपर एकमत हैं कि सपादलक्षके राजाने ही पहले आक्रमण किया था। मेरुतुंगका यह भी कथन है कि गुजरातपर आक्रमण करनेके लिए चौहान नरेशको बहड़ने ही प्रेरणा तथा प्रोत्साहन दिया था। बहड़ कुमारपालके विरुद्ध युद्ध करना चाहता था।

उसने उन प्रदेशोके सरकारी अधिकारियोंको बहुमूल्य भेंट तथा रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लिया था। वहडने सपादलक्षके राजाको साथ लाकर गुजरातके सीमान्तपर एक शक्तिशाली सेना खडी कर दी थी।[१] किन्तु वहडके ये सभी प्रयत्न, जिनके द्वारा वह कुमारपालको पराजित तथा पदाक्रान्त करनेकी योजना बना चुका था, एक विचित्र घटनाके कारण विफल हो गये। कुमारपालके पास रणभूमिमे कौशल प्रदर्शित करनेवाला कलहपचानन नामका एक अत्यन्त श्रेष्ठ हाथी था। इस हाथीके महावतका नाम कालिग था। इसे वहडने धन देकर अपनी ओर मिला लिया था। संयोगसे एक बार कुमारपालकी डाट फटकार उसे बहुत अप्रिय लगी और वह अपना कार्य छोडकर चला गया। उसके रिक्त स्थानपर सामल नामका हस्तिचालक, जो अपने कौशल तथा ईमानदारीके लिए प्रसिद्ध था, नियुक्त किया गया। रणक्षेत्रमे जब कुमारपाल तथा अणककी सेनाका सघर्ष प्रारम्भ होनेवाला ही था कि कुमारपालके गुप्तचरोने सूचना दी कि उसकी सेनामे असन्तोष फैला दिया गया है। इस विषम घडीमे वीर कुमारपाल विचलित नही हुआ बल्कि ठीक इसके विपरीत साहस एव दृढतासे अणकसे अकेले ही सामना करनेका निश्चय किया। उसने सामलको अपना हाथी आगे बढानेकी आज्ञा दी। यह देख कि सामल उसकी आज्ञाका पालन करनेमे द्विधासे काम ले रहा है कुमारपालने उसपर विश्वासघातीका आरोप लगाया। सामलने इस आरोपको अस्वीकार करते हुए अपनी कठिनाईका स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि विपक्षी दलकी सेनामे वहड भी हाथीपर सवार है। इसकी आवाज ऐसी है, जिससे हाथी भी आतकित हो जाते हैं। उसने अपने वस्त्रोसे हाथीके दोनो कानोको बाधकर उक्त बाधा हटा दी और उसके अनन्तर कुमारपाल रणभूमिमे अणकके विरुद्ध अग्रसर हुआ।

---

[१] प्रबन्ध चिन्तामणि : पृष्ठ १२०।

अरुणोराजाकी पराजय

वहडको हाथीके महावतके परिवर्तनकी स्थिति ज्ञात न थी। उसे पूर्ण विश्वास था कि हस्तिचालकसे अवश्य सहायता मिलेगी। यह सोचकर उसने अपना हाथी कुमारपालकी ओर बढाया और हाथमें तलवार लेकर उसके मस्तकपर चढ़ जानेका प्रयत्न किया। सामलने इस आक्रमणकी चाल-को तत्काल समझ लिया और अपने हाथीको तनिकसा पीछे हट जानेका आदेश दिया। इस प्रकार वहड दो हाथियोंके मध्य गिर पडा और कुमार-पालके पैदल सैनिको द्वारा पकड़कर बन्दी बना लिया गया।[1] इसके अनन्तर तत्काल कुमारपाल अरुणोकी ओर बढ़ा। उसके निकट जाकर सिद्धराजके उत्तराधिकारी कुमारपालने कहा "जब तुम इतने वीर योद्धा थे तो सिद्धराजके सम्मुख क्यो नतमस्तक हुए थे। पूर्वकालमे तुम्हारा वह कार्य निश्चय ही बुद्धिमत्तापूर्ण था। यदि अब मै तुम्हें पराजित नही करता तो सिद्धराजकी धवल कीर्तिका प्रकाश मन्द पडता जायगा।"[2]

इस प्रकार दोनों राजाओंमें युद्ध हुआ। दोनों पक्षोंकी सेनाओंमें भी भीषण रण सघर्ष हुआ। कुमारपालने अरुणोराजाको क्षत्रियोकी भाति युद्ध करनेकी चुनौती देकर ठीक उसके मुखपर ही बाण छोडा। बाणसे आहत होकर जब वह हाथीके सामने गिर पडा तो कुमारपालने अपने परिधानको वायुमे प्रसन्नतापूर्वक फहराकर विजयकी घोषणा की। जब अरुणोराजाके पक्षके दोनों नेता इस प्रकार पराजित हो गये तो सभीने कुमारपालकी अधीनता स्वीकार कर ली। कुमारपालको इस युद्धमें पूर्ण विजय प्राप्त हुई।

---

[1] प्रभावक चरित्र : अध्याय २२, पृ० २०१, २०२।

[2] रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७७।

साहित्य और शिलालेखोंमें वर्णन

कुमारपालकी अरुणोराजापर इस विजय घटनाका उल्लेख वसन्त विलास[1] वस्तुपाल तेजपाल प्रशस्ति[2] तथा सुकृत कीर्तिकल्लोलिनी[3]में हुआ है। साहित्यमे उल्लिखित कुमारपाल तथा अरुणोराजाके इस युद्धका शिलालेखो और उत्कीर्ण लेखोमे भी वर्णन है। किराडू[4] (वि० स० १२०६) तथा रतनपुर प्रस्तर लेखोंमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख है कि नाडुल्य चौहानोंका प्रदेश कुमारपालके साम्राज्यके अन्तर्गत कर लिया गया था। भट्टड शिलालेखमें यह अंकित है कि विक्रम सवत् १२१०-१६में कुमारपालका एक दण्डनायक नाडुल्य प्रदेशमे नियुक्त किया गया था। अनहिलपाटक तथा शाकभरी राज्योके मध्य चौहानोका नाडुल्य राज्य

---

[1] गायकवाड ओरियंटल सिरीज : संख्या ७, ३, २९।

[2] जैन धर्मसूरीचकार सहसाऽर्णोराजमत्रासयद्
बाणैः कुंकणमग्रहीदपि गुरुचक्रेत्स्मरध्वंसिनम्
इत्य यस्य परिक्षतक्षितिभृतो हंसावलीनिर्मले
रामस्येव निरन्तरं नवयशः पूरैर्दिशः पूरिताः
गा० ओ० सिरीज : संख्या १० : परिशिष्ट १, पृ० ५८।

[3] कथ्यन्ते न महीभृतः कति महीयांसो महीशेखरा
माहात्म्यं स्तुमहे तु हेतुनिगमा वेतस्य चेतोहरम्
मर्यादां मतिलंघयन् रसल सखवद्वाहिनी वाहितो
ऽर्णो राजः स जगाम जांगल महीभागेषु भग्नोन्नतिः
गा० ओ० सिरीज : संख्या १० : परिशिष्ट २, पृ० ६७।

[4] इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४४।

[5] प्राकृत संस्कृत शिलालेख : भावनगर पुरातत्व विभाग, २०५-७।

[6] आर्कलाजिकल सर्वे आव इंडिया वेस्टर्न सर्किल, १९०८, ५१,-५२।

था। चौलुक्योंकी राज्यसीमामें नाडुल्य निश्चित रूपसे सफल युद्ध द्वारा ही मिलाया गया होगा। इस तथ्यका समर्थन कुमारपालके चित्तौरगढ उत्कीर्ण लेखसे भी होता है, और जिसका काल वि० सं० १२२० है।[1] इस उत्कीर्ण लेखमे यह लिखा हुआ है कि कुमारपालने सपादलक्ष प्रदेशको पदाक्रान्तकर शाकंभरी नरेशको पराजित किया और उदयपुर चित्तौरके सालिपुरा स्थानमें अपना विशाल शिविर स्थापित किया।[2] वडनगर प्रशस्तिके उत्कीर्ण लेखमे कुमारपालका उल्लेख करते हुए उसकी दो सैनिक विजयोकी अत्यधिक प्रशंसा की गयी हैं। इनमे एक तो राजपुतानाके शाकंभरी साभर प्रदेशके अधिपति अर्णोराजा (श्लोक १७)पर है और दूसरी विजय पूर्व दिशाके मालवराजपर है। इसी प्रशस्ति द्वारा हमें विदित होता है कि विक्रम संवत् १२०८के पूर्वमें ये युद्ध समाप्त हो गये थे।[3] अब तक नाडोल दानपत्रके आधारपर यही कहा जा सकता था कि अर्णोराजा वि० स० १२१३के पूर्व विजित हो गया था।[4]

इस घटनाका उल्लेख कुमारपालके वि० स० १२०७के चित्तौरगढ शिलालेखमे भी हुआ है।[5] इसमे कहा गया है कि उक्त घटना अभी हालकी है। कुमारपालके पाली शिलालेखमे जो वि० स० १२०९का है, यह अंकित है कि उसने शाकंभरी नरेशको पराजित किया था।[6] अर्णोराजाको

---

[1] वही, १९०५-६, ६१।

[2] इस शिलालेखमें वर्णित "सालिपुरा" नामक स्थानका जहां कुमारपालने शिविर स्थापित किया था, अभी तक ठीक ठीक पता नहीं लग सका है। इपि० इंडि० खंड २, पृ० ४२१-२४।

[3] इपि० इंडि० खंड १, पृ० २९६, श्लोक १४, १८।

[4] इंडि० ऐंटी० : खंड ४१, पृ० २०२-३।

[5] इपि० इंडि० पृ० ४२१, सूची, संख्या २७९।

[6] आर्कलाजिकल सर्वे आव इंडिया, वेस्टर्न सरकिल, १९०७-८ :

पराजित करनेपर कुमारपालको जो उपाधि दी गयी थी, उसका अन्य उत्कीर्ण लेखोमे भी उल्लेख है।[1]

मालव विजय

शाकंभरीके चौहानोसे जो युद्ध हुआ, उसके कारण कुमारपालको पूर्वीय सीमान्तपर दो और युद्ध करने पडे। द्वयाश्रय काव्यमे लिखा है कि अर्णोराजा पर विजय प्राप्त करनेके पश्चात् कुमारपालको यह परामर्श दिया गया कि वह मालवाधिपति वल्लालको पराजितकर यश अर्जन करे। कुमारपालके मन्त्रियोने उसे मालवापर आक्रमण करनेका परामर्श क्यो दिया, इसका उल्लेख हेमचन्द्रने एक अन्य स्थलपर किया है। उसने लिखा है कि अर्णोराजा गुजरातके सीमान्तकी ओर बढ़ आया और उसने अवन्ति नरेश वल्लालसे अभिसन्धि कर ली थी। इसके अन्तर्गत यह योजना बनी कि उत्तर तथा पूर्व दोनो दिशाओसे चौलुक्य राज्यपर एक साथ ही आक्रमण किया जाय।[2] जब चौलुक्य नरेश कुमारपाल पाटन लौटा तो उसे यह समाचार मिला कि विजय तथा कृष्ण जिन्हें उसने वल्लालका प्रतिरोध करनेके लिए भेजा था (और स्वय अणके विरुद्ध सेना लेकर गया था) उज्जयिनी नरेशके पक्षमे जा मिले। उज्जयिनी नरेश अब उसकी राज्यकी सीमामे प्रवेशकर अणहिलपुरकी ओर अग्रसर हो रहा था।

कुमारपाल तत्काल ही अपनी सेना एकत्र कर वल्लालका सामना करनेके लिए रवाना हुआ। हाथीपर सवार कुमारपालने वल्लालपर

"....प्रौढ़ प्रताप निजभुजविक्रमरणांगण विनिर्जित शाकंभरी भूपाल श्रीमत्कुमारपाल देव"।

[1] भीमदेव द्वितीयका दान लेख वि० सं० १२६६, इंडि० ऐंटी० खंड १८, पृ० ११३।

[2] इंडि० ऐंटी० खंड ४, पृ० २६८।

प्रहार कर उसे पराजित किया।[1] वसन्तविलासमे भी वल्लालपर कुमारपालकी विजयका उल्लेख हुआ है।[2] कीर्तिकौमुदीसे विदित होता है कि कुमारपालने वल्लालका शिरच्छेद कर दिया था।[3] साहित्यके इन ग्रन्थोंमें वर्णित इस घटनाकी पुष्टि शिलालेखोंसे भी होती है। दोहाद[4] प्रस्तर स्तम्भमें जयसिंहके समयका वि० स० ११९६का एक उत्कीर्ण लेख है। इसीमे विक्रम सवत् १२०२का भी एक लेख उत्कीर्ण है। आश्चर्यकी बात यह है कि इसमें महामडलेश्वर वपनदेवका नामोल्लेख नही है। दोहद क्षेत्रकी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अवस्थितिको देखते हुए यह सम्भव है कि सन् ११४०-११४६के मध्य इसपर चौलुक्योका अधिकार न रह गया हो। जो हो, शिलालेखके लिखनेवालेने चाहे जिस कारणसे कुमारपालका इसमें नामोल्लेख न किया हो, इसमे कोई सन्देह नही कि सन् ११६३ ईस्वीके कुछ पूर्व ही यह प्रदेश पुन· चौलुक्योके अधीन आ गया था।

कुमारपालके दो उदयपुर प्रकीर्ण लेखोमें जिनका काल क्रमश· वि० स० १२२० तथा १२२२ है, यह स्पष्ट अंकित है कि वह अपने पूर्वाधिकारीकी भांति ही पुनः मालवाधिपति भी था।[5] ये शिलालेख अणहिलपाटकके कुमारपालके समयके है, जो 'शाकभरी तथा अवन्तिके अधिपतियोको समरभूमिमे पराजित कर चुका' था। भाव बृहस्पतिकी प्रशस्तिमे भी कुमारपालको "वल्लाल गजके मस्तकपर उछलनेवाला सिंह" कहा गया है।[6] वडनगर प्रशस्तिमे भी इस बातका उल्लेख है कि चौलुक्यराजने

---

[1] वही।

[2] वसन्तविलास : ३, २९।

[3] बम्बई गजेटियर : खंड १, उपखंड १, पृ० १८५।

[4] इंडि० ऐंटी० खंड १०, पृ० १५९।

[5] इंडि० ऐंटी० खंड १८, पृ० ३४१-४४।

[6] भावनगर शिलालेख, पृ० १८६।

देवी दुर्गाको मालवाधिपतिका कमल मस्तक, जो उसके द्वारपर लटका दिया गया था, अर्पण कर प्रसन्न किया था।[1] इस शिलालेखसे स्पष्ट है कि वल्लाल सन् ११५१के कुछ दिन पूर्व मारा गया था।[2] ऐतिहासिक परम्परासे मालवनरेश वल्लालकी पहचान करना कठिन है। परमारोंके प्रकाशित विवरणोंकी वंशावलीमें उक्त नाम नहीं आया है। जैसा ल्यूडर्सने कहा है सम्भव है वल्लालने अचानक ही सन् ११३५-११४४ ईस्वीमें मालवाकी राजगद्दीपर अधिकार कर लेनेमें सफलता प्राप्त कर ली हो।[3] कुमारपालकी कठिनाइयोंसे लाभ उठानेके विचारसे अणहिलपाटककी गद्दीपर उसके बैठते ही वल्लालने अपनेको स्वतन्त्र घोषित कर दिया हो। इतना ही नहीं, उसने गुजरातके विरुद्ध सैनिक आक्रमण करनेवाले शाकम्भरीके चौहानोंसे सन्धि कर ली हो और अपने राज्यके परम्परागत शत्रुसे लोहा लेनेके लिए प्रस्तुत हो गया हो। वडनगर प्रशस्तिमें पूर्व दिशाके अधिपति मालव शासकपर कुमारपालकी प्रसिद्ध विजयका उल्लेख हुआ है। इसमें यह भी कहा गया है कि मालव नरेश अपने देशकी सुरक्षा करते हुए हत हुआ। उसका सिर कुमारपालके राजप्रासादके द्वारपर लटकाया गया था। उसी उत्कीर्ण लेखके आधारपर निश्चित रूपसे कहा

---

[1] इपि० इंडि० खंड १, पृ० ३०२, श्लोक १५ तथा देखिये उत्तरी भारतके राजवंशका इतिहास : खंड २, पृ० ८८६।

[2] वेरावल शिलालेखके आधारपर ल्यूडर्सका मत है कि वल्लाल सन् ११६९के पूर्व मरा होगा। इपि० इंडि० खंड ८, पृ० २०२। किन्तु वडनगर शिलालेखका मालवाधिपति ही निश्चित रूपसे बादके विवरणोंका वल्लाल रहा। इसलिए उसके निधन कालकी अवधि १८ वर्ष पूर्व निश्चित की जा सकती है।

[3] इपि० इंडि० खंड ७, पृ० २०२-८। यशोवर्मनकी अन्तिम तथा लक्ष्मीवर्मनकी प्रारम्भिक तिथियां।

जा सकता है कि मालवासे युद्ध विक्रम संवत् १२०८के पूर्व समाप्त हो गया था। इस उत्कीर्ण लेख की सहायतासे हमे दो बातोका पता चलता है। एक तो यह कि जयसिंहने मालवाको पहले ही अपने गुजरात राज्यमें मिला लिया था। दूसरी बात यह कि वहा हुए विद्रोहका दमन पाच वर्ष पहले ही किया जा चुका था। कीर्तिकौमुदीके अनुसार कुमारपालने गुजरातपर आक्रमण करनेवाले मालवराज बल्लालका शिरच्छेद कर दिया था। इस संघर्षका परिणाम यह हुआ कि मालवा पुन. पहलेकी भाति अनहिलवाडेके राजाओंके अधीन हो गया। भिलसाके निकट उदयपुरमे तथा उदयादित्यके मन्दिरमें अनेक प्रकीर्ण लेख मिले है, जिनसे ज्ञात होता है कि कुमारपालने सम्पूर्ण मालवाको विजित किया था। ये शिलालेख जिस व्यक्तिने अंकित कराये है, उसने अपनेको कुमारपालका सेनापति कहा है।

परमारोंके विरुद्ध युद्ध

कुमारपालको अर्णोराजा चौहानके विरुद्ध आक्रमणके सिलसिलेमें जो दूसरा युद्ध करना पडा, वह आबूके चन्द्रावती प्रदेशके परमारोके विरुद्ध था। कुमारपालचरितमे उल्लेख मिलता है कि जब कुमारपाल अर्णोराजासे युद्धरत था, चन्द्रावतीके अधिपति विक्रमसिंहने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इसलिए कुमारपालने उत्तरी शासक (अर्णोराजा)को पराजित कर चन्द्रावतीपर आक्रमण किया और इस नगरपर अपना पूर्ण अधिकार कर यहांके शासकको बन्दी बनाया।[1]

---

[1] द्व्याश्रय काव्य : ४, ४२१—५२:में इस आशयका कथन मिलता है कि आबूके परमार शासक विक्रमसिंहने उस समय कुमारपालका अपनी राजधानीमें स्वागत किया था, जब वह सपादलक्षके "अण"के विरुद्ध युद्ध करने जा रहा था। इंडि० ऐंटी०: खंड ४, पृ० २६७।

हेमचन्द्रके विवरणके आधारपर कहा जा सकता है कि जब कुमारपाल अर्णोराजाके विरुद्ध युद्ध करने जा रहा था तो आबू राज्यके शासक विक्रमसिंहका स्वागत-सत्कार मैत्रीभावका दिखावा मात्र था। बादके घटनाक्रमसे हमें विदित होता है कि चन्द्रावतीके शासक विक्रमसिंहने युद्धमें अर्णोराजाका पक्ष ग्रहण किया था और कुमारपालने इसके लिए उसे दडित किया था। विक्रमसिंहको अनहिलवाडेमे एकत्र बहत्तर अधीनस्थ शासकोके सम्मुख अपमानितकर बन्दीगृह भेज दिया गया। विक्रमसिंहकी राजगद्दीपर उसके भ्रातृपुत्र यशोधवलको आसीन कराया गया।[1] इस घटनाकी पुष्टि तेजपालके विक्रम सवत् १२८७की आबू पहाडी प्रशस्तिसे भी होती है। इसमे कहा गया है कि अर्बुद परमार यशोधवलने यह विदित होते ही कि वल्लाल, चौलुक्यराज कुमारपालका विरोधी तथा शत्रु हो गया है, मालवाधिप वल्लालको तत्काल हत कर दिया।[2] प्रशस्तिके इस उल्लेखसे इस निर्णयपर पहुचा जा सकता है कि यशोधवल कुमारपालका अधीनस्थ शासक था।

कोंकणके मल्लिकार्जुनसे संघर्ष

इसके पश्चात् कुमारपालकी सेनाने, दक्षिण कोकणके राजा मल्लिकार्जुनसे युद्ध किया। उत्तरी कोकणके राजाओकी प्रकाशित सूचीसे विदित होता है कि सन् ११६० ईस्वीमें शिलाहार वश राज्यारूढ था। मल्लिकार्जुनके विरुद्ध कुमारपालको अपनी सेना क्यो भेजनी पडी, वह घटना इसप्रकार है—एक दिन कुमारपाल अपनी राजसभामे सेनापतियो तथा अधीनस्थोके मध्य जब बैठा हुआ था तो एक भाटने मल्लिकार्जुनकी

---

[1] बम्बई गजेटियर : खंड १. उपखंड १, पृ० १८५।

[2] इपि० इंडि० : खंड ७, पृ० २१६, श्लोक ३५ तथा उत्तरी भारतके राजवंशका इतिहास, खंड २, पृ० ८८६ तथा ९१४।

प्रशस्ति सुनायी। इसमें मल्लिकार्जुन द्वारा राजपितामहकी उपाधि ग्रहणकी घटनाका उल्लेख था।[1] कुमारपाल यह अपमान न सह सका और सभामें चतुर्दिक देखने लगा। आश्चर्य सहित कुमारपालने देखा कि उसका सचिव आम्बड हाथ जोडे खडा है।[2] राजसभा जब समाप्त हो गयी तो कुमारपालने आम्बडको बुलवाया और सभामें उसकी उक्त मुद्रा-विशेषका अभिप्राय पूछा। आम्बडने कहा कि महाराजाके चारों ओर देखनेका अर्थ मैने यही लगाया कि आप जानना चाहते हैं कि इस सभामें कोई ऐसा योद्धा है, जो मल्लिकार्जुनके असत्य अभिमानका मर्दन कर सके। इस कार्यके लिए मैं ही अपनी सेवाएं अर्पित करना चाहता हू और इसी आशयसे मैंने उक्त भाव व्यक्त किया था। तत्काल ही कुमारपालने अपनी विभिन्न सेनाके अधिकारियों तथा अधीनस्थोंको बुलाकर मल्लिकार्जुनके विरुद्ध युद्ध करनेके लिए आदेश दिया।

कालविनी[3] नदी पारकर तथा अनेकानेक अभियानोंके अनन्तर आम्बड अभी अपना सैनिकशिविर स्थापित ही कर रहा था कि मल्लिकार्जुनने उसपर आक्रमणकर पदाक्रान्त कर दिया। इस प्रकार पराजित होकर वह नदीके उस पार चला गया। यहा आ उसने काले वस्त्र धारण किये, सेनामें काले झंडोंसे कार्य संचालनका आदेश दिया तथा काले रगके

---

[1] शिलाहार राजाओंमें यह उपाधि प्रचलित थी।—बम्बई गजेटियर, १३, ४३७ टिप्पणी।

[2] इसका शुद्ध अम्बड है। इसका संस्कृत रूप अमरभट्ट तथा अम्बक है।

[3] यह चिकली तथा वालसारसे प्रवाहित होनेवाली कावेरी नदी है। नासिक केव इन्सक्रिपशनमें इसी नदीका नाम "कारवेना" अंकित है। बम्बई गजेटियर : १६, ५७१। कावेरीका संस्कृत रूप ही "कालविनी" तथा "कारावेना" है। सम्भवतः पेरिप्लसने इसी कावेरीको "अकावेरी" लिखा है।

खेमेकी व्यवस्था की। यह सुनकर कुमारपाल उस प्रदेशमें आ गया था और उसने यह स्थिति देखी। उसे विदित हुआ कि यह आम्बडका ही सैनिक शिविर है। पराजयसे आम्बडका जैसा अपमान हुआ था, उससे लज्जित होकर उसने काले वस्त्रोंको धारण किया था। कुमारपाल अपने पराजित सेनापतिकी इन भावनासे अत्यधिक प्रभावित हुआ और उसने शक्तिशाली राजाओं सहित दूसरी सेना आम्बडकी सहायताके लिए भेजी। इसप्रकार साधनसम्पन्न होकर आम्बडने पुनः कावेरी नदी पारकर, एक मार्गका निर्माण किया और मल्लिकार्जुनकी सेनापर आक्रमण किया। आम्बडका ध्यान मल्लिकार्जुनपर ही विशेष रूपसे था। आम्बड अपने हाथीकी सूडसे उसके मस्तकपर चढ गया और मल्लिकार्जुनको युद्धके लिए ललकारा। युद्धमें उसने मल्लिकार्जुनको नीचे गिराकर उसका शिरच्छेद कर दिया।[1] जिन अधीनस्थ राजाओंको सहायताके लिए कुमारपालने भेजा था, वे नगरको लूटनेमें लगे थे। इसप्रकार कोकणमें कुमारपालके आधिपत्यकी स्थापनाकर आम्बड, अणहिलपुर लौटा। उसने राजसभामें बहत्तर राजाओंकी उपस्थितिमें सुवर्णराशिमें मल्लिकार्जुनका सिर अभिवादन सहित कुमारपालके सम्मुख उपस्थित किया। उसने मल्लिकार्जुनके कोषागारसे प्राप्त विशाल धनराशि भी सम्मुख रख दी।[2] इसपर प्रसन्न होकर कुमारपालने मल्लिकार्जुनसे छीनी गयी "राजपितामह"

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणिके अनुसार मल्लिकार्जुनको चौहानराज सोमेश्वरने मारा था जो उस समय कुमारपालकी राजसभामें रहता था।—जर्नल आव रायल एशियाटिक सोसायटी, १९१३, पृ० २७४-५।

[2] शृंगार कोडी साडी १ माणिकउपछेडउ २ पापल उहारु। ३ संयोग सिद्धि सिप्रा ४ तथा हेमकुम्भा ३२ तथा मौक्तिकानां सेउड ६ चतुर्दन्त हस्ती १ पात्राणि १२० कोटी सार्द्ध १४ द्रव्यस्य दंडः। प्रबन्धचिन्तामणि: पृ० २०३।

की उपाधि आम्बडको प्रदान करते हुए उसे सम्मानित किया।[1]

मल्लिकार्जुनके समयके दो शिलालेखोंका पता चलता है, जिनकी तिथि क्रमश. ईस्वी ११५८ (शक १०७८) तथा ईस्वी ११६० (शक १०८०) हैं। इनमेंसे प्रथम चिपलम्में मिला है और दूसरा बेसिनमें। मल्लिकार्जुनकी पराजय तथा उसके अन्तका समय ईस्वी सन् ११६० तथा ११६२ है क्योंकि सन् ११६२में ही उसके उत्तराधिकारी अपरादित्यका शासनकाल प्रारम्भ हो जाता है। कुमारपालकी सहायता वल्लालके विरुद्ध करनेवाले अर्बुद परमार यशोधवलने इस युद्धमें भी उसकी सहायता की थी। आबूकी तेजपाल प्रशस्ति (वि० स० १२८७)में कहा गया है कि "जब यशोधवल क्रोधाविभूत होकर समरभूमिमें सन्नद्ध हो गया उस समय कोंकणनरेशकी रानियां अपने कमल समान नेत्रोंसे अश्रुपात करने लगी।[2] इस मल्लिकार्जुनका परिचय तथा विवरण उक्त दो शिलालेखोंसे सटीक प्राप्त होता है कि वह शीलहार राजवंशका था।[3] श्रीभगवानलालका भी मत है कि मल्लिकार्जुनका अन्त सन् ११६० तथा ११६२ ईस्वीके बीच हुआ था।[4]

काठियावाड़पर सैनिक अभियान

मेरुतुंगने कुमारपालके अन्य जिस युद्धका उल्लेख किया है, वह सुमवरा या सौंसरके विरुद्ध हुआ था। इस अभियानका नेतृत्व महामात्य उदयनने

[1] प्राकृत द्वयाश्रय काव्यमें इस सैनिक विजयका कवित्वमय वर्णन ६ठें सर्गके ५२से ७० तक श्लोकोंमें दिया गया है।

[2] इपि० इंडि० : खंड ८, पृ० २१६, श्लोक ३६।

[3] प्रबन्धचिन्तामणि, पृ० १२२-२३।

[4] बम्बई गजेटियर : खंड १, उपखंड १, पृ० १८६, सुकृत कीर्ति कल्लोलिनी, गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, खंड १०, परिशिष्ट पृ० ६७।

किया था। इस युद्धमें चौलुक्य सेना पराजित हुई और उदयन घायल होकर शिविरमे पहुचाया गया। प्रबन्धचिन्तामणिमें कुमारपालके काठियावाडके एक आक्रमणका भी उल्लेख है जिसमें मन्त्री उदयन सौंसर राजासे लड़ते लड़ते घायल होकर हत हुआ था।[1] श्रीभगवानलालका मत है कि यह युद्ध सन् ११४९ ईस्वी (वि० स० १२०५)के लगभग हुआ था। इसका कारण यह है कि मृत्युके पहले पालितानामें आदिनाथका जीर्णोद्धार करानेकी उसने जो प्रतिज्ञा की थी वह सन् १२५६-५७ (वि० स० १२११) में पूर्ण हुई।[2] श्रीभगवानलालका यह भी मत है कि सौराष्ट्रका यह शासक सम्भवत गोहिलवाड वंशका रहा होगा। यह भी सम्भव है कि वह जूनागढके अधीन शासकके राजवशका हो, जो आभीर चूडा-समा वशका था और मूलराज प्रथमके समयसे ही चौलुक्योके विरुद्ध कार्यरत था। कुमारपालचरितमे इस घटनाका उल्लेख है कि अन्तमें समर या सौंसर युद्धमें पराजित हुआ और उसका पुत्र राजगद्दीपर बैठाया गया। सुन्धा पहाडी शिलालेखसे विदित होता है कि नाड्ल्य चौहान आल्हाण्नने[3] सौराष्ट्रके पर्वतीय क्षेत्रोमें होनेवाले विद्रोहोके दमनमें कुमारपालकी सहायता की। समरको पराजित करनेमें सम्भवत. इस शासककी भी सहायता कुमारपालको प्राप्त हुई थी।[4]

अन्य शक्तियोसे संघर्ष

प्रबन्धचिन्तामणिमे मेरुतुगने कुमारपालके साभरपर एक ऐसे आक्र-

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणि, चतुर्थ प्रकाश, पृ० ८६ : "सुराष्ट्रे देशीयं सउंसर-नामानम्"।

[2] बम्बई गजेटियर : खंड १, उपखंड १, पृ० १८६।

[3] भावनगर इन्सक्रिपशन, पृ० १७२-७३ तथा किराडू शिलालेखका अल्हणदेव।

[4] इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ७१।

मणका उल्लेख किया है जो वहडके छोटे भाई चहडके नेतृत्वमें किया गया था। चहडकी अतिमुक्तहस्तता लोगोको विदित थी किन्तु कुमारपालने परामर्श देकर उसीको सेनापतित्व करनेके लिए चुना। सांभर पहुचनेपर चहडने बावरानगरके किलेको अपने अधिकार तथा नियन्त्रणमें कर लिया, किन्तु उसदिन लूटपाट न की क्योंकि उसी रात्रिको सात सौ कुमारियोका विवाह होनेको था।[1] दूसरे दिन चहडकी सेनाने किलेमें प्रवेश किया तथा नगरमें लूटपाट मचा दी। इसप्रकार इस प्रदेशमें कुमारपालका प्रभुत्व घोषित किया गया। उक्त वावरानगरका पता नही लग सका है। सम्भवतः उक्त स्थान साभरका नही अपितु काठियावाड़का वावरियावाद है। इस सैनिक विजयके उपरान्त चहड पाटन लौटा। कुमारपाल चहडसे बहुत प्रसन्न हुआ किन्तु अमितव्ययके लिए दोषारोप करते हुए उसे "राज घटत्ता"की उपाधि दी।

कुमारपालकी सौंसरपर आक्रमण करनेके बाद जिस नये आक्रमणके संकटकी सूचना मिली वह थी चेदि या धहलके राजा कर्ण द्वारा।[2] जब कुमारपाल सोमनाथकी तीर्थयात्रा करने जा रहा था उसी समय गुप्तचरोंने उसे उक्त आक्रमणकी सूचना दी। इस आक्रमणकी सूचनासे थोडे कालके लिए कुमारपाल किंकर्तव्यविमूढ रह गया। इसी बीच एक घटना-विशेष हुई। कर्णके नेतृत्वमे उसकी सेना रात्रिमे आगे बढ रही थी। कर्ण राजा गलेमे स्वर्णका हार पहने हाथीपर बैठकर यात्रा कर रहा था। रात होनेके कारण उसकी आँखोमे निद्रा भरी थी। सयोगसे एक वृक्षकी डालमे उसका हार फस गया और वृक्षमें लटककर वही उसकी मृत्यु हो गयी।

---

[1] एक ही दिनमें इतने अधिक विवाहकी प्रथा या तो कडवा कुनभी या भारवर्वोमें थी और यह अब तक प्रचलित रही है।

[2] प्रबन्धचिन्तामणि : पृ० १४६ तथा उत्तरीभारतके राजवंशका इतिहास, पृ० ७९२।

यदि इस कथामें सत्यघटना मिश्रित है तो यह कर्ण, यहल कलचुरी गयाकर्ण होगा, जिसने सन् ११५१ ईस्वीके लगभग शासन किया था। कलचुरी राजा गयाकर्णके शिलालेखकी तिथि चेदि संवत् ६०२, ईस्वी सन् ११५२ है। गयाकर्णके पुत्र नरसिंहदेवके सर्वप्रथम उत्कीर्ण लेखकी तिथि ११५७ ईस्वी (चेदि ६०७) है। इस आधारपर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि गयाकर्णकी निधन तिथि कुमारपालके शासनकालमें ईस्वी ११५२ तथा ११५७के बीच थी।

गौरवपूर्ण सैनिक विजयोंका क्रम

इसप्रकार कुमारपाल भारतीय इतिहासमें महान विजेताके रूपमें अंकित है। उसके सभी सैनिक अभियान सफल रहे और सर्वदा अन्तमें विजयश्री कुमारपालको ही प्राप्त होती रही। शासनके प्रथम दस वर्षोंमें सन् ११४२से ११५२ तक कुमारपाल आन्तरिक शत्रुओं और उक्त आक्रमणो द्वारा अपनी स्थिति सुदृढ करता रहा। वह महान योद्धा था और उसने गुजरातके राज्यकी सीमाका व्यापक विस्तार किया। जयसिंहसूरि द्वारा कुमारपालचरित तथा हेमचन्द्र द्वारा द्वयाश्रय काव्यमें कुमारपालके दिग्विजयका जो वर्णन है, वह प्राचीन भारतीय राजाओंकी दिग्विजयका परम्परागत कवित्वमय वर्णन है और उनको सम्पूर्णतया ज्योंका त्यों ऐतिहासिक कोटिके अन्तर्गत नही रखा जा सकता तथापि उन युद्धविवरणोंमें अनेकानेक तथ्य भरे पड़े है, जिनकी किसी प्रकार उपेक्षा नही की जा सकती। यह इसलिए कि इन तथ्योंकी पुष्टि शिलालेखों तथा ऐतिहासिक प्रबन्धोंसे भी होती है, जिनकी प्रामाणिकतापर सन्देह नही प्रकट किया जा सकता है।

साभर प्रदेशके अर्णोराजा, श्रीमल्हारराजा मल्लिकार्जुन तथा मालवाधिप वल्लालपर कुमारपालकी विजयकी ऐतिहासिक घटनायें ऐसी है, जो केवल जैन ग्रन्थोंमें ही वर्णित नही अपितु इनका विभिन्न शिलालेखोंमें

भी उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त कुमारपालने उन राजाओंको भी पराजितकर अपना प्रभुत्व स्थापित किया, जिन्होने विद्रोह किया अथवा शत्रुके पक्षको ग्रहणकर उसकी सहायता की। इसप्रकार चन्द्रावतीके विक्रमसिंह, काठियावाडके सौंसरराज तथा अन्य राजाओंको कुमारपालने न केवल पराजित किया अपितु उनपर अपना पूर्ण आधिपत्य भी स्थापित किया।

जयसिंहके "कुमारपालचरित" तथा हेमचन्द्रके "द्वयाश्रय"मे कुमारपालकी विभिन्न सैनिक विजयोकी गौरवगाथाके जो विशद वर्णन मिलते है, उनसे विदित होता है कि उसने किसप्रकार पहले सौराष्ट्र विषय, और फिर कच्छ विजयके पश्चात् पचनदधिपको रणभूमिमे पददलित और पराजित किया। इसके अनन्तर कुमारपालने पश्चिमोत्तर दिशामें आगे बढकर मूलस्थानके मूलराजको भी अपने अधीन किया। यह मूलस्थान आधुनिक मुलतान है। काठियावाडमे कुमारपालके सैनिक अभियान और अन्तमें उसकी महान विजयके सुस्पष्ट विवरण अनेक जैनग्रन्थोंमें मिलते है। यही नही इन जैनग्रन्थोंमें वर्णित प्रसंगोंकी पुष्टि उत्कीर्ण लेखो द्वारा भी होती है। इस तथ्यको सिद्ध करनेके लिए बहुतसे प्रमाण हैं कि अपने समयमें कुमारपालका समस्त गुजरात तथा पश्चिमोत्तर भारतपर एकछत्र प्रभुत्व स्थापित था। द्वयाश्रय काव्यमें कुमारपालके दिग्विजय वर्णनका विश्लेषण करनेपर हम इसी निष्कर्षपर पहुचते है कि उसकी मान्यता तत्कालीन भारतके एक महान प्रभुसत्तासम्पन्न शक्तिके रूपमे विद्यमान थी। वस्तुत. बारहवी शताब्दीमे भारतमे कोई ऐसी एक सघटित तथा शक्तिशाली राज्यशक्ति न थी, जो उसकी समानता करती।

कुमारपालकी राज्यसीमा

हेमचन्द्रके "महावीरचरित्र"में कहा गया है कि कुमारपालकी विजयोका क्षेत्र उत्तरमे तुर्किस्तान, पूर्वमे गगा, दक्षिणमे विन्ध्यपर्वत तथा पश्चिममें

समुद्र तक व्यापक था।[1] जयसिंहने कुमारपालकी अखड विजयोंका विवरण देकर उसके दिग्विजय क्षेत्रका भी उल्लेख किया है। उसका कथन है "आगगाम एन्द्रिय, आविन्ध्याम याम्याम, आसिन्धुपश्चिमाम, आतुरुष्काम का कौबेरीम चौलुक्य साधयिष्यति।" अभिप्राय यह कि कुमारपालके दिग्विजयका क्षेत्र पूर्व दिशामें गगा नदी, दक्षिणमे विन्ध्य पर्वत, पश्चिममें सिन्धु तथा उत्तरमें तुरुष्कभूमि तक विस्तृत था।

कुमारपालकी इन सैनिक विजयोपर विचार करनेसे स्पष्ट है कि उसका आधिपत्य हरिद्वारके निकट गगा तक सुदृढतापूर्वक स्थापित था। उसने कान्यकुब्ज प्रदेशको पराजितकर इस क्षेत्रके सभी राजाओको अपने अधीनस्थ कर लिया था। दक्षिणमें कुमारपालने मालवराजको पराजित कर एक बार पुन. उस प्रदेशको चौलुक्य साम्राज्यके अन्तर्गत मिला लिया था। देशमे कोई भी दूसरी ऐसी शक्ति नही थी जो इस समय चौलुक्य प्रभुत्वका विरोध करती अथवा उसको चुनौती देती। दक्षिणमें कुमारपालने विन्ध्यपर्वत तक विजय प्राप्त कर ली थी और उस क्षेत्रमे उसका एकछत्र प्रभुत्व था। यह बात तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रन्थोमे तो वर्णित है ही, कुमारपालके सैनिक अभियानोसे भी पुष्ट होती है।

यह हम पहले ही देख चुके है कि कुमारपालने मुलतानके राजाको हटाकर श्रीनगरपर भी विजय प्राप्त की। इनके बाद वह पचनदधिप (पजाबके राजा)के विरुद्ध सफल युद्ध कर जालन्धर तथा मरुस्थानके मार्गसे लौटा। कुमारपालचरित तथा द्वयाश्रय महाकाव्यका यह विवरण यदि अक्षरश न भी माना जाय, तो भी उसकी उपेक्षा नही की जा सकती। इतना तो कमसे कम स्वीकार करना ही पड़ेगा कि कुमारपालके राज्यपालने

---

[1] स कौबेरीमातुरुष्कमैन्द्रीमात्रिदशापगाम्
याम्यामाविन्ध्यमावार्धि पश्चिमां साधयिष्यति—महावीरचरितः ४ : ५२।

पंजाब तथा पश्चिमोत्तर भारतके पहाडी राज्यो, जिनमे श्रीनगर भी सम्मिलित था, दमनकर चौलुक्य प्रभुत्व प्रतिष्ठित किया था। इस प्रकार ये क्षेत्र महान चौलुक्यराज कुमारपालके अधीन थे । राज्यका पश्चिमी सीमान्त समुद्र बताया गया है। इसका वर्णन पहले ही हो चुका है कि कुमारपालने सौराष्ट्र प्रदेशमे अनेक सैनिक अभियानो द्वारा देशके उस भागको अपने राज्याधीन कर लिया था । इस दिशामें तो महान चौलुक्य शक्तिसे प्रतियोगिता करनेवाली कोई राज्यशक्ति थी ही नही। सिन्धुराजको उसकी प्रभुता मान्य थी। इसप्रकार चौलुक्यराज कुमारपालकी ऐसी महत्ता और सत्ता स्थापित हो गयी थी, जैसी किसी चौलुक्य राजाकी अब तक न हो पायी थी। कुमारपालके प्रचुर सख्यामें प्राप्य शिलालेख, ताम्रपत्र, दानलेख और उनके प्राप्तिस्थान सभी एकमतसे उसकी इसी व्यापक और विशाल राज्य-सीमाकी स्थितिका समर्थन करते है। इस प्रकार वाह्य तथा आभ्यन्तर सभी प्रमाणोसे यह सिद्ध होता है कि पूर्व दिशामे गगा, पश्चिममे समुद्र, उत्तरमे मुलतान तथा श्रीनगर और दक्षिणमें विन्ध्यपर्वतके विस्तृत एव व्यापक प्रदेशमे कुमारपालका आधिपत्य सुदृढतया स्थापित था। प्रबन्धकारोके अनुसार हेमचन्द्र द्वारा उल्लिखित राज्यसीमाके अन्तर्गत कोकण, कर्नाटक, लाट, गुर्जर, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्धु, उच्च, भामेरी, मारवाड, मालवा, मेवाड, कीट, जागल, सपादलक्ष, दिल्ली, जालन्धर, राष्ट्र अर्थात् महाराष्ट्र आदि अठारह देश थे। गुजरातके साम्राज्यकी सीमा प्रदर्शित करनेवाली, इतनी व्याप: विशाल रेखा, भारतके मानचित्रमे केवल कुमारपालके पराक्रमने अकित की थी।

चौलुक्य साम्राज्य चरमसीमापर

मेरुतुंगने लिखा है कि कुमारपालकी आज्ञाकी मान्यता कर्ण, लाट, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्धु, मालवा, कोकण, जांगलक, मेवाड, सपादलक्ष और जालन्धरमें होती थी और इन राज्योमें उसने "सप्तव्यसन"पर प्रति-

षेधाज्ञा लगा दी थी।[1] इससे भी कुमारपालकी राज्यसीमाका ठीक ठीक पता लग जाता है और उसकी पुष्टि हो जाती है। चौलुक्य साम्राज्यपर उसके सस्थापक मूलराजके समयसे यदि विचार किया जाय तो विदित होगा कि मूलराजने सारस्वत मडल (सरस्वती नदीकी घाटीमें) अणहिल-पाटकको अपनी राजधानी बनाकर राज्यकी स्थापना की। इस प्रदेशमें उसने सत्यपुर मडल, जो जोधपुर या मारवाड़ राज्यका आधुनिक साचोर प्रदेश है, सम्मिलित किया। उसके पुत्र भीम प्रथमने, कच्छमंडल (कच्छ)को विजित किया। इसके बाद कर्णने लतामडल, दक्षिण गुजरातको तथा जयसिंहने सौराष्ट्र मडल (काठियावाड) अवन्ति, माल्लास्वमी महदवाड शाका प्राय. सम्पूर्ण मालवा, दधिपद्र मडल आधुनिक दोहादका चतुर्दिक प्रदेश, आधुनिक जोधपुर तथा उदयपुरके अनेक मडलोंको चौलुक्य साम्राज्य-मे मिलाया। जयसिंह सिद्धराजके उत्तराधिकारी कुमारपालने इस व्यापक एव विस्तृत राज्यमे न केवल अनेक प्रदेशोपर विजय प्राप्त कर उन्हे अन्तर्भूत किया, बल्कि आधुनिक गुजरात, काठियावाड, कच्छ, मालवा और दक्षिणी राजपूतानेके सुदूर प्रदेशोमे अपना आधिपत्य स्थापित रखनेमे भी सफलता प्राप्त की। सक्षेपमे कहा जा सकता है कि कुमारपालके राज्यकालमें चौलुक्य साम्राज्य अपनी चरमसीमापर प्रतिष्ठित एव मान्य था।

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश : पृ० ९५ :—'कर्णाटे गुर्जरे लाटे सौराष्ट्रे कच्छ सैन्धवे। उच्चायां चैवभंभेर्या मारवेमालवे तथा कौंकणेतु तथा राष्ट्रे कीरे जांगलके पुनः। सपादलक्षे मेवाड़े डील्यां जालन्धरेऽपिच जन्तूनामभयं सप्तव्यसनानां निषेधनम्। बावनं न्याय घण्टाया रुदतीधनवर्जनम्।'



६

चौलुक्यकालमे गुजरात तथा पश्चिमोत्तर भारतके विशाल भूखण्डकी राज्यव्यवस्थाका इतिहास अध्ययन करने योग्य है। इस समयकी विभिन्न प्रशासकीय इकाइयो और अधिकारियोके नाम ही नही मिलते अपितु एक-एक इकाइयो द्वारा प्रादेशिक विस्तार तथा उनके शासन प्रबन्धकर्ताओंके भी विवरण प्राप्त होते हैं। दसवी शताब्दीके अन्तमें भारत, काबुलसे कामरूप तथा कश्मीरसे कुमारीअन्तरीप तक विभिन्न राज्यखंडोंमें विभाजित था। इनमे कुछ राज्य बडे थे तो कुछ छोटे। इनका शासन निरकुश हिन्दू राजा, जो अधिकतर राजपूत थे, कर रहे थे। इस समय कोई ऐसी महान शक्ति न थी, जो सम्पूर्ण देशको एकछत्र और एकसूत्रमे आबद्ध कर सकती। फिर भी प्राचीन परम्परा, धर्म तथा जातिकी एकताका एक ऐसा सूत्र विद्यमान था जिससे सभी राज्योको साम्राज्यमें एकबद्ध किया जा सकता था। भारतीय साम्राज्यकी कल्पना देशके राजाओंके सम्मुख थी। इसके अनुसार अधीनस्थ राज्योका पददलन अनिवार्य न था। अपेक्षित था—केवल उनका अधीनस्थ होना और सम्राट या चक्रवर्ती-की प्रभुसत्ताकी मान्यता स्वीकार करना। चौलुक्य शासन कालमें गुजरातमें राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था थी। यह तथ्य चौलुक्य राजाओं-की सत्ता तथा महत्ता सूचक उपाधियों—महाराजा,[1] राजाधिराज,[2]

[1] गाला शिला० : पी० ओ० खंड१, उपखंड २, पृ० ४०।

[2] पाली शिला० : इपि० इंडि०, खंड ११, पृ० ७०।

परमेश्वर,[1] परमभट्टारक,[2] तथा महाराजाधिराजसे प्रमाणित और पुष्ट है। चौलुक्य राजे अपनेको गुर्जरधराधीश्वर कहते थे, अर्थात् वे गुजरात प्रदेशसे सर्वोच्च अधिपति थे।[3]

राष्ट्रका स्वरूप

चौलुक्य राजवशके सस्थापक मूलराजने सारस्वत मडलमें अपना राज्य स्थापितकर अणहिलपाटकको (आधुनिक पाटन, बडौदा) राजधानी बनाया। इसमें उसने सत्यपुर मडल, सांचोरके चतुर्दिक प्रदेशको जो आधुनिक जोधपुर मारवाड़ क्षेत्रके अन्तर्गत है, मिलाया। उसके पुत्र भीमप्रथमने कच्छ मडल, कर्णने लता मडल दक्षिणी गुजरात तथा जयसिंहने सौराष्ट्र मडल (काठियावाड) अवन्ति, सम्पूर्ण मालवा, दधिपद्र मडल (आधुनिक दोहदका चतुर्दिकप्रदेश) और आधुनिक जोधपुर, उदयपुर राज्यके अनेक मंडलोंको राज्यमें मिलाकर चौलुक्य राज्यका विस्तार किया। जयसिंहके उत्तराधिकारी कुमारपालने इन सुदूर प्रदेशोपर जो आधुनिक गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, मालवा और दक्षिणी राजपूतानाके प्रदेश थे, अपनी प्रभुसत्ता बनाये रखनेमे सफलता प्राप्त की। इससे स्पष्ट है कि ये सभी शासक साम्राज्य निर्माता थे। अन्य प्रदेशोको अपने राज्यमे इन्होंने निरन्तर मिलाया और सुदूर प्रान्तो तक अपनी सत्ता स्थापित की। चौलुक्योकी राष्ट्र व्यवस्था नियन्त्रित राजतन्त्रात्मक थी। आधुनिक पाश्चात्य राजनीतिके सिद्धान्तानुसार प्रभुसत्ता सम्पन्न राजशक्तिको व्यवस्था तथा विधान निर्माण-का अपरिमित अधिकार होता है। नियन्त्रित राजतन्त्रसे यह अभिप्राय है कि जहां विधान-व्यवस्थामे राजा ही सर्वाधिकारी नही अपितु उसका यह अधिकार वहाकी ससद अथवा लोकसभामे भी सन्निहित रहता है।

---

[1] वही।
[2] वही।
[3] जालोर प्रस्तर लेख : इपि० इंडि० खंड ११, पृ० ५४-५५।

प्राचीन भारतमें राजाओं अथवा जनताको नवीन विधान बनाने अथवा विद्यमान विधानमें परिवर्तन करनेका अधिकार न था। आदिकालमें ब्रह्माने प्रथम राजा मनुको उन समस्त आवश्यक राजनियमोंको निर्मितकर प्रदान कर दिया था जो लोकशासन व्यवस्थामें पथप्रदर्शन किया करते थे। यह ईश्वरीय स्मृति निर्मित राजनियम ही भारतके विभिन्न राज्योंमें प्रचलित था। इससे निरकुश राजाओंकी स्वेच्छाचारितापर कुछ सीमा तक अंकुश लग जाता था। इससे स्वेच्छाचारी राजाओंकी निरकुश व्यवस्था भी नियन्त्रित हो जाती थी। इस प्रकार दसवीं और बारहवीं शतीमे भारतके बहुतसे निरकुश राज्योमे वस्तुतः नियन्त्रित राजतन्त्र व्यवस्था विद्यमान थी और इसके अन्तर्गत सुशासन था तथा जनता प्रसन्न थी।[1]

नियन्त्रित अथवा अनियन्त्रित राजसत्ता

साधारणतः यह धारणा प्रचलित है कि भारतीय राजा निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी हुआ करते थे। डाक्टर विसेन्ट स्मिथ तथा श्री एस० एम० एडवर्ड्सका यह मत है कि भारतीय राजा-महाराजा अनियन्त्रित होते थे। डाक्टर बनर्जीका कथन है कि निरकुश राजाका स्वरूप हिन्दू संस्कृतिकी दयालुताके अनुरूप न था[2]। अर्थशास्त्र तथा हिन्दू धर्म-शास्त्रोमे देशके शासकपर लगे विभिन्न अकुशो और प्रतिबन्धोका उल्लेख है। इसपर भी यदि कोई राजा स्वेच्छाचारिताका अतिरेक करता तो उसे अपदस्थ, उसके विरुद्ध खुला विद्रोह तथा दूसरे राजाको सिंहासनारूढ करनेका मार्ग खुला रहता था। इन परिस्थितियोंमें प्रायः कोई राजा पूर्णतः निरकुश नही हो पाता था। इसके अतिरिक्त भारतीय राजव्यवस्थामें

---

[1] सी० वी० वैद्य : मध्यकालीन भारत, खंड ३, पृ० ४४७।

[2] प्राचीन भारतमें जनशासन, पृ० ७४।

शासितके प्रति पितृप्रेमकी परम्परा भी प्राचीनकालसे चली आ रही थी। साधारणतः हिन्दू राजे अपनी प्रजाके प्रति वही स्नेह भाव रखते थे जैसी सहज स्नेहभावना एक पिता अपने पुत्रके लिए रखता है। यह भावना सिद्धान्त-मात्र ही न थी अपितु प्रयोगमें भी लायी जाती थी। भारतीय राजाओंने कठोर और क्रूरताकी नीति द्वारा अपनी प्रजाका निर्दलन किया हो, इसके बहुत ही कम उदाहरण मिलते हैं। उफीने अपने "जमैय्रत-उल-हिकायत"[1] में दीर्घजीवन बूटीकी एक मनोरंजक कथाका उल्लेख किया है, जिससे विदित होता है कि मुसलिम बादशाहोंकी तुलनामें भारतीय राजामहाराजा अपेक्षाकृत दयालु हुआ करते थे। उनकी धारणा थी कि प्रजाका दमन करनेसे जन-अभिशापसे आततायी राजाओंकी आयु कम हो जाती है। इस कथाका चाहे जो भी महत्त्व हो, इतना तो स्पष्ट है ही कि हिन्दूराजा प्राचीन परम्पराके अनुसार अपनी प्रजाके प्रति पुत्र जैसा स्नेह रखते थे। इसीलिए मध्यकालीन इतिहासमें कश्मीरके अतिरिक्त कही किसी आततायी राजाका उल्लेख नही मिलता।

इन परिस्थितियोमें चौलुक्य राजे न तो निरंकुश राजे थे और न उनके अधिकार ही बहुत अधिक सीमित थे। राजकीय सत्तापर अंकुश तथा प्रतिबन्धोके होते हुए भी चौलुक्य राजे प्राय. अपनी स्वेच्छाके अनु-सार कार्य करते थे। महामात्यो और सचिवोके परामर्शसे उनकी नीति निर्देशित होती अवश्य थी, किन्तु उसको स्वीकार करनेके लिए वे बाध्य न थे। इस प्रकार एक शब्दमे उन्हे हितैषी स्वेच्छाचारी शासक कहा जा सकता है।

राज्यमें कुलीनतन्त्र

द्वयाश्रय तथा प्रबन्धचिन्तामणिमे अनहिलवाडेका ऐसा चित्रण एव

---

[1] इलियट २, पृष्ठ १७४।

वर्णन हुआ है जिससे स्पष्ट है कि यहांका राजा प्रभुसत्ता सम्पन्न था। उसके पार्श्वमें श्वेत परिधानवाले जैनधर्मके आचार्यों अथवा ब्राह्मणोंका समूह रहता था। उसके एक ओर राजपूत योद्धा उपस्थित रहते जो युद्ध-भूमिमें अपनी वीरता तो दिखाते थे, साथ ही मन्त्रि-परिषदमें महत्वपूर्ण परामर्श भी दिया करते थे। इसके बाद वणिक मन्त्रेश्वरोंका भी उसकी सभामें अस्तित्व था, जो यद्यपि शान्तिप्रिय धन्धोंमें लग गये थे, फिर भी उनकी नसोंमें अभी तक क्षत्रिय रक्त अवशेष था। किनारेकी ओर एक मंडलमें प्रमुख योद्धा, राजकीय उच्च अधिकारी, भाट-बन्दीजन जिनकी वाणीमें बल था तथा शान्तिप्रिय किसानोंका समूह फूल-फलोंकी भेंट अर्पित करता दृष्टिगोचर होता था। इनके पृष्ठभागमें पहाड़ी क्षेत्रके आदिवासी भील आदि थे जिनका रग काजलसा काला था। इन्हे देखकर भय उत्पन्न होता था किन्तु यही धनुषधारी भील उनके रक्षक थे।[1] तत्कालीन अधिकारियो एव मान्य ग्रन्थकारोके उक्त विवरणसे राज्यके प्रमुख वर्गों तथा जातीय तत्वोंका परिचयबोध हो जाता है। राजसभामें सर्वप्रथम ब्राह्मण तथा श्वेत वस्त्रोकी पोशाकमे जैन पंडितोका उल्लेख मिलता है तो द्वितीयतः हमारी दृष्टि राजपूत योद्धाओंकी ओर आकृष्ट हो जाती है, जो रणभूमिमें अपना शौर्य दिखलाते थे तथा सचिव-सभामें परामर्शका भी कार्य करते थे। तृतीयत. वणिक "मन्त्रेश्वरों"का भी उल्लेख मिलता है, जो यद्यपि 'शान्तिका व्यवसाय' करते थे फिर भी जिनकी धमनियोमें क्षत्रिय रक्त अब भी विद्यमान था। अन्तमे हमें शब्दों द्वारा गर्जन करनेवाले भाटो तथा शान्तिप्रिय किसानोंका वर्णन मिलता है।

सामन्तवादका अस्तित्व

राज्यमें ब्राह्मणोकी स्थिति शक्तिशाली, प्रतिष्ठित और सम्पन्न थी। चौलुक्य राजाओंने पुण्यप्राप्तिके लिए ब्राह्मणोंको भूमिदान किया

[1] फोर्वस : रासमाला, पृ० २३०-३१।

था। भूमिदानका दूसरा उद्देश्य पंच महायज्ञ, वलि, चरु, विश्वेदेवा अग्निहोत्र तथा अतिथि यज्ञ था। इसके अतिरिक्त इसीकालमें सर्वप्रथम मोढ़ ब्राह्मण शासनके विभिन्न विभागोमें विशेषतः महाक्षपटलिकके पदपर नियुक्त किये गये थे।[1]

राजपरिवारके सदस्योको भी जमीन-जागीर देनेकी प्रथा थी। कुमारपालके सम्बन्धमें भी ऐसा ही कहा जाता है। सोलकी सम्राटने कुम्हार आलिगको सात सौ ग्रामोका दानपत्र दिया था। उक्त कुम्हारने अपने निम्नकुलसे लज्जित होकर अपना उपनाम 'सगरा' रखा जो बादमे भी उसके वंशका बोधक एव परिचायक रहा।[2] यह ध्यान देने योग्य बात है कि एक बघेलके सिवा सैनिक सेवाके निमित्त वंश-वंशजोंके लिए किसीको भी स्थायीरूपसे भूमि नही प्रदान की गयी। गुजरातकी मुख्य भूमिमे जितने किले थे, उनमे राजाकी ही सेना रहती थी। सामन्तो और सरदारोका उनमें हस्तक्षेप न था। प्रायः सभी राजपूत घरानेमें जिनके प्रधान बड़े बड़े जागीरदार तथा शासक होते थे, उन्हें अणहिलपुरके राजा द्वारा भूमि देनेका उल्लेख कही नही मिलता। इसमें एक अपवाद भीलोंका है, जिनका

---

[1] इंडि० ऐंटी० खंड ११, प० ७३। श्रीध्रुवके अनुसार कुन्यारेना लेखक "मोढ़परिवार"का सदस्य था। मूलराजके काडी शिलालेखमें जिस प्रकार मोढ़ेरा "श्री मोढ़ेरा" लिखा गया है उससे विशेष पवित्रताका भाव विदित होता है। इंडि० ऐंटी० खंड ६, पृ० १९१। अब भी मोढ़ेरामें मोढ़ ब्राह्मणों तथा बनियोंकी कुलदेवीका एक मन्दिर विद्यमान है। इस प्रकार मोढ़ तथा मोढ़ेराकी अपनी प्राचीन परम्परा है तथा इनका उल्लेख उत्कीर्ण लेखोंमें भी मिलता है। कुमारपालके परामर्शदाता, पथप्रदर्शक तथा जैन महापंडित हेमचन्द्र मोढ़ ही थे। प्रबन्धचिन्तामणि : पृ० १२७।

[2] ..'तेनु निजान्वयेन लज्जमाना अद्यापि सगरा इत्युच्यन्ते।'— प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश चतुर्थ, पृ० ८०।

कथन है कि उन्होंने चौलुक्य वंशके अन्तिम राजा कर्ण द्वितीयसे भूमि प्राप्त की थी।

द्वयाश्रय महाकाव्य, प्रबन्धचिन्तामणि तथा चौलुक्योके अनेक विवरण पत्रोमें मूलराजकी राजसभामें युवराज और महामंडलेश्वरका उल्लेख मिलता है। कुमारपालके बहनोई कृष्णदेवका (कान्हदेवका) वर्णन एक बडे सामन्तके रूपमें हुआ है, जिसके अधीन भारी सेना भी थी।[१] जब सामन्त उदयन काठियावाड़में सौंसरके विरुद्ध सैनिक अभियान कर रहा था, उस समय जब वह नूरद्वानमे पहुचा तो वहा उसने सभी महामडलेश्वरोको एकत्र किया। ये महामडलेश्वर और कोई नही सभी प्रदेशोंके प्रधान थे। उन मंडलीक राजाओका भी उल्लेख मिलता है जो अणहिलपुरकी राजसत्ता तो स्वीकार करते थे किन्तु उनके प्रदेश गुजरातके अन्तर्गत नही थे। सामन्त, सैनिक अधिकारी थे और उन्हे राजकोषसे वेतन मिलता था। इनकी सेनामे जितने सैनिक रहते थे, उसीके अनुसार उसका पद होता था।[२] यही पद्धति बादमे दिल्लीके मुगल सम्राटोके कालमे प्रचलित हुई। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि चौलुक्य राजाओंके शासनकालमें अनेकानेक उच्च सैनिक अधिकारी जो अपनी स्वतन्त्र सेना भी रखते थे, वणिक (बनिया) वर्गके थे। इन लोगोमे वनराज तथा सुज्जनके साथी जाम्ब, जयसिंहके सेवक मुंजाल और कुमारपालके समय उदयन और उसके पुत्रके नाम उल्लेखनीय है।

आभिजात तन्त्रकी प्रमुखता

इसप्रकार स्पष्ट है कि जागीरदार राजपूतोके कुलीनतन्त्रके अतिरिक्त वणिक या वैश्योका भी राजनीतिक क्षेत्रमे प्रवेश-प्रभाव था। केवल

---

[१] प्रभावकचरित : २२ अध्याय, पृ० १९७ "तत्रास्ति कृष्णदेवाख्यः सामन्तोऽश्वायुत स्थितिः"।

[२] शिलालेखों तथा सिक्कोंमें "सामन्त" शब्दका बराबर प्रयोग हुआ है।

प्रवेश ही नहीं, इनके हाथ शासनसूत्र भी था। ऐसे लोगोंमें प्रागवत, जो अब पोरवाड कहे जाते है तथा मोढ प्रसिद्ध है।[1] श्री एच० डी० सनकालियाका यह मत है कि "वोडावा" नामक राजपूत जातिका अब अस्तित्व नही किन्तु इनका अस्तित्व आधुनिक पोरवाड बनियोंमे दृष्टिगत होता है। चौलुक्योंके अधीन शासकके रूपमे इनका उल्लेख अनेक शिलालेखोंमें हुआ है। इनमे वस्तुपाल तथा तेजपाल[2] जिन्होंने, देलवारा मन्दिरका निर्माण कराया था तथा अपने सम्बन्धियोंके अनेकानेक लेख उत्कीर्ण कराये थे। ये और इनके पूर्वज श्वेताम्बर जैनधर्मके आधारस्तम्भ होनेके अतिरिक्त राजाके योग्य सचिव भी थे।

यशपालका तत्कालीन नाटक "मोहराजपराजय" राजधानी अनहिलपुरमे वणिकोकी प्रमुखताका उल्लेख करता है। इसमे जो चित्राकन किये गये है उनके अनुसार यहा कोटिश्वरो तथा लक्षाधिपतियोके भवनोंपर ऊंची पताकाए तथा घंटे लगे रहते थे। उनका वैभव राजकीय वैभवके ही समान था। उनके पास हाथी घोडे भी रहते थे। कुबेरने ६ करोड़ स्वर्ण मुद्रा, आठ सौ तोला रजत, ८ तोला बहुमूल्य रत्न, दो सहस्र कुम्भ अन्न, दो सहस्र तेलकी खारी, ५० हजार अश्व, एक सहस्र हाथी, ८० हजार गाय, ५०० हल, गाडी गृह आदि रखनेकी प्रतिज्ञा की थी।[3] ये जैन वणिक

---

[1] प्रागवत सम्भवतः पोरित्याबवनाका संस्कृत रूप है जिसका उल्लेख कुमारपालकालीन नाडोलपट्टमें हुआ है।—इंडि० ऐंटी० : खंड १० पृ० २०३।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २१०।

[3] गुरुपादमूलकमले गृहमेधिजनोचितानिमाश्रियमान्
प्रतिपद्यते कुबेरो वैराग्यतरंगितस्वान्तः।
तद्यथा—जन्तून् हन्मि न वच्मि नानृतमहं स्तेयं न कुर्वे परस्त्रीर्नो
यामि तथा त्यजामि मदिरां मांसं मधुभक्षणम्

राज्यमें बहुत प्रभावशाली थे। यह पहले ही देखा जा चुका है कि कुमारपालके राज्यारोहणमे सत्ताधारी बणिकोके दलने योगदान दिया था। कुबेरने 'परिग्रहपरिमाणव्रत'के अन्तर्गत अपने धनधान्यकी सीमा निश्चित की थी।

यह स्थिति स्पष्ट बताती है कि राज्यमे जैन व्यवसायियो और वणिकोंका बहुत ऊचा स्थान था। इसके दो कारण थे। एक था उनके पासकी विशाल सम्पत्ति तथा धनराशि और दूसरा कारण था उनके अधीनस्थ सेनाका होना। इसप्रकार निश्चयपूर्वक इस निष्कर्षपर पहुचा जा सकता है कि उस समय सामन्तो अथवा जागीरदारोके कुलीनतन्त्रकी प्रमुखता न थी अपितु वहा सम्पन्न प्रभावशाली जैन वणिकोका अल्पजनाधिपत्य था जिसे अभिजाततन्त्र कहा जा सकता हैं।

नागर शासन-व्यवस्था

हिन्दू राजतन्त्रका आधार, सैनिक शासनका न था अपितु उनके अन्तर्गत नागर अथवा सानुनय व्यवस्थाका प्राधान्य था।[1] इस कालमे

नक्तं नाथि परिग्रहे मम पुनः स्वर्णस्य षट कोटय—
स्तारस्याष्ट तुलाशतानि च महार्हाणां मणीनांवश :३९:
कुम्भखारी सहस्रे द्वे प्रत्येक स्नेहधान्ययोः
पंचायुतानि वाहानां सहस्रमपि हस्तिनाम् :४०:
अयुतानि गवामष्टौ पंच पंच शतानितु
हलाट्टसधनां यान पात्राणामन सामपि :४१:
पूर्वे जोपार्जिता लक्ष्मीरियत्यस्तु गृहे मम
इतो निज भुजोपात्तां करिष्यें पात्रसात्पुनः :४२:

—मोहराजपराजय

[1] नराधिपश्चाप्यनुशिष्यमेदिनीं
दमेन सत्येन च सौहृदेन।

अधिकांश युद्ध, भूमिलोभ अथवा राज्यविस्तारकी आकांक्षासे प्रेरित न होकर उच्च सिद्धान्तोंके लिए हुए। यह उच्च सिद्धान्त था स्वर्गकी प्राप्ति।[1] समुद्रगुप्तमें भी यही भावना परिलक्षित होती है। उसकी मुद्राएं इस तथ्यका स्पष्ट संकेत करती हैं।[2] प्रत्येक राजाका शासन सिद्धान्त मुख्यतः इसीपर आधृत था। हिन्दूराजा, नागर या सानुनय राजकीय व्यवस्थाको पसन्द करते थे और उनके शासन प्रबन्धमें सैनिकवादका प्राधान्य न था। इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि साधारणतः हिन्दू राज्यके दीर्घजीवी होनेके लिए परम्परागत सर्वमान्य राजनियमोंका पालन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य समझा जाता था।

चौलुक्य राजाओंका प्राचीन भारतीय राजाओंकी भांति यही महान लक्ष्य था कि विदेशी आक्रमणों अथवा आन्तरिक उपद्रवोंसे अपनी प्रजाकी रक्षा करना तथा अपने सीमान्तको व्यापक-विस्तृत बनाकर उन प्रदेशोंको अपने अधीनस्थ करना। वस्तुतः उनका राजनीतिक आदर्श राजा विक्रमादित्य था, जिसने सभी दिशाओंके प्रदेशोंमे आक्रमण कर राजमंडलोंको अपना सेवक बना लिया था।[3]

चौलुक्य राजे राज्यमें सेना रखनेके अतिरिक्त सामन्तशाहीकी स्वीकृति भी देते थे। इसप्रकार सिद्धराजने अपने परिवारके एक सदस्यको एक सौ अश्वोंकी सामन्तशाही प्रदान की थी। जब कुमारपाल, अर्णो-

---

महद्भिरिष्ट्वा क्रतुभिर्महाशयाः
त्रिविष्टपे स्थान मुपैति शाश्वतं। शान्ति पर्व : ६१

[1] हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीटयूशन, अध्याय २, पृ० ७६।

[2] "राजाधिराजा पृथ्वीम् अवनित्य दिवं जयति अप्रतिवार्यवीर्यः" जर्नल आव इंडियन हिस्ट्री: खंड ६, उपखंड २,: स्टडीज इन गुप्ता हिस्ट्री", पृ० ३२।

[3] रासमाला, अध्याय १३, पृ० २३४।

राजाके विरुद्ध युद्ध करने गया तो यह कहा जाता है कि उसकी सेनामें "महाभूत" तथा "भूतराजा" नामके सेनानायक थे।[१] यह स्थिति स्पष्ट करनेका अभिप्राय इतना ही है कि गुजरातके चौलुक्यराजाओंका शासन सानुनय था, सैनिक नियमोके अनुसार यहाकी राजव्यवस्था न थी। केवल युद्धके समय राज्यकी सेनाके साथ अधीनस्थो तथा राज्यके बाहरके प्रधानोंकी सेनाका एकीकरण हो जाता था और शत्रुसे सघटित युद्ध होता था।

केन्द्रीय सरकार

चौलुक्योके समय नौकरशाही अथवा सामन्तशाही शासन पद्धति थी, इस सम्बन्धमे निश्चित रूपसे कुछ कहना कठिन है। इसका ठीक ठीक निर्द्धारण करना तो आधुनिक कालमे भी कठिन हो जाता है। आज भी जबकि लम्बे चौडे विशद विधान बन गये हैं, यह श्रेणी विभाजन सच्चे अर्थमें सभव नहीं। इसके लिए तत्कालीन समय और परिस्थितियोंका विचार करना ही होगा। साथ ही यह भी ध्यानमे रखना होगा कि साम्राज्यकी आवश्यकताओके अनुसार राजाओकी नीति निर्द्धारित हुई होगी। जहांतक ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हुई है, उसके आधारपर निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि चौलुक्यकालीन गुजरातमे शासन-यन्त्रकी व्यवस्थित प्रणाली विद्यमान थी।

राजा और उसका व्यक्तित्व

कुमारपालका साम्राज्य व्यापक और विशाल था, यह हम देख चुके हैं। उसीके कालमें चौलुक्योंकी शक्ति तथा प्रभुत्व चरमसीमापर पहुच गया था। शिलालेखों, ताम्रपत्रो, दानलेखों तथा साहित्यिक सामग्रियोसे

---

[१] रासमाला, अध्याय १३, पृ० २३१।

विदित होता है कि उसके समयमें सुदृढ केन्द्रीय तथा प्रादेशिक शासन-व्यवस्था विकसित और विद्यमान थी। शासनका सर्वोच्च अधिकारी राजा था। वही सम्मान तथा उपाधियोका वर्षण-वितरण किया करता था।[1] उसकी मुख्य रानी "पट्टमहिषि" कही जाती थी।[2] मुख्य राजकुमार अथवा युवराज, राजाके बाद सबसे अधिक महत्त्वका व्यक्तित्व रखता था। राज्यके शासन सचालन तथा संपादनका कार्यभार उसके प्रमुख कर्तव्योमें था। यह पहले ही देखा जा चुका है कि सिंहासनारूढ होनेपर कुमारपालने अपनी पत्नी भोपालादेवीको पट्टरानी बनाया। राजाकी अस्वस्थता अथवा अनुपस्थितिमे ये उसका कार्य करते थे।[3]

तत्कालीन लेखकोकी रचनाओमें राजाका वर्णन इसप्रकार मिलता है—प्रभुसत्ता सम्पन्न राजाका व्यक्तित्व राजकीय वैभवसे पूर्ण रहता था। उसके ऊपर लाल मखमलका राजछत्र रखा जाता था। उसके सिरके पृष्ठभागमे सुनहरे सूर्य मडलका चित्राकन चमकता रहता था। उनके गलेमें बहुमूल्य मोतियोका हार तथा उसके हाथोमे चमकते हुए हीरोका ककण रहता था। उसका व्यक्तित्व तथा आकृति भी असाधारण होती थी। उसके विशाल बाहुमें भाला तथा तलवार सुन्दर लगते थे। युद्धभूमिमें उसके नेत्रोसे अग्निवर्षा होती थी। युद्धभूमि का प्रचड शख-निनाद भी उसे उसी प्रकार परिचित रहता, जितना राजप्रासादका गम्भीर ध्वनियन्त्र। वह शस्त्रधारी होता था और साथ ही अभिषिक्त प्रधान। वह क्षत्रियपुत्र होता था और रानीका राजकुमार होता था।[4]

---

[1] इपि० इंडि० : खंड २, पृ० २३७।

[2] महारानी राजाके राज्याभिषेकके समय सिरपर सुवर्णपट्ट धारण करती थीं। इसलिए उसे "पट्टरानी" कहा जाता था।

[3] सी० वी० वैद्य : मध्यकालीन भारतका इतिहास पृ० ४५८।

[4] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३१।

राजाके कर्त्तव्य

राजाके कर्तव्य मुख्यतः तीन प्रकारके थे। वह शासन परिषदका अध्यक्ष था। वह प्रधान सेनापति था और वही होता था न्यायाधिकरणका सर्वोच्च अधिकारी। कुमारपालप्रतिबोधके रचयिताने कुमारपालकी दिन-चर्याका जो वर्णन किया है उससे राजाके विभिन्न कर्तव्यों तथा कार्योंका स्पष्ट परिचय मिलता है।[1] सोमप्रभाचार्यका कथन है कि राजा बहुत सबेरे ही उठ जाता था और पवित्र जैनधर्मके पच नमस्कार मन्त्रका उच्चारण तथा देवताओ और गुरुओका ध्यान करता था। इसके पश्चात् स्नानादिके अनन्तर वह राजप्रासादके मन्दिरमें जैन मूर्तियोका वन्दन-अर्चन करता था। यदि कभी समय रहता था तो अपने मन्त्रियोंके साथ वह हाथीपर कुमार विहार मन्दिर भी जाया करता था। वहा अष्ठागिक पूजन करनेके अनन्तर वह हेमचन्द्रके पास जाता था। उनका वन्दन तथा धार्मिक शिक्षा श्रवणकर वह माघ्याह्नमें राजप्रासाद लौटता। तब वह साधुओको भिक्षा देता और अपने मन्दिरकी जैन मूर्तियोको प्रसाद भोग लगाता और फिर स्वयं भोजन करता। भोजनके पश्चात् वह विद्वानोकी एक सभामे सम्मिलित होता और धार्मिक एव दार्शनिक विषयोपर उनसे विचार विमर्श करता। इसमे कवि सिद्धपाल प्रमुख थे, जो कुमारपालको अनेकानेक प्रासगिक कथाए सुनाकर प्रसन्न करते थे। दिवसके चतुर्थ प्रहरमें राजसभामे राजा सिहासनपर आसीन हो राज्यका कार्य सम्पादन करता। इसी समय वह जनताकी प्रार्थना सुनता तथा तद्विषयक निर्णय भी सुनाता था। कभी कभी वह राजकीय कर्तव्य भावनाके अन्तर्गत मल्ल-युद्ध, हस्तियुद्ध तथा इसी प्रकारके अन्य आयोजनोमे भी सम्मिलित होता था।

इसके पश्चात् वह सूर्यास्तके लगभग ४८ मिनट पूर्व सन्ध्याका भोजन

---

[1] कुमारपालप्रतिबोध : पृ० ४२२ तथा ४७१।

करता। प्रत्येक पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशीको वह केवल एक शाम ही भोजन करता। भोजनोपरान्त वह प्रासाद स्थित मन्दिरोंमे पुष्पोंसे अर्चना करता तथा नर्तकियो द्वारा देव मूर्तियोके सम्मुख दीपक नृत्यका आयोजन कराता। इस पूजा और अर्चनाके अनन्तर वह वाद्ययन्त्र तथा चारणोंसे सगीत सुनता। इसप्रकार दिन व्यतीत कर वह मस्तिष्कमे त्यागकी भावना रख विश्राम करने जाता था।[1]

यद्यपि कुमारपालप्रतिबोधसे बहुत ही सीमित और संक्षिप्त ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है, फिर भी विद्वानोने यह स्वीकार किया है कि यह संक्षिप्त जानकारी पूर्णतः विश्वसनीय और प्रामाणिक है। उक्त ग्रन्थका लेखक कुमारपालका केवल समसामयिक ही न था अपितु उसके व्यक्तिगत जीवनकी अतरग बातोका भी ज्ञाता था। कुमारपालके धार्मिक गुरु हेमचन्द्रने अपने कुमारपालचरित्रमे उसकी दिनचर्याका जो विवरण दिया है वह सोमप्रभाचार्यके वर्णनसे पूर्णत साम्य रखता है।[2]

श्रीफोर्वस्ने राजाके दैनिक जीवनके कार्यक्रमका जो विवरण लिखा है वह भी उक्त वर्णनसे समानता रखता है। उसका कथन है कि राजाकी निद्रा प्रभातकालमे राजकीय वाद्य तथा शखनादसे भंग की जाती थी। राजा शैय्याका त्यागकर अश्वारोहणके लिए चला जाता था। माध्याह्नमे

---

[1] तो राया बुट्ठवग्गं बिसज्जिअं दिवस चरम-जामम्मि
अत्थाणी मडव मडणम्मि सिंहासने ठाई।
सामंत मंति मंडलिय सेट्ठिपमुहाण बंसणं देइ
बिन्नत्तीओ तेसिं सुणइ कुणइ तह पडोयारं।
कय-निब्बिवेय जण विम्हियाइं करि अंक मल्लजुद्धाइं
रज्जट्ठिइ त्ति कइया वि पेच्छए छिन्नवंछो वि।
कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४४३।

[2] हेमचन्द्र : कुमारपालचरित्र, सर्ग १, श्लोक २९, ७४।

वह लोगोंकी प्रार्थनाए और आवेदन-निवेदन सुनता था। राजसभाके द्वारपर सशस्त्र सैनिक रहते थे। ये ही सभामे लोगोको प्रवेश करने देते अथवा निषेध करते थे। युवराज अथवा भावी उत्तराधिकारी, राजाके पार्श्वमे रहता। मडलेश्वर तथा सामन्त राजाके चारो ओर रहते थे। मन्त्रिराज अथवा प्रधान अपने सचिवोके साथ वहा विद्यमान रहता था। वह मितव्ययिता तथा साधुपरामर्शके लिए सदा प्रस्तुत रहता था। अपने परामर्शकी पुष्टि और प्रामाणिकताके लिए वह लिखित व्यवस्था तथा पूर्वमे हुई उसी प्रकारकी घटनाकी परम्पराकी व्यवस्था—पत्र भी प्रस्तुत रखता था। आवश्यक कार्य समाप्त हो जानेपर पडित तथा विद्वान आमन्त्रित किये जाते थे और उनके साहित्य तथा व्याकरणशास्त्रका रसास्वादन होता और उनपर विचार-विमर्श होता।[1]

शासन-परिषदका अध्यक्ष

उपर्युक्त आधिकारिक विवरणोसे स्पष्ट है कि राजाको तीन प्रकारके कर्त्तव्य सम्पादन करने पडते थे। शासन—परिषद्के अध्यक्ष होनेके नाते उसे राजकीय व्यवस्थाका निरीक्षण करना पडता था। उक्त ग्रन्थोके वर्णनोसे स्पष्ट है कि दिवसके चतुर्थ प्रहरमे (लगभग ३ बजे) राजा, सभामे सिहासनपर आसीन होकर राज-काजका निरीक्षण करता था।[2] महामडलेश्वर तथा सामन्त उसके चतुर्दिक रहते थे। मन्त्रिराज या प्रधान अपने साथियो सहित साधुतापूर्वक मितव्ययिताका परामर्श देते हुए लिखित आधिकारिक व्यवस्था लिए सदा प्रस्तुत रहते थे।[3] स्पष्टतः राजाको राज्यकार्य सम्पादनमे मन्त्रियोसे सहायता प्राप्त होती थी।

---

[1] फोर्बस् : रासमाला, अध्याय १३, पृ० २३७।

[2] कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४४३।

[3] रासमाला, अध्याय १३, पृ० २३७।

सैनिक कर्त्तव्य

राजा रणभूमिमें प्रधान सेनापति भी होता था, परिणामस्वरूप उसे सेनाके प्रशासनकी भी देखभाल करनी पड़ती थी। यद्यपि दंडाधिपति या दडनायकपर ही प्रधान सेनापतिका समस्त उत्तरदायित्व रहता था और उसीपर सैनिक व्यवस्थाकी जिम्मेदारी थी फिर भी राजा स्वयं सैनिक टुकडियोका निरीक्षण किया करता था। कुमारपालप्रतिबोधमे कहा गया है कि यदा कदा राजकीय कर्तव्य पालन करनेके लिए कुमारपाल मल्लयुद्ध प्रतियोगिता, हस्तियुद्ध तथा इसी प्रकारके अन्य आयोजनोमें सम्मिलित होता था।[1] यह केवल मनोरंजनके निमित्त न था अपितु राजकीय कर्त्तव्यके अन्तर्गत था। इससे विदित होता है कि सैनिक प्रदर्शनो, घुडदौडो, हस्तियुद्धो आदिमें सम्मिलित हो कुमारपाल अपने आवश्यक 'सैनिक कर्त्तव्य'का पालन करता था।

वैचारिक कर्त्तव्य

न्यायाधिकरणके उच्चतम अधिकारीके रूपमे राजा जनपक्षके तर्क भी दिनमे सुनता था।[2] राजा अपने राजदरबारमे सिंहासनपर आसीन होकर जनतासे पुनर्वाद सुनता तथा अपना निर्णय देता था।[3] राजा अपना यह वैचारिक कर्त्तव्य गूढ परिषद्के अध्यक्ष रूपमे सम्पन्न करता था। इसके अतिरिक्त अधिस्थानकके अधीन अनेक स्थानीय तथा प्रान्तीय न्यायालय रहे होगे। राजा जहा महत्त्वपूर्ण पुनर्वाद सुना करता था वह सर्वोच्च न्यायालय था। यहा वह बहुत ही आवश्यक प्रश्नो तथा पुनर्वादोको सुनता और मन्त्रियोकी सलाहसे निर्णय दिया करता था। उसके

---

[1] कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४४३।

[2] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

[3] कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४४३।

मन्त्री, जिनके विषयमें हम पहले ही देख चुके है, लिखित आधिकारिक व्यवस्था पत्र तथा पहले निर्णीत प्रश्नोका उदाहरण प्रस्तुत रखते थे और न्याय सम्पादनमे राजाकी हर प्रकारसे सहायता करते थे। इस बातपर पूर्ण ध्यान रखा जाता था कि पूर्वकालमें हुए निर्णयोकी अवहेलना न हो।[1]

अन्य विभिन्न कर्त्तव्य

इनके अतिरिक्त भी राजाको अन्य विभिन्न कर्तव्योका पालन करना होता था—यथा धार्मिक कर्त्तव्य आदि। वह विद्वत्परिषद् तथा पडित मडलीमे उपस्थित हो उसमे दार्शनिक और धार्मिक प्रश्नोपर वाद-विवाद एव विचार-विमर्श किया करता था। वह साधुओं सन्यासियोको भोजन-भिक्षा दिया करता था, और मन्दिरोमें अन्नादिकी भेंट करता। शासन कार्योंका सम्पादनकर, पडित तथा विभिन्न विषयोके आचार्य आमन्त्रित कर लिये जाते थे और साहित्य तथा व्याकरण शास्त्रकी चर्चा छिड जाती। इससे भी अधिक आकर्षक कार्यक्रम होता था भ्रमणशील चारण अथवा चित्रकारका आगमन। ये राम तथा विभीषणकी प्राचीन कथाये सुनाते अथवा किसी विदेशी सुन्दरीके सौन्दर्यका चित्रण कल्पना-चक्षुके सम्मुख उपस्थित करते।[2] उपर्युक्त कार्य राजाके अतिरिक्त कर्त्तव्योके अन्तर्गत थे, जिनका सम्पादन उसे अपने दैनिक उत्तरदायित्वोको वहन करनेके साथ ही साथ करना पडता था।

राजा-नियन्त्रित अथवा अनियन्त्रित

चौलुक्य राजा, प्राचीन हिन्दू राजतन्त्रके अनुसार अनियन्त्रित राजे थे। राजा ही शासन सम्बन्धी समस्त विभागोका अध्यक्ष और सर्वोच्च अधिकारी था। सिद्धान्तत. उसकी शक्ति और अधिकारमे कोई हस्तक्षेप

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

[2] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

नही कर सकता था, किन्तु व्यवहारमे राजाकी स्वेच्छाचारितापर नियन्त्रण तथा अकुश लगानेवाली अनेक शक्तिया थी। इसप्रकार सभी व्यावहारिक कार्योंके लिए वह वैधानिक शासक था।

कुमारपाल जैन आचार्य हेमचन्द्रके प्रभावमे सदा रहता था। उसके सिंहासनारूढ़ होनेमे राजधानीके सम्पन्न जैन दलोने बडी सहायता की थी। ये जैन करोडपति राजाकी स्वेच्छाचारितापर अत्यधिक प्रभाव डालते थे। पहले ही देखा जा चुका है कि कुमारपालके शासनकालमें बहुतसे वणिक उच्च पदोपर आसीन थे। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपमें वे राजाको प्रभावान्वित करते थे। जैन व्यवसायी इतने शक्तिशाली थे कि एक समय पाटनके नगरसेठ और दडनायक विमल मन्त्री अनेक सम्पन्न उद्योगपतियोके साथ पाटन छोड़कर चले गये थे और उन्होने चन्द्रावती नगर बसाया।[1] इसका कारण यही कहा जाता है कि बडे बडे जैन उद्योगपतियोंको, राजपूत राजाओका प्रभुत्व सहन न था। कर्णदेवके सम्बन्धमें तो यह प्रसिद्ध है कि वे जैन मन्त्रियोंके हाथकी कठपुतली थे।[2] इसप्रकार महान शक्तिसम्पन्न चौलुक्य राजाओ-की स्वेच्छाचारिता नियन्त्रित होती थी।

मन्त्रि-परिषद्

इसमे कोई सन्देह नही कि चौलुक्य राजाओको शासन कार्यमे मन्त्रियो द्वारा परामर्श और सहायता मिलती थी। प्राचीनकालसे ही राजकाजमे मन्त्रियोका अत्यधिक महत्त्व रहा है। कौटिल्यका कथन है कि राजाओके मन्त्री अवश्य होने चाहिये, क्योकि राज्यकार्य सम्पादनमे सहायताकी आवश्यकता होती है। परामर्शदाताओ और सहायको विना राज्य उसी

[1] के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व, खंड १, पृ० ३।
[2] वही, पृ० ४५।

भांति न चलेगा जिसप्रकार एक पहियेका रथ। राजकीय सत्ता भी मन्त्रियोंके बिना, ठीक इसी प्रकार असहायावस्थामें रहती है। अतएव राजाको मन्त्री नियुक्त करने चाहिये तथा उनसे सलाह लेनी चाहिये। मेरुतुगने अपनी रचना "प्रबन्धचिन्तामणि"में सभाके अस्तित्वका उल्लेख किया है।[1] तत्कालीन लेखकोंकी रचनाओसे विदित होता है कि कुमारपालके राज-दरबारमें मन्त्रियोकी परिषद् थी। कुमारपालप्रतिबोध, द्वयाश्रय काव्य तथा प्रबन्धचिन्तामणिके रचयिता इस प्रश्नपर एकमत है कि कुमारपालके यहां मन्त्रि-परिषद् थी। सोमप्रभाचार्यने कुमारपालके दैनिक कार्यक्रमका वर्णन करते हुए लिखा है कि वह अपने मन्त्रियोंके साथ हाथीपर सवार होकर कुमारविहार मन्दिर जाया करता था[2]। वह पंडितोकी सभामे उपस्थित होता था और उनसे विचार-विमर्श किया करता था। राज सभामे वह महामंडलेश्वरों तथा सामन्तोंसे घिरा रहता था। मन्त्रिराज या प्रधान अपने साथियों सहित लिखित आदेशपत्र लेकर सदा इस आशयसे प्रस्तुत रहते थे कि पूर्व परम्पराओकी उपेक्षा अथवा उल्लघन न होने पावे।[3] ये सभी तथ्य स्पष्टत: इस बातको सिद्ध करते है कि कुमारपालको राज्य-शासन सचालनमे मन्त्रियोसे परामर्श तथा सहायता प्राप्त होती थी।

मन्त्रियो तथा मन्त्रि-परिषद्का अस्तित्व, जयसिंह सिद्धराजके शासन-कालमे भी विद्यमान था। कहा जाता है कि जब सिद्धराज मृत्यु शैय्यापर थे तब उन्होंने अपने मन्त्रियोको बुलाकर सिंहासनपर योग्य उत्तराधिकारी आसीन करनेका कार्य सौंपा था। इसके अतिरिक्त पहले देखा जा चुका है कि

---

[1]न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्
धर्मः स नो यत्र न चास्ति सत्यं सत्यं न तद्यत्कृतकानुविद्धम्।
प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ५३।

[2]कुमारपालप्रति-बोध, पृ० ४२३—४४३।

[3]रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

जब सिद्धराजके उत्तराधिकारीका निर्वाचन हो रहा था, उस समय मन्त्रीगण सिंहासनके आकांक्षी राजकुमारोंसे प्रश्नकर उनकी योग्यताकी परीक्षा ले रहे थे। जब एक राज्यसिंहासनाकांक्षीसे पूछा गया कि वह सिद्धराजके अट्ठारह क्षेत्रोंका शासन कैसे सञ्चालित करेगा तो उसका यह उत्तर कि "आपके परामर्श तथा आदेशानुसार" उन मन्त्रियोंको उचित नहीं प्रतीत हुआ, जो सिद्धराज जयसिंहके गम्भीरस्वरपूर्ण आदेशोंके पालनके अभ्यस्त थे। इसलिए वह अयोग्य ठहराया गया।[1] प्रभावकचरितमें इस बातका उल्लेख है कि कुमारपालका राज्यारोहण श्रीमत सम्भाके द्वारा हुआ था, जिसके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें कुछ पता नहीं चलता।[2] इसीप्रकार कुमारपालप्रतिबोधका कथन है कि मन्त्रियोंने परस्पर विचार-विमर्शकर कुमारपालको सिंहासनारूढ किया।[3] द्व्याश्रय काव्यके प्रणेता हेमचन्द्रने भी लिखा है कि मन्त्रियोंने कुमारपालको राज्यसिंहासनपर आसीन किया।[4]

मन्त्री और उनका स्वरूप

इसप्रकार निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि एक न एक रूपमें

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ७८।

[2] प्रभावकचरित : २२, ३५६, ४१७।

[3] एवं परुप्परं मंतिऊण तह गिण्हिऊण सवायं
सामुद्दिय मोहुत्तिय साउणिय नेमित्तिय नराणं।
रज्जंमि परिट्ठवियो कुमारवालो पहाण पुरिसेहिं
तत्तो भुवणमसेसं परिओस-परं व संजायं।
कुमारपालप्रतिबोध, प० ५।

[4] तत्थ सिरि कुमरबालो वाहाए सव्वओवि धरिअ धरो
सुपरिट्ठ परीवारो सुपइट्ठो आसि राइन्दो।
द्वयाश्रय काव्यः सर्ग १, पृ० १५, श्लोक २८।

इस समय मन्त्रिपरिषद्का अस्तित्व अवश्य था और उसका कार्य था राजाको शासन सचालन तथा न्याय निर्णयमें सहायता प्रदान करना। इस मन्त्रि-परिषद्का अध्यक्ष सम्भवतः महामात्य, मन्त्री अथवा सचिव होता था। इसप्रकार जयसिंहके मुजाल, कुमारपालके महादेव[1] अजयपालके नागड[2] तथा सोमेश्वर,[3] भीम द्वितीयके रत्नपाल,[4] वीरधवल वस्तुपाल और तेजपाल वीसलदेवके नागड,[5] अर्जुनदेवके मूलदेव,[6] सारंगदेव, मधूसूदन तथा वेघ्या मन्त्री थे।[7] यह भी कहा जा सकता है कि शक्तिशाली राजाओके अधीन ये मन्त्री तदनुकूल नीति निर्देशित करते थे। यह हम पहले ही देख चुके हैं। राज्यके उत्तराधिकारीके चुनावके अवसरपर एक राजकुमारका यह कथन कि "आपके आदेश तथा परामर्शानुसार" उन मन्त्रियोको उचित उत्तर प्रतीत नही हुआ जो सिद्धराजके गम्भीरस्वरपूर्ण आदेशोके पालनके अभ्यस्थ थे। यह बात स्पष्टतः सिद्ध करती हैं कि शक्तिशाली राजाओके अधीन मन्त्रियोके लिए राजकीय सत्ताका विरोधकर सर्वथा स्वतन्त्र नीतिका निरूपण कदापि सम्भव न था।

कुमारपाल बहुत शक्तिशाली राजा था। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि वह पचास वर्षकी अवस्थामें सिंहासनारूढ हुआ। उसकी प्रौढावस्था तथा विभिन्न देशोमे पर्यटनसे प्राप्त अनुभवोके फलस्वरूप उसमे तथा

---

[1]आर्कलाजिकल सर्वे आव इंडिया वेस्टर्न सर्किल: १९०७-८, ५४-५५।
[2]इंडि० ऐंटी० : खंड १८, पृ० ३४७।
[3]वही, पृ० ११३।
[4]इपि० इंडि० : खंड ८, पृ० २०९।
[5]इंडि० ऐंटी० : खंड ६, पृ० ११२।
[6]राव शिलालेख।
[7]इंडि० ऐंटी० : खंड ४१, पृ० २१२ तथा पूना ओरियंटलिस्ट जुलाई १९३१, पृ० ७१।

उसके कतिपय पुराने उच्च कर्मचारियोंमें मतभेद उत्पन्न हो गया। पुराने मन्त्रियोंने अनुभव किया कि कुमारपाल जैसे योग्य तथा शक्तिशाली शासकके अधीन उनका प्रभाव एकदम विलुप्त हो गया है। परिणाम-स्वरूप उन्होने राजाकी हत्याकर अपनी पसन्दका राजा गद्दीपर बैठानेका निश्चय किया। सौभाग्यसे कुमारपालको इस षड्यन्त्रका पता लग गया और सभी षड्यन्त्रकारियोंको प्राणदंड मिला। निरंकुश तथा शक्तिशाली राजाओंके अधीन मन्त्रियोंकी स्थिति कैसी रहती थी, यह उसका एक उदाहरण है।

केन्द्रीय सरकारका संघटन

गुजरातके चौलुक्योंके शासनकालमें विभिन्न शासन यन्त्रोंका विकसित तथा पुष्टस्वरूप विद्यमान था। ऐतिहासिक तथा तत्कालीन साहित्यिक रचनाओंके अतिरिक्त, शिलालेखों, दानपत्रों आदिके भी ऐसे पुष्ट प्रमाण है, जिनसे विभिन्न राज्याधिकारियोंका पता चलता है। उनके कर्त्तव्योंपर प्रकाश डालते हुए ये विभिन्न प्रशासकीय इकाइयोंका भी नामोल्लेख करते है। कुमारपालका साम्राज्य बहुत लम्बा चौडा था, इसलिए शासनकी सुविधाके विचारसे इसे केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारोमें विभाजित किया गया था। केन्द्रीय सरकारमें विभिन्न अधिकारी और विभाग निम्नलिखित थे —

१. महामात्य[1]
२. सचिव
३. मन्त्री
४. महाप्रधान[2]
५ महामंडलेश्वर[3]

---

[1]आर्कि० सर्वे इंडिया वे० स० : १९०७-८, पृ० ५४-५५।

[2]इंडि० ऐंटी० : खंड १३, पृ० ८३।

[3]इंडि० ऐंटी० : खंड १०, पृ० १५९, इपि० इंडि० खंड ८, पृ० २१९, इंडि० ऐंटी० : खंड १८, पृ० ८३, वही, खंड १०, पृ० १६०।

६. दडाधिपति
७. दडनायक[1]
८. देश रक्षक[2]
९. कर्णपुरुष
१०. अधिष्ठानक[3]
११. शौल्यणपाल
१२. भट्टपुत्र
१३. विषयिक[4]
१४. पट्टाकिल[5]
१५. सान्धिविग्रहक[6]
१६. दूतक[7]
१७. महाक्षपटलिक[8]
१८. राणक[9]
१९. टाकुर[10]

---

[1]आर्कि सर्वे इंडिया बे० स० : १९०७-८, ४४-४५, ५१-५२, ५४-५५।
[2]आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय ९, पृ० २०३ तथा मोहराज पराजय : अंक ४, पृ० ७८।
[3]वही।
[4]वही।
[5]वही तथा इपि० इंडि० : खंड २३, पृ० २७४।
[6]इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४४।
[7]इंडि० ऐंटी० : खंड ४१, पृ० २०२-३।
[8]आर्कलाजी आव गुजरात, अध्याय ९, पृ० २०३।
[9]इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४७-४८।
[10]वही।

शिलालेखों, दानपत्रों तथा अन्य प्रामाणिक विवरणोंसे विदित होता है कि महामात्य, महाप्रधान, सचिव और मन्त्री, राजाके परामर्शदाता थे। वाली शिलालेखमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख है कि राजा कुमारपालके शासनकालमें श्रीमहादेव, महामात्यके पदका भार ग्रहणकर राजकार्य सचालन करते थे।[1] इस तथ्यकी पुष्टि पाली,[2] किराडू[3] तथा गाला[4] शिलालेख भी करते है, जिनका तिथिक्रम क्रमशः विक्रम संवत् १२०६, १२०६ तथा १२०(१?) है। कुमारपालके समयके इन सभी शिलालेखोंमें कहा गया है कि महामात्य महादेव (महामात्य श्रीमहादेव)के अधीन ही राजमुद्रा रहती थी। सचिव और मन्त्री, महामात्यके अधीन साधारण मन्त्री थे। अमात्य तथा महाप्रधानका उल्लेख केवल एक बार अजयपालके दानलेखमें हुआ है।[5]

दंडाधिपति तथा दंडनायक—ये क्रमशः प्रधान सेनापति तथा राज्यपाल थे। दडनायकका उल्लेख, कुमारपालके अनेक शिलालेखोंमें हुआ है। भटिंडा,[6] पाली[7] तथा वाली[8] शिलालेखोमे दंडनायक वजयलदेव

---

[1] "....श्रीमत्कुमारपालदेव कल्याण विजय राज्ये तत्पादपद्मोपजीविनी महामात्य श्रीमहादेवे....समस्त मुद्रा व्यापारान् परिपंथयति।" आर्कि० सर्वे० इंडिया वे० स० १९०७-८, पृ० ५४-५५।

[2] वही, पृ० ४४-४५।

[3] इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४४।

[4] पूना ओरियन्टलिस्ट, खंड १, उपखंड २, पृ० ४०।

[5] इंडि० ऐंटी० : खंड १३, पृ० ८३।

[6] आर्कि० सर्वे० इंडिया वे० स० : १९०७-८, पृ० ४४-४५।

[7] "श्रीनड्डुले दंड श्रीवयजलदेव प्रभृति .. " वही, पृ० ५४-५५।

[8] "महानड्डुले भुज्यमान महाप्रवणं दंडनायक श्रीवैजाकः" वही, पृ० ५१-५२।

(दंड श्रीवजयलदेव, दडनायक श्रीवैजाक) का उल्लेख हुआ है। इस बातकी अधिक सम्भावना है कि दडनायक वजयलदेव चौहान राजधानीके प्रशासक थे, क्योंकि यह महत्त्वपूर्ण और साथ ही नवविजित प्रदेश था।

देशरक्षक—डाक्टर हसमुख डी० सकालियाके कथनानुसार देशरक्षक सम्भवतः आधुनिक पुलिस सुपरिंटेन्डेन्टका पद था।[1] यशपालने अपने नाटक मोहराजपराजयमे "दडपाशिक" नामके एक अधिकारीका उल्लेख किया है, जिसका कर्त्तव्य जाच-पडताल करना बताया गया है।[2] जो हो, ऐसे सुसघटित शासनमे पुलिस अधिकारीके विद्यमान होनेमे कोई सन्देह नही हो सकता. यह तो निश्चित हो है। फलस्वरूप इस निष्कर्षपर पहुचा जा सकता है कि देशरक्षकका पद तथा कर्त्तव्य उसीके समान रहा होगा।

महामंडलेश्वर—मडलका प्रशासक महामडलेश्वर कहा जाता था। जयसिहके शासनकालमे दधिपद्रमडलके महामडलेश्वर वपनदेव थे।[3] भीम द्वितीयके कालमे सोमसिहदेव और वयजलदेव क्रमशः अर्बुद[4] (आबू) तथा नर्वदातट मडलोके महामडलेश्वर थे। सारगदेवके शासनकालमे सौराष्ट्र मडलकी राजधानी वयनस्थली (जूनागढके निकट वनथली) के महामडलेश्वर विजयानन्द थे।[5] यह हम पहले देख चुके है कि राजसभामें राजाके पार्श्वमे महामडलेश्वर तथा सामन्त उपस्थित रहते थे।[6] महा-मडलेश्वरकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा होती थी और साधारणतः

---

[1] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय ९, पृ० २०३।
[2] मोहराजपराजय : चतुर्थ अक, पृ० ७८।
[3] इंडि० ऐंटी० : खंड १०, पृ० १५९।
[4] इपि० इंडि० : खंड ८, पृ० २१९।
[5] पूना ओरियंटलिस्ट : खंड ३, पृ० २८।
[6] रासमाला : खंड १, पृ० २३७।

राजवंशके ही किसी व्यक्तिको उक्त पदपर नियुक्त किया जाता था। वह मंडलका सर्वोच्च प्रशासक तथा कार्याध्यक्ष होता था। विक्रम संवत् १२०२ (सन् ११४५ ईस्वी)के दोहाद प्रस्तर लेखमें भी "महामडलेश्वर"-का उल्लेख आया है। इसमें कहा गया है कि महामडलेश्वर वपनदेवकी कृपासे राणा शकरसिंह महान पदको प्राप्त कर सके। अनेक विद्वानोका मत है कि यद्यपि इसमें शासन करनेवाले राजाका स्पष्ट नाम नही दिया गया है, तथापि यह कुमारपालके शासनकालका ही है।[1]

अधिष्ठानक—राज्यके महत्त्वपूर्ण न्याय विभागका विचारक अधिष्ठानक कहा जाता था।

सान्धिविग्रहिक—राजनीतिक दूत थे, जिनका सम्बन्ध शान्ति और युद्धसे था। इनका महत्वपूर्ण कर्त्तव्य था—केन्द्रीय सरकारको पर-राष्ट्रीय परिस्थितियोसे अवगत रखना। कुमारपालके शासनकालके किराडू शिलालेखमे सान्धिविग्रहिककी भी चर्चा हुई है। इसमे कहा गया है कि यह आदेश राजा कुमारपालके हस्ताक्षरसे प्रसारित हुआ तथा सान्धिविग्रहिक खेलादित्यने इसे लिखा था।[2]

विषयिक—मडलसे छोटे किन्तु ग्रामोके समूहका सर्वोच्च शासक विषयिक होता था। यह सबसे बडा प्रादेशिक क्षेत्र होता था, जिसे आधुनिक कालमे प्रान्त कहा जा सकता है। प्रत्येक विषय अथवा पाठकके प्रशासनके लिए यह अधिकारी नियुक्त होता था तथा अपने उच्च अधिकारीके प्रति उत्तरदायी होता था। इस प्रकार हम देखते है कि वधि-पाठकके महामडलेश्वर वयजलदेवके शासनकालमे महामडलेश्वर राणा सामन्तसिंह अमात्य नागडके अधीन थे।[3] वमनस्थलीके महत्तर शोयन-

[1] ध्रुव : इंडि० ऐंटी० : खंड १०, पृ० १६० ।

[2] इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४४, सूची संख्या २८७ ।

[3] इंडि० ऐंटी० : खंड ९, पृ० १५१ ।

देवके तत्कालीन उच्च अधिकारी सौराष्ट्रके महामडलेश्वर सोमराज थे।[1]

पट्टाकिल—यह गावकी मालगुजारी एकत्र करनेवाला अधिकारी था।[2] आधुनिक पाटिल अथवा पटेल इसी शब्दसे बने है। कोंकणके शीलहारोंके शिलालेखोमें पट्टालिक शब्द व्यवहृत हुआ है।[3] पट्टाकिल ग्रामका उत्तर-दायी अधिकारी था और उसका मुख्य कर्त्तव्य था मालगुजारी एकत्र कराना। प्रान्तीय सरकारके माध्यमसे उसका सम्बन्ध केन्द्रीय सरकारसे भी था।

दूतक तथा महाक्षपटलिक—ये क्रमशः राजदूत तथा अभिलेखपाल थे। महाक्षपटलिक राज्यका बहुत महत्त्वपूर्ण अधिकारी था। राज्यके समस्त अभिलेख उसीके अधीन रहते थे। कौटिल्यके अर्थशास्त्रसे हमे विदित होता है कि यह विभाग राज्यमे बहुत प्राचीनकालसे चला आ रहा था और इसके अन्तर्गत विशद पद्धति प्रचलित थी।[4]

राणक तथा ठाकुर—ये भी राज्यके दो महत्त्वपूर्ण अधिकारी थे। यह दो उपाधिया ऐसी थी, जो राष्ट्र अथवा राज्यके प्रति की गयी सेवाओंके विचारसे किसी व्यक्तिको प्रदान की जाती थी। "राणक"का केवल गुज-रातमे ही प्रयोग नही पाया जाता अपितु अन्य स्थानोमें भी। सम्भवतः यह राजपूत उपाधि "राणा"का पूर्व रूप है।[5] ठाकुर भी राज्यके उच्च अधिकारी थे। कुमारपालके शासनकालमे ठाकुर खेलादित्य सान्धि-विग्रहिकका कार्य सम्पन्न कर रहे थे।[6] कुमारपालके शिलालेखोमे

---

[1] वही, खंड १८, पृ० १३३।

[2] आर्किलाजी आव गुजरात : अध्याय ९, पृ० २०३।

[3] इपि० इंडि० : खंड २३, पृ० २७४।

[4] अर्थशास्त्र : अध्याय २, श्लोक ७।

[5] आर्किलाजी आव गुजरात : अध्याय ९, पृ० २०३।

[6] "... सान्धिविग्रहिक ठा० खेलादित्येन लि.." किराडू शिला-लेख।

दूतक,[1] राणा,[2] तथा ठाकुर[3] नामके अधिकारियोंके उल्लेख आये हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि कुमारपालके शासनकालमे केन्द्रीय सरकारका संघटन अत्यन्त व्यवस्थित था। केन्द्रीय सरकारको सफल बनानेवाले सभी महत्त्वपूर्ण विभाग राज्यमे सघटित थे। शिलालेखो, दानलेखो, अभिलेखो तथा अन्य साधनोसे विभिन्न राज्य अधिकारियोके पद तथा उनके कर्तव्योका पूर्णरूपेण विवरण प्राप्त होता है।

प्रान्तीय सरकार

यह पहले ही देखा जा चुका है कि चौलुक्य राजाओका राज्य सुदूर प्रदेशो तक विस्तृत तथा व्यापक था। केन्द्रीय सरकारके लिए यह सम्भव न था कि वह समस्त राज्यकी समुचित व्यवस्थामे समर्थ और सफल होती। फलस्वरूप सम्पूर्ण राज्य शासन-सचालनकी सुविधाके विचारसे अनेक खडोमे विभाजित था, जिसे प्रान्तकी संज्ञा दी जा सकती है।

मंडल—राज्यका सबसे बडा प्रादेशिक खड था, जिसकी समानता आधुनिक प्रान्तसे की जा सकती है। कही लाट और सौराष्ट्रको देश कहा गया है और कही गुर्जर मडल। सम्भव है कि समस्त गुजरातके अर्थमें गुर्जरमडलका प्रयोग हुआ हो। मडलका प्रशासक महामंडलेश्वर पुकारा जाता था और उसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा होती थी। जूनागढ शिलालेखमें अंकित है कि प्रभासपाटनके गूमदेवकी नियुक्ति कुमारपालने विक्रम सवत् ११९९ तथा १२२९के मध्यमें की थी।

---

[1] " . दूतकोऽत्र देवकरणो महं साक्यगुगुण" . . . . : इंडि० ऐंटी० खंड ४१, पृ० २०२-३।

[2] " . . वोरिपद्मके राणा लखमण राजे . . . ." इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४७-४८।

[3] "स्वति सोनाणाग्रामे ठा० अणसीहुस्य . . . ." : वही।

उसने आभीरोंके विद्रोहका दमन किया जिसका प्रभाव स्थानीय था।[1] कतिपय नवविजित प्रान्तोंको दंडनायकके अधीन रखा जाता था। इसका कारण अवश्य ही सैनिक तथा स्थानके महत्त्व विशेषसे सम्बन्धित रहता था। विक्रम सवत् १२००के बाली शिलालेखसे विदित होता है कि चौहान चौलुक्योंसे सदा लड़ते रहते थे। अन्तमें चौलुक्यराज सिद्धराज जयसिंहने चौहानोंको पराजित किया। बालीमें जयसिंहका अधीनस्थ अश्व राजा था। किन्तु इसी शिलालेखसे ज्ञात होता है कि नाडुल्यका नयाप्रान्त कुमारपालके सेनापति वयजलदेव द्वारा प्रशासित था। ऐसा प्रतीत होता है कि चौहानोंने अपने अधिपति चौलुक्योंको अप्रसन्न कर दिया था और इसीके परिणामस्वरूप गोडवाडसे उन्हे हटा दिया गया तथा उस प्रदेशके प्रशासनके लिए नये सेनापति वयजलदेवकी नियुक्ति की गयी।[2]

महामडलेश्वरोंकी सहायता प्रान्तके अन्य अधिकारी करते थे, जिनकी नियुक्ति वे स्वय करते थे, किन्तु उनकी स्वीकृति केन्द्रसे लेनी पडती थी। महामडलेश्वरोंको पुरस्कृत और दडित करनेका भी अधिकार था। इसकी पुष्टि दोहाद शिलालेखसे होती है जिसमे कहा गया है कि महामडलेश्वर वपनदेवकी कृपासे राणा शकरसिंहने उच्चपद प्राप्त किया।

विषय तथा पाठक—मडलके बाद उससे छोटी प्रादेशिक इकाई विषय तथा पाठक थे। विषय ग्रामोंका समूह या तो पाठक बड़ा गांव था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनोमे कोई विशेष भिन्नता नहीं

---

[1] "श्री गूमदेवोवली यत्सड्गाहत भीति कंप तरलैराभीर वीरैः" पूना ओरियंटलिस्ट खंड : १, उपखंड २, पृ० ३९।

[2] " .. तस्मिन काले प्रवर्त्तमाने श्रीनड्डूले दंड श्रीवयजलदेव प्रभृति पंचकुलप्रतिपत्तौ. . . . "—आर्कि० सर्वे० इंडिया वे० स० १९०७-८, पृ० ५४-५५ तथा "महानड्डले भुज्यमान महाप्रवण दंडनायक श्रीवैजाकः"—भटूंड शिलालेख।

मानी जाती थी। एक स्थानमें गाम्भूत विषयके नामसे सम्बोधित किया गया है तो दूसरे स्थानमें उसे पाठक कहा गया है।[1] प्रत्येक विषय और पाठक एक पृथक अधिकारीके अधीन था। यह अधिकारी अपने उच्च पदाधिकारीके प्रति उत्तरदायी होता था। कुमारपालके शिलालेखोंमें इन प्रादेशिक इकाइयोका नामोल्लेख हुआ है। विक्रम सवत् १२०६के पाली शिलालेखमें पल्लिका विषय (श्रीमत्पल्लिका विषये)की चर्चा आयी है जहां चामुडराज शासन कर रहे थे। यही प्राचीन पल्लिका नगर आधुनिक पाली है। इसीप्रकार ग्राम भी इस समय शासकीय इकाई था। केल्हणके नडलाई शिलालेखसे विदित होता है कि विक्रम सवत् १०२३में चौलुक्यराज कुमारपालके शासनकालमें जब केल्हण नाडुल्यके तथा राणा लक्ष्मण वोदिपद्यकके शासक थे, उस समय सोनाणाग्रामके ठाकुर अणसिह थे।[2] आहार, द्रागा, मडली तथा स्थली आदि शासकीय इकाइयोंका चौलुक्य शासनमें कोई उल्लेख नही मिलता। वल्लभी अभिलेखोमें इनकी इतनी अधिक चर्चा आयी है कि चौलुक्योके समय इनका उल्लेख न होना आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। इसके दो कारण सम्भव है। एक तो काठियावाडके अनेकानेक स्थानोका अभी तक उत्खनन नही हुआ है और दूसरा यह कि सम्भवतः ये मैत्रिकोंके बाद विलीन[3] हो गयी हो।

---

[1] इाडि० ऐंटी० खंड ६, पृ० १९६-८ तथा (२) बॉ० ओ० जे० बी०, ३००। प्रथममें गाम्भूतको "पाठक" कहा गया और दूसरेमें "विषय"।

[2] श्रीकुंवरपालदेव विजय राज्ये श्रीनाडुल्य पुरात श्रीकेल्हणः राजे बोरिपद्यके राणा लक्ष्मण राजे स्वस्तिसोनणाग्रामे ठा अणसी हुस्य....." इपि० इंडि० खंड ११, पृ० ४७-४८।

[3] आर्कलाजी आव गुजरात : पृ० २०२।

केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारका सम्बन्ध

चौलुक्योंकी सरकारका केन्द्रीयकरण अत्यन्त सुदृढ था। यद्यपि प्रान्तीय सरकार तथा केन्द्रीय सरकारका शासनतन्त्र पृथक-पृथक था तथापि प्रान्त, केन्द्रीय सरकारकी नीतिका ही अनुगमन करता था। उच्च प्रान्तीय अधिकारी विशेषतः दडपाल तो केन्द्र द्वारा ही नियुक्त होता था। गाला शिलालेखमे यह बात स्पष्ट रूपसे अकित है कि राजधानी अनहिलपाटनमे महामात्य महादेव समस्त राजकार्यका सचालन करते थे। इसीके साथ उन सभी उच्चाधिकारियोके नामोका भी उल्लेख हुआ है, जिनकी नियुक्ति पहले महामात्य अम्बप्रसाद तथा वहडदेवने अपने शासनकालमे काठियावाडके उस प्रदेशमे की थी जहा गाला स्थित है।[1] इससे स्पष्ट है कि प्रान्तीय सरकार केन्द्रीय सरकारके प्रति उत्तरदायी थी।

कभी-कभी राजा स्वय आज्ञा प्रचारित करता था और उसको जनतासे कार्यान्वित कराना अधिकारियोका कर्तव्य होता था। विक्रम सवत् १२०९मे कुमारपालने कतिपय विशेष दिनोको पशुहिसापर प्रतिबन्ध लगा दिया था। इसका उल्लघन करनेवाले राजकीय परिवारके सदस्योके लिए भी अर्थदडकी व्यवस्था थी और अन्य साधारण लोगोके लिए मृत्युदड नियत था। यह आज्ञा कुमारपालके हस्ताक्षरसे स्वीकृत और प्रचारित की गयी थी।[2]

---

[1] "महामात्य श्रीमहादेव : (वे) इत्येतस्मिन काले प्रवर्तमाने ... कुमारपाल पर? तड़ाग कर्म्मस्थाने महामात्य श्रीअम्बप्रसाद प्रतिबद्ध मेह० सजिग। महाक्ष० श्रीदेऊयप्रतिबध(द्ध) पारे० धवल। महाक्ष० श्री-कल्लनप्रसाद प्रतिबध(द्ध) ह्वि पारे० बाघूय। महामात्य श्रीवाहडदेव प्रतिबध(द्ध) त्रि ? प्रता...." पूना ओरियंटलिस्ट : खंड १, उपखंड २, पृ० ४० ।

[2] इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४४ ।

अन्तमें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारकी एक विशेष स्थिति ध्यान देने योग्य है। साधारणतः होता यह था कि विजयी राजाकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर लेनेपर विजित प्रदेश उसके मूल शासकको पुनः सौंप दिया जाता था। जब तक अधीनस्थ राजा विश्वस्त बना रहता था, यह स्थिति रहती थी। इससे विपरीत स्थिति होनेपर राज्य जब्त कर लिया जाता था। कुमारपालके किराडू शिलालेखमे उस घटनाका उल्लेख है, जिसमे कहा गया है कि विक्रम स्म्वत् ११९८मे सिद्धराज जयसिंहकी अनुकम्पासे सोमेश्वरने सिन्धुराजपुर वापस प्राप्त कर लिया था।[1] विक्रम सवत् १२०५मे कुमारपालकी कृपादृष्टिसे उसने अपने राज्यको और सुदृढ बनाया। इन कथनोंसे ऐसा प्रतीत होता है कि दन्दूकने भीम प्रथमसे अपने सम्बन्ध अच्छे कर लिये थे किन्तु प्रभुसत्ता और अधीनस्थ-मे पुन. विग्रहकी स्थिति उत्पन्न हो गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि किराडू प्रदेश गुर्जरराज द्वारा हस्तगत कर लिये गये। बादमें उदयराज तथा उसके पुत्र सोमेश्वरने सिद्धराजको युद्धमे सहायता प्रदान कर प्रसन्न कर लिया था। फलस्वरूप उसका राज्य लौटा दिया गया था। सोमेश्वर-ने किरातपुरमें दीर्घकाल तक शासन किया। यही किरातपुर आधुनिक किराडू है। विक्रम सवत् १२०९के किराडू शिलालेखसे ज्ञात होता है कि किरातकूप चौहान अलहणदेवके अधिकारमे कुमारपालकी कृपासे था, किन्तु शिलालेखमे इस बातका भी उल्लेख है कि यह परमार वशसे अधिकारमे आया था।[2]

स्थानीय स्वायत्त शासन

भारतमे अनेकानेक धार्मिक तथा राजनीतिक क्रान्तिया हुईं, किन्तु

---

[1] इंडि० एंटी० खंड ६१, पृ० १३५, सूची संख्या ३१२।

[2] इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४३।

इनके होते हुए भी ग्रामोकी स्वायत्तशासन करनेवाली सत्तापर उनका कोई प्रभाव नही पड़ा। भारतमे अंगरेजोंके आगमनके पूर्व तक ग्राम-पंचायतो और ग्राम-सघोका अस्तित्व था। चौलुक्योके शासनकालमें भी "देश" ग्रामोंमे विभाजित था। ग्रामीण, कौटुम्बिक कहलाते थे और ग्रामका मुखिया पट्टाकिल (पटेल) कहलाता था।[1] केन्द्रीय सरकारके संघटनमे हम देख चुके हैं कि पट्टाकिल मालगुजारी एकत्र करनेवाला राज्याधिकारी था।[2] कोकणके शीलहारोंके शिलालेखोमे पट्टाकिलका, जो बादमे पटेल हो गया, उल्लेख हुआ है।[3] यद्यपि वह ग्रामका मुखिया था और उसका मुख्य कार्य मालगुजारी एकत्र करना था तथापि विभिन्न कार्योंके सम्पादनमें उसे ग्रामसभासे अवश्य सहायता मिलती होगी। ग्रामशासन यद्यपि स्वतन्त्र तथा स्वायत्त था तथापि कुछ न कुछ अशोंमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे वह केन्द्रके प्रति भी उत्तरदायी था।

नगरोमे बड़े बड़े व्यवसायी कुबेर, महत्तर वणिज, महाजन तथा वणिकोकी श्रेणियां और सघ थे। कुबेर नगरश्रेष्ठी कहा जाता था। सरकारपर इसका अत्यधिक प्रभाव था। राजधानी अणहिलवाडाके वणिक बहुत सम्पन्न थे। वहा अनेक लक्षाधिपति थे और कोटिश्वरोंके भव्य भवनोपर बडी-बड़ी पताकाए और घटे लटकते रहते थे। उनका वैभव, राजकीय वैभवके समान प्रतीत होता था। कुमारपाल नगरश्रेष्ठीकी चर्चा बहुत आदरपूर्वक करता है,[4] और उसकी मृत्युका समाचार सुनकर

---

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३१।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय ९, पृ० २०३।

[3] इपि० इंडि० : खंड २३, पृ० २७४।

[4] निज विभवनिर्जितामरपुरीकमेते वयं सहानेन
यन्नगरमधिवसाम : कथं न जानीम तं(स्तं) नाम।
मोहराजपराजयः अंक ३, पृ० ५१।

शोकग्रस्त होता हूँ।[1] चौलुक्य राजाओंपर उद्योगपतिवर्गका कैसा प्रभाव था, इससे स्पष्ट हो जाता हूँ। राजधानी अणहिलवाड़ामें वणिज श्रेणी अथवा संघ स्वायत्त शासनसे परिचालित होते थे और नगरपालिकाके शासनमें भी सहयोग प्रदान करते थे, इस तथ्यको स्वीकार करनेके लिए अनेक कारण हैं।

आर्थिक व्यवस्था पद्धति

आर्थिक व्यवस्थाका विभाग राज्यका सबसे महत्त्वपूर्ण विभाग था। यह विदित था कि अर्थसे ही सभी कार्योंकी उत्पत्ति होती है। यही सभी धर्मोंका भी साधन हूँ।[2] रामायणमें लंकाकाण्डमें लक्ष्मणने रामसे जो कथन व्यक्त किया है, उससे धर्म तथा अर्थका महत्त्व सम्यक्‌रूपेण स्पष्ट हो जाता है।[3] वास्तवमें राष्ट्रकी भौतिक उन्नतिके लिए अर्थ अनिवार्य है। वैदिककालसे ही करका संग्रह राजाके कर्त्तव्यके अन्तर्गत समझा जाता रहा है।[4] यह परम्परा समयानुसार और भी विकसित हुई होगी और इसमें सन्देहका कोई कारण नहीं कि चौलुक्योंने भी इस व्यवस्था और विभागकी ओर समुचित ध्यान अवश्य दिया था।

---

[1] कष्टं भोः। कष्टम् मन्ये च तद्‌हृदादेवायमतीव करुणोरोदन ध्वनिरुदगमत्। वही।

[2] वनपर्व : ३३:४८।

[3] अर्थेभ्योहि विवृद्धेभ्यः संवृत्तेभ्यस्ततस्ततः
क्रियाः सर्वाः प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः
अर्थेन हि विमुक्तस्य पुरुषस्याल्प तेजसः
व्युच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो यथा।
वाल्मीकि रामायण।

[4] "इयं ते राट् कृषिः त्वा क्षेमत्वा कोषत्वा"। : शतपथ ब्राह्मण ५:२:२५।

भूमि ही आयका सबसे महत्त्वपूर्ण साधन थी। हिन्दू समाजके इतिहासमें भूमि का प्रश्न सभीके मौलिक हित और स्वार्थका प्रश्न था। चौलुक्योंके समकालीन लेखकों तथा ग्रन्थकारोंने इस विषयपर कोई विशेष प्रकाश नही डाला है और सम्भवतः इसीलिए कि यह तो समस्त संसारको विदित ही था। प्रसगोंसे हमें ज्ञात होता है कि उपजमें राजाका भाग होता था। कभी राजा अपना यह भाग सीधे किसानसे या अपने कर्मचारी द्वारा जो "मन्त्री" कहलाते थे, लिया करता था। कभी यह भी होता था कि किसानसे ग्रामका मुखिया अन्नका हिस्सा ले लेता था और राजा ग्रामके इन शासको द्वारा अपना अश प्राप्त करता था।

अवर्षणके फलस्वरूप राजाका अश किसान न दे पाता था और उसपर राजाका हिस्सा देनेके लिए दबाव डाला जाता था। किसान हठपूर्वक सिद्धान्तकी दुहाई देता और असहाय बालकके समान अपना दु:ख प्रकट करता। दोनो पक्षोमें अनेक प्रकारकी कठिनाइयां उपस्थित होती और एक न्यायालयमे अन्तिम समझौता होता। यह न्यायालय ठीक वैसा ही होता था, जैसा न्यायालय आज भी स्थानीय नियमोके अनुसार देशके विभिन्न भागोमें ऐसे प्रश्नोका निर्णय किया करता है।[1] इसप्रकार आयका बहुत बडा भाग भूमिसे प्राप्त होता था । इसमे भूमिकी उपजका एक निश्चित अश द्रव्य या अन्न रूपमे देनेका सिद्धान्त नियत रहता था। अन्नरूपमे ही उक्त भाग देना अधिक अच्छा माना जाता था।[2] राजाको उपजका छठा हिस्सा करके रूपमे दिया जाता था। इसीलिए राजाको "षडभागभृतराजा", "षडभागभाक" और षडंस्ववृति कहा जाता था। इसप्रकार निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि राजाका हिस्सा भूमिकी उपजका षष्ठ भाग नियत था।

---

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३१-२३२।

[2] हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीटचूशन : अध्याय ४, पृ० १६३।

भूमि का विशाल भाग राज्यके अधिकारमे था। यह इस बातसे भी स्पष्ट है कि राजाओने बहुतसी भूमि दान दी थी। मुख्यतः राजाओने धार्मिक व्यक्तियों अथवा मन्दिरोको उक्त भूमिखडोंका दान दिया था। इस प्रकारके अनेक उदाहरण अभिलिखित है। उदाहरणार्थ सिद्धपुर तथा सिहोर ग्राम ब्राह्मणो और जैन आचार्योंको राजाकी ओरसे दान दिये गये थे। राजा द्वारा इन भूमिखडोंके पृथकीकरणको "ग्रास" कहा गया है। यह शब्द तत्कालीन धार्मिक दानलेखोंमे साभिप्राय प्रयुक्त हुआ है। राजपरिवारके लोगोको भी भूमि या जागीरें मिला करती थी। ऐसे लोगोमें देत्युली तथा बघेलके नाम उल्लेख्य है। दयालुताके सम्राट कुमारपालके सम्बन्धमे भी कहा जाता है कि उन्होने सकटके समय अमूल्य सहायता प्रदान करनेवाले अलिग कुम्हारको सात सौ गाव लिखकर दान कर दिये थे।[1]

भूमिसे आयके अतिरिक्त अणहिलपाठकके राजाको व्यापारसे भी पर्याप्त मोटी रकमकी आय होती थी। राज्यसे ले जाये जानेवाले सभी मालोपर निकासी कर तथा "दान" लिया जाता था।[2] पोत, समुद्र व्यवसायी तथा समुद्री लुटेरोंका भी उल्लेख आया है। व्यवसायियो तथा उद्योगपतियोको वणिज, महत्तर वणिज और महाजन कहा जाता था।[3] यहांके उद्योगपति अत्यधिक सम्पन्न थे। जिस व्यवसायीके पास एक करोड़की सम्पत्ति एकत्र हो जाती थी उसे कोटघाधीशकी पताका फहरानेका गौरव प्रदान किया जाता था। योगराजके शासनकालमे,

---

[1] तदनु चौलुक्यराजा कृतज्ञ चक्रवर्तिना आलिगकुलालाय सप्तशती ग्रामभिता विचित्रा चित्रकूट पट्टिका ददे। प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ८०।

[2] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३५।

[3] मोहराजपराजय : अंक ३, पृ० ५०-७०।

एक विदेशी राजाका हाथी, घोड़े और व्यापारके सामानोंसे लदा जहाज सोमेश्वर पाटनके बन्दरगाहपर बहकर आ लगा था। सिद्धराजके राज्य-कालमें समुद्रसे व्यापार करनेवाले सपात्रिक अपना स्वर्ण, समुद्री डाकुओके भयसे गाठोमे छिपाकर ले जाते थे। अणहिलपाठकके राजाके अधिकारमें उत्तरी कोकण तथा समस्त गुजरातके समुद्री स्थान भी थे। स्तम्भतीर्थ तथा भृगुपुर क्रमश: सूरत तथा गुडावाके बन्दरगाह है। सूर्यपुर सम्भवतः सूरत है तथा गुडावा गुणदेवी है। देव्य, द्वारका, देवपाटन, मोवा, गोपनाथ आदि बन्दरगाह सौराष्ट्रके तटपर स्थित है।[1] स्पष्टतः राजाको भारी पैमानेपर होनेवाले इस उद्योगसे, राजकीय कोषमे पर्याप्त अच्छी धनराशि मिल जाती थी। अवश्य ही उद्योगके लिए उपयुक्त इन प्रसिद्ध बन्दरगाहोंसे भी राजकोशमे यथेष्ठ परिमाणमे धन प्राप्त होता था।

राजकीय आयका इस समय एक और भी महत्त्वपूर्ण साधन था। वह यह था कि उत्तराधिकारी न छोड़नेवाले नि:सन्तान लोगोकी मृत्युके बाद उनकी समस्त सम्पत्ति राज्य हस्तगत कर लेता था। ऐसे लोगोके घरपर अधिकार कर चुकने तथा एक पचकुलकी (समिति) नियुक्तिके पश्चात् राज्याधिकारी सभी वस्तुए जब उठा ले जाते थे, तब कही शव अन्तिम क्रियाके निमित्त ले जाया जा सकता था। इसप्रकारकी घटनाका पता, कुमारपालके समसामयिक यशपालके नाटक मोहराजपराजयसे लगता है। इसमें कहा गया है कि राजाके पास चार उद्योगपति इस आशय-का समाचार लेकर पहुचे कि राजधानीका कुबेर नामका एक लक्षाधिपति समुद्र यात्रामे दिवगत हो गया है, इसलिए राज्याधिकारियोको भेजकर उसकी सम्पत्तिपर राज्य अपना अधिकार कर ले।[2]

---

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३५।

[2] वणिज:—'देव ! कुबेरस्वामी निष्पुत्र इति तल्लक्ष्मीर्नरेन्द्र गृहानुपतिष्ठते। तवादिश्यतामध्यक्ष: कोऽपियेन तत्परिगृहीते गृह—

मद्य तथा द्यूत भी राज्यकी आयके साधन थे। राजा तथा प्रजा दोनोंमें द्यूतका अत्यधिक प्रचार था। यह राज्यके नियन्त्रणमें होता था। यशपालने लिखा है कि द्यूत तथा मद्यसे राजकोषमें विशाल धनराशि आती थी।[1] वेश्यावृत्ति भी राज्यके निरीक्षणमें होती थी और यह भी राज्यकी आयका साधन थी।[2] खानें, चरागाह तथा जंगल राज्यकी आयके अतिरिक्त साधन थे, जिनसे अच्छी आमदनी होती थी। राजकोषके विचारसे खाने अत्यधिक महत्त्वपूर्ण आयका साधन थी।[3] वनोंसे बहुमूल्य इमारती लकड़ियां प्राप्त होती थी। ओषधिके लिए वनस्पति भी यहींसे मिलती थी और हाथी जो युद्धके महत्त्वपूर्ण साधन थे, वनोंसे ही प्राप्त होते थे। आर्थिक दंड तथा न्यायालय शुल्क भी आयके साधन थे। असाधारण दिनोंमे सम्पन्न उद्योगपतियोंसे बहुमूल्य वस्तुओंकी भेंटादिकी पद्धति भी ग्रहण की जाती थी। फोर्बसने लिखा है तीर्थयात्रियोंसे "कुट" नामक कर भी लिया जाता था।[4] इन विभिन्न साधनोंसे राजकोषमें विशाल धनराशि एकत्र हो जाती थी, इसमें सन्देह नहीं।

न्याय विभाग

देशके शासनमें न्याय विभाग अत्यन्त आवश्यक विभाग था। दिनमें राजा मुकदमे सुना करता था। न्यायालयके द्वारपर सशस्त्र रक्षक रहते

सर्वस्वं करोति महाजनस्त वोर्ध्वदेहकानि ।—मोहराज पराजयः, अंक ३, पृ० ५२।

[1] "....ननुवयं राजकुले द्रव्यं पूरयामः। देव। वयं द्यूतं आंगलको मद्य शेखरो राजकुले प्रभूतं द्रव्यं पूरयामः। वही : चतुर्थ अंक : पृ० १०९-११०।

[2] "वेश्याव्यसनं तु वराकमुपेक्षणीयम्" । : वही।

[3] "आकरो प्रभव कोषः" : अर्थशास्त्र।

[4] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३५।

थे जो अधिकारी व्यक्तिको ही प्रवेश करने देते और अवांछितोंको द्वारपर ही रोक लेते थे। राजाके पार्श्वमें युवराज रहता और चतुर्दिक महामंडलेश्वर तथा सामन्त। मन्त्रीराज या प्रधान भी अपने विभागके अधिकारियों सहित उपस्थित रहा करते थे। ये विचारपूर्वक मितव्ययिताका परामर्श देते रहते थे और प्रस्तुत रहते थे, पूर्वमें किये गये लिखित निर्णयोंको लेकर, जिससे पहले दी हुई आज्ञा अथवा आदेशकी अमान्यता न हो।[1] रासमालामें फोर्वस्ने राजाके न्याय सम्बन्धी कार्योंका जो उक्त उल्लेख किया है, उससे स्पष्ट है कि राजा न्याय सम्बन्धी अपना कर्त्तव्य मन्त्रियोंकी सहायतासे करता था। कुमारपाल प्रतिबोधमें भी राजाके इस महत्त्वपूर्ण कार्यकी चर्चा है। इसमें कहा गया है कि दिवसके चतुर्थ प्रहरमें (लगभग ३ बजे) राजा अपने दरबारमें सिंहासनपर आसीन हो जाता था। इसी समय वह शासन कार्य करता और जनतासे पुनर्वाद सुनकर उनपर अपना निर्णय सुनाता।[2]

कुमारपालके जीवनचरित्र लिखनेवाले विद्वानोंका कथन है कि राजधानी अणहिलपुरमें राजा स्वयं न्याय करता था। किन्तु इस राजकीय सर्वोच्च न्यायालयके अतिरिक्त साधारण अभियोगों तथा मामलोंपर विचार करनेके लिए अन्य साधारण न्यायालय भी अवश्य रहे होंगे। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि अधिष्ठानक, विचारपति था और उसका कर्त्तव्य न्याय विभागसे सम्बद्ध था। ये न्यायालय सम्भवतः दो प्रकारके

---

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

[2] तो राया बुहवग्गं विसज्जिअं दिवस चरम जामम्मि
अत्थाणी मंडव मंडणम्मि सिंहासने ठाइ
सामंत मंति मंडलिय सेट्ठिपमुहाण दंसणं देइ
विन्नत्तीओ तेसिं सुणइ कुणइ तह पडीयारं।
कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४४३।

थे। एक दीवानी और दूसरा सैनिक। अपराधियोका पता लगानेके लिए गुप्तचरोकी नियुक्ति होती थी। मोहराजपराजय नाटकमें तत्कालीन सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितिका सच्चा चित्राकन हुआ है। इसमें दिखाया गया है कि मन्त्री पुडकेतुने जाच पड़ताल तथा सूचना प्राप्तिके निमित्त गुप्तचरकी नियुक्ति की थी और राजा उससे द्युतकुमारको पकड़नेकी आज्ञा देता है।[1]

नियमो तथा शास्त्रोसे न्याय किया जाता था। फोर्वस्ने लिखा है कि मन्त्रीराज अथवा प्रधान अपने कर्मचारियोके साथ, पूर्वकालमें हुए लिखित निर्णयोको लेकर सदा प्रस्तुत रहते थे। इस बातकी ओर भी सदा ध्यान रखा जाता था कि पूर्व निर्णयोंकी अवहेलना न होने पावे। इससे स्पष्ट है कि विवादोका निर्णय करनेके लिए लिखित आधिकारिक अधिनियम बने थे। तत्कालीन साहित्यमे प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दोंसे भी अपराधोंके दडका स्वरूप समझा जा सकता है। कारागार, निर्वासन आदि ऐसे पारिभाषिक शब्द है।[2] मोहराजपराजय नाटकमे कुमारपाल ससारको शृखलामे बद्ध करनेकी आज्ञा देता है। चौर्य कर्म करनेपर कठिन दंड दिया जाता था। गभीर अपराधोके लिए निष्कासनका दड नियत था। उक्त नाटकमे धर्मकुजर कुमारपालकी आज्ञा पाकर द्यूत और उसकी पत्नी असत्या कांडली, मद्य, जागलक, सून तथा मारिकी खोजमे जाता है। ये सभी राजाके धर्म परिवर्तनकी चर्चा करते हुए अपने निष्कासनकी अफवाहका भी उल्लेख करते है। धर्मकुजर इन सभीको पकडकर राजाके सम्मुख उपस्थित करता है। सभी अपने अपने पक्ष समर्थनका तर्क उपस्थित करते हैं और क्षमा याचना करते है। राजा उनकी एक

[1] मोहराजपराजय : चतुर्थ अंक, पृ० ८३।

[2] मोहराजपराजय : अक ४, पृ० ८२ एनं तत्वत्कारागार निगडितं कुरु।

नही सुनता हूं और सभीके निष्कासनकी आज्ञा देता है।[1] मृत्युदंड भी दिया जाता था। शिलालेख इस तथ्यको प्रमाणित करते हैं कि राजाज्ञा उल्लघन करनेपर मृत्युदंड दिया जाता था। विक्रम सवत् १२०९के कुमारपालके किराडू शिलालेखमें कहा गया है कि शिवरात्रिके विशेष दिन जीवहिंसाके अपराधके लिए साधारण लोगोको मृत्युदड दिया जाता था और राजपरिवारके सदस्योको अर्थदड देना पडता था।[2] इन सभी साधनोंसे निस्सन्देह कहा जा सकता है कि चौलुक्य राजाओने न्याय विभागका व्यवस्थित सघटन किया था और उसीके द्वारा प्रजाके निमित्त न्याय कार्य संपादित किया जाता था।

जन निर्माण विभाग

जनसेवाका कार्य सरकार अपने जननिर्माण विभाग द्वारा कार्यान्वित कराती थी। राजा केवल कर ही नही वसूलता था अपितु प्रजाका हित चिन्तन भी उसके कर्तव्यका एक अग था। राज्यको जल तथा स्थल मार्गसे अच्छे यातायातकी व्यवस्था करनी पडती थी। तालाब और कुओका निर्माण मुख्यतः दो विचारोंसे होता था। एक तो यात्रियोकी सुख-सुविधाका ध्यान रखकर और दूसरे सिंचाईके विचारसे। मोढेरा, सिहोर तथा अन्य स्थानोमे जल सचित कर रखे जानेकी व्यवस्था थी। मोढेराके निकट ही लोटेश्वरमें यूनानी क्रास मुद्राकी भाति चार छोटे कुडोके मध्य एक गोल कुआं बडा ही विचित्र है। जूजूवारा, मुजपुर, स्येलामें

---

[1] वही, पृ० ८३-११०।

[2] . . जा चय्यतिक्रम्य जीवानां वधं कारयति करोति वासव्याया . . कोपिपापिष्ठत रोजीव वधं कुरुते तदा समंचन्द्रमैर्दंडनीय.... नाहराज्ञि कस्यंको द्रम्मोस्ति। स्वहस्तोयं महाराज श्रीअल्हणदेवस्य.... : इपि० इंडि० खंड ११, पृ० ४४।

गोल आकारमें तालाब मिलते हैं। इन तालाबोंमें अनेककी गोलाई सात सौ गज थी। इनके चतुर्दिक छोटे-छोटे मन्दिर बने रहते थे और इसमे कोई आश्चर्य नही कि इनकी सख्या लगभग एक हजार थी।[1] प्रायद्वीपके निकट गोमोमें अब तक एक आयताकार तालाब है जिसका ध्वंसावशेष अब वर्गाकारकी तरह है। यह सिद्धराज जयसिंहका बनवाया हुआ कहा जाता है। इसका नाम "सोनेरिया तालाब" है। जयसिंहकी माता मीनलदेवीके सरक्षणकालमे दो प्रसिद्ध तालाब बने थे। इनमे एक धोलकामें "मुलाव" है तथा दूसरा वीरक्यमगावमे "मानसूर" है। "मानसूर" तालाबकी रचना शखाकारमें हुई है। समरभूमिमें भारतीयोंके रणवाद्य शंखके आकारमें ही इसका निर्माण हुआ है। इसमें जल संचयकी भी वैज्ञानिक पद्धति है। इसमे चारो ओरके प्रदेशका जल पहले गहरे अष्ट-कोणाकार तालावमें एकत्र होता था। यहा जलका मिश्रित पदार्थ जम जाता था। फिर पानी एक नाली द्वारा प्रवाहित होकर तालाबमे जाता था।

देशके विभिन्न भागोंमे इस कालके जितने कुए मिलते हैं, वे दो प्रकारके है। एक तो गोलाईके आकारमे बने है और उनमें कई खड तक आवास योग्य स्थान बने है। दूसरे प्रकारके कुए "बावली"के रूपमे निर्मित है। ये बावलिया जिनका सस्कृत रूप "वापिका" है, अत्यन्त भव्य बनी हुई है। कुए और तालाबोका निर्माण-निमित्त प्यासे जीवोकी तृषा शान्त करता था। साथ ही पारलौकिक दृष्टि भी इसमें सम्मिलित थी। पशु-पक्षियो और चौरासी लाख जीवोके लिए इनका निर्माण हुआ था।[2] ये कुए और तालाब प्रायः उन्ही स्थलोंमें मिलते है जहा जलकी कमी रहती थी। उदाहरणार्थ राणिक देवीने पट्टनवारा स्थानको ऐसा जलकी कमी-

---

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २४५।

[2] वही, पृ० २४७।

वाला क्षेत्र बताया है, जहा पशु-पक्षी जलके अभावमें मरते थे। यातायातके केन्द्रों, नगर द्वारों, चौराहोंपर भी कुए तथा वापिका निर्माण होता था। यह कोई असंगत बात नही कि आवश्यकता पडनेपर जलके इन संग्रह स्थलोंसे सिंचाईका भी कार्य होता होगा।

कुमारपालप्रतिबोधसे विदित होता है कि कुमारपालने असहायो तथा जैन-आराधकोके लिए भोजन वस्त्र प्रदान करनेके लिए सत्रागारकी स्थापना की थी। इसीके निकट उसने धार्मिक व्यक्तियोकी साधनाके लिए एक पोषधशालाका भी निर्माण कराया था। इन दातव्य संस्थाओंकी व्यवस्था नेमिनागके पुत्र सेठ अभयकुमार द्वारा होती थी।[1] इन सस्थाओंके व्यवस्थापनके निमित्त ऐसे योग्य व्यक्तिके निर्वाचन तथा नियुक्तिके कारण कवि सिद्धपालने कुमारपालकी प्रशसा की थी।[2] इन प्रसगो और उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि कुमारपालके शासनकालमे निर्धन, असहायोके लिए जनहित सम्पादन करनेवाला विभाग अवश्य ही विद्यमान रहा होगा। राज्य

---

[1] अह करावइ राया कण कोट्ठागार धय धरोवेयं
सत्तागारं गरुयाइ भूसियं भोयण सहाए।
तस्सासने रम्रा कारविया विपइ तुंग वरसाला
जिण धम्म हत्थि साला पोसह साला अइ विसाला
तत्थ सिरिमाल कुल नह निसि नाहो नेमिणाय
अंगरुहो अभयकुमारो सेट्ठीकओ अहिट्ठायगो रम्रा।
कुमारपालप्रतिबोध : अध्याय १३, पृ० २४७।

[2] क्षिप्त्वा तोय निधिस्तले मणिगणं रत्नोत्करं रोहणो,
रेवाऽऽवृत्य सुवर्णमात्मनि वृढं बद्ध्वा सुवर्णाचलः
क्षामध्ये च धनं निधाय धनदो बिभ्यत्परेभ्यः स्थितः
किं स्यात्तैः कृपणैः समोऽयमखिलार्थिभ्यः स्वमर्थं ददत्।
वही।

द्वारा निर्मित तालाब और कुएं मानवताकी दृष्टिके साथ ही सिंचाईके निमित्त भी बनवाये जाते थे। सत्रागारोंकी स्थापनासे प्रकट होता है कि राज्यमें लोककल्याणकारी समाजवादी प्रवृत्ति भी विद्यमान थी। बाढ, अग्नि, महामारी आदिके प्रकोपोंका सामना करनेके लिए राजकीय व्यवस्था निश्चित रूपसे रही होगी, इसमें सन्देह नही।

सेना विभाग

सेना विभाग द्वारा ही राजा आन्तरिक उपद्रवो तथा बाह्य अक्रमणोंसे देशकी रक्षा करता था। सैनिक विभागकी समुचित व्यवस्थाका महत्त्व उस समय बहुत अधिक हो गया था जब मुसलिम आक्रमणका संकट उत्पन्न हो गया था। सेना प्राचीनकालकी भाति चतुरगिणी थी। इस बातके स्पष्ट प्रमाण मिलते है कि कुमारपालके शासनकालमे सैनिक सघटन पूर्णरूपेण व्यवस्थित था। उस समय पैदल, घुडसवार, हाथियो तथा रथ सेनाके विद्यमान होनेके प्रमाण मिलते है।[1] राजप्रासादके निकट चतुर्दिक विशाल भवनोमें शस्त्रागार था, वही हस्तिसेना रहती थी। इन्ही भवनोमे अश्वों तथा रथोके रहने तथा रखनेका भी प्रबन्ध था।[2] सेनामे हाथीका विशेष महत्त्व था। कुमारपालने जिन सैनिक अभियानो-

[1] श्रीमान कुमारपालोऽपि ज्ञात्वेति प्रणिधिव्रजैः। अवीकिनीं निजां हाममानाद्यैः सम पूजयत्। गजानां प्रतिमानानि शृंखलान् मुकुरांस्तथा। अश्वाना कविका वल्गा दाम पल्ययनानि च रथानां किंकणीजाल चक्रांग युगशम्बिकाः। योधानां हस्तिका वीरवल यानि च चन्द्रकान्। सुवर्ण रत्न माणिक्य सूचीमुखमयान्यपि। चतुरंगेऽपि सैन्येऽसौ भूषणानि ददौ मुदा।

प्रभावकचरित, अध्याय २२, पृ० २०१।

[2] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३९।

का नेतृत्व स्वयं किया था तथा जिनका नेतृत्व उसके आदेशपर उसके सेनापतियोने किया था, दोनोंमे हाथीका वर्णन विशेष विवरण सहित प्राप्त होता है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि युद्धमे सफलता या विफलता अत्यधिक अंशोमे इन्ही हाथियोपर निर्भर करती थी।[1] गुजरातके सभी किलोंमें राजाकी सेना रहती थी। सीमान्त प्रदेशके कुछ किलोंमे सामरिक महत्त्वके कारण सेना रखी जाती थी। इस प्रकारके सैनिक किले दुवोई तथा भ्रुनभूवारामे स्थित थे। सेनामे मुख्यतः क्षत्रिय ही रहते थे। किन्तु चौलुक्योके शासनकालमे एक विशेष एवं विचित्र स्थिति दृष्टिगत होती है। वह यह कि इस समय सेनामें वणिक भी उच्च सैनिक पदोपर नियुक्त थे। उदयन तथा उसके पुत्र सेनापतिके पदपर थे। सैनिक विभागमें क्रमिक पद व्यवस्था थी। सामन्त सैनिक अधिकारी होते थे। कहा जाता है कि सिद्धराजने अपने परिवारके एक सदस्यको सौ घोडोकी सामन्तशाही प्रदान की थी। जब कुमारपाल अणोके विरुद्ध युद्धमे गया था तो उसकी सेनामें बीस और तीसकी सामन्तशाहीके सैनिक भी उपस्थित थे। इन्हे महाभूत कहा जाता था। एक सहस्रकी सामन्ती रखनेवालेको "भूतराज" कहते थे। इससे भी उच्च अधिकारी "छत्रपति" तथा नौबत रखनेवाले कहे जाते थे। इन्हे छत्र और वाद्य व्यवहार करनेकी आज्ञा थी। यह हम देख चुके है कि बहुतसे उच्च सैनिक पदाधिकारी वणिक थे। उदाहरणार्थ कुजराज तथा सुज्जनके मित्र जाम्ब थे, इनके उत्तराधिकारी मुजाल जयसिंह सिद्धराजके सेवक थे। कुमारपालके शासनकालमे उदयन तथा उसके पुत्र उच्च सैनिक पदोपर नियुक्त थे। ऐसे सेनापति जो नियमित सेनाके अन्तर्गत न होकर भी समय-समय सैनिक सेवा करते थे, मुख्यत. बाहरी प्रदेशोके प्रधान होते थे। यथा "कुलीयन"के

---

[1] प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० २०१ तथा प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७९।

राजा तथा राठौर समाजी। राजपूत तथा पैदल सैनिकोकी ऐसी चर्चा आयी है, जिससे प्रकट होता है कि राजपूत निश्चित रूपसे पैदल सेनाके प्रतीक थे।[1] प्रबन्धचिन्तामणिके रचयिता मेरुतुंगका कथन है कि कुमारपालने अपनी सेनाके विभिन्न विभागो तथा अधीनस्थोको बुलवाया तथा उन्हे मल्लिकार्जुनके विरुद्ध आक्रमणके लिए भेजा।[2] यह तथ्य बताता है कि कुमारपालके शासनकालमे सेनाके सभी विभाग पूर्णतः सुसघटित थे।

कुमारपालचरित्र,[3] प्रबन्धचिन्तामणि[4] तथा प्रभावकचरित[5]के विवरणोंसे युद्धभूमिकी गतिविधिका सुस्पष्ट चित्र हमारे सम्मुख आ उपस्थित होता है। किसप्रकार किलेपर आक्रमण किया जाता था, सैनिक सघटनकी पद्धति क्या थी, राजधानीपर आक्रमणका ढग, शत्रुका प्रतिरोध, भीषण युद्ध, खाद्य तथा ईंधनकी कमी आदि सभी बातोका उल्लेख आया है। सेना दडाधिपति तथा दडनायकके अधीन रहती थी। कभी-कभी राजा, सेनाके सर्वोच्च सेनापतिकी हैसियतसे स्वय समरभूमिमे सैनिकोका नेतृत्व करता था।[6] चौलुक्योंके समय प्राय. युद्ध हुआ करते थे, इससे यह समझना अनुचित न होगा कि उनके पास विशाल सेना थी। शत्रु पक्षकी शक्ति तथा उनकी गतिविधिका पता लगानेके लिए गुप्तचर नियुक्त किये

---

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३३-२३४।

[2] "तद् विज्ञप्ति समनन्तरमेव तं नृपं प्रति प्रमाणाय दल्लनायकी कृत्य पंचांग प्रसाद दत्वा समस्त सामन्तैः समं विससर्ज"। प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ८०।

[3] द्वयाश्रय काव्य : सर्ग ४, श्लोक ४२:९४।

[4] प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७९-८०।

[5] प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० २०१।

[6] प्रबन्धचिन्तामणि, चतुर्थ प्रकाश, पृ० ७९।

जाते थे। मोहराजपराजयमें कुमारपालके मन्त्रीने धर्मकुजरको इस निमित्त नियुक्त किया।[1]

चौलुक्य राजाओंका महान उद्देश्य आदर्श राजा विक्रमादित्यका अनुगमनकर आन्तरिक उपद्रवो एव वाह्य आक्रमणोसे अपनी प्रजाका रक्षण तथा चतुर्दिकके राज्योको अधीनस्थ कर अपनी राज्य-सीमाका विस्तार करना था। ये सैनिक अभियान विजय यात्राके नामसे सम्बोधित किये जाते थे। कभी-कभी तात्कालिक कारणोसे भी युद्ध घोषित होते थे। यथा जब गृहरिपुके विरुद्ध धार्मिक युद्ध प्रचारित किया गया अथवा जब यशोवर्मनके कार्योंसे सिद्धराज क्रोधित हुए थे। इतना होते हुए भी सघर्षका उद्देश्य वही रहता था। यदि शत्रु अपने मुखमें तृण रखकर 'कर' देनेके लिए प्रस्तुत हो जाता तो विजेता इतने ही से सन्तुष्ट हो जाता था। वे विजित प्रदेशपर स्थायी अधिकारका कभी प्रयत्न न करते। विजयका अर्थ होता था वार्षिक आयमेंसे एक अशकी प्राप्ति। यह कर जिस प्रकार-से किसानोसे एकत्र किया जाता था, उसी प्रकार विदेशी राजाओंके प्रदेशो-पर आक्रमणकर प्राप्त किया जाता था। वृणराजके वशजोने कच्छ, सोरपेठ, उत्तरी कोकण, मालवा, झालोर तथा अन्य प्रदेशोपर अनेकानेक आक्रमण किये किन्तु उन राज्योके मूल शासकोका मूलोच्छेद कर उन्हे अपने स्थायी अधिकारमे नही किया। मूलराजने गृहरिपुको पराजित किया और लक्षको तलवारके घाट उतार भी दिया किन्तु झारेगा तथा यदुवशका मूलोच्छेद नही किया। इसी प्रकार यशोवर्माको जयसिंह सिद्धराजने युद्धमे पराजित किया था, फिर भी अनेक वर्षोंके पश्चात् मालवाके अर्जुनदेवने पुन गुजरातपर हमला किया।

---

[1] एषपुण्यकेतुमन्त्रिणा विपक्षं पुरुषगवेषणार्थं नियुक्तो नित्यमप्रमतः परिभ्रमति धर्मकुंजरोनाम वांडपालिकः—मोहराजपराजय, अंक ४, पृ० ७८।

सपादलक्षमें (शाकम्भरी-साभर प्रदेश) अनहिलवाड़ेके शासकोकी विजय पताका फहराती थी, किन्तु फिर भी अजमेरके नरेश वृणराजके वंशजोके सदा विरोधी और प्रतियोगी बने रहे। इस वृतिका अन्त उसी समय हुआ जब चौहान तथा सोलकी दोनो ही शक्तिया यवन आक्रमकोंसे समान रूपसे पराजित हुईं।[1]

परराष्ट्र नीति तथा कूटनीतिक सम्बन्ध

शक्तिशाली चौलुक्य राजाओका प्रतिनिधित्व निकटस्थ राज्योमे उनके कूटनीतिक दूत करते थे। ये दूत सान्धिविग्रहीक कहे जाते थे। इनका कार्य अपनी सरकारको विदेशमे होनेवाले घटनाचक्रोसे परिचित रखना था। इस कार्यमे उन्हे स्थान-पुरुषो अथवा उसी देशके लोगो या गुप्तचरोंसे सहायता मिलती थी। वाराणसीके राजाने सिद्धराजके सान्धि-विग्रहकसे अणहिलपुरके मन्दिरो, कुओ तथा तालाबोके आकार-प्रकारके सम्बन्धमे प्रश्नकर उपालम किया था।[2] एक समय सपादलक्ष देशसे कुमारपालके राजदरबारमे एक दूत आया। राजाने उससे साभर नरेशकी कुशलता और सम्पन्नताके सम्बन्धमे पूछा। इसपर उक्त राजदूतने कहा उनका नाम "विशवल" ससारको धारण करनेवाला है। उनके सदा सम्पन्न होनेमें भला क्या सन्देह है। कुमारपालके पार्श्वमें विद्वान कवि कपर्दी मन्त्री उपस्थित था। उसने कहा "शल" तथा "श्यूल" धातुका अर्थ होता है "शीघ्र जाना"। इसप्रकार विशवल वह है जो चिड़ियाकी भांति शीघ्र उड जाय। इसके वाद जव राजदूत स्वदेश लौटा तो उसने बताया कि राजाकी उपाधिके प्रति कैसा असम्मान प्रकट किया गया। इसपर वहाके राजाने विग्रहराजकी उपाधि ग्रहण की। दूसरे वर्ष वही

---

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३४-२३५।

[2] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २४७।

दूत विग्रहराजकी ओरसे कुमारपालके दरबारमे उपस्थित हुआ ; इस वर्ष पुनः कपर्दीने अर्थ विश्लेषण कर समझाया कि उक्त नामका अर्थ हुआ शब्द न करनेवाले शिव और ब्रह्मा। वी अर्थात् विशा, ग्र अर्थात् शब्द, हर अर्थात् शिव और अज अर्थात् ब्रह्मा। बादमें कपर्दी द्वारा अपने नामका हास्य न होने देनेके लिए राजाने "कवि वान्धव" नाम रखा।[1] ये कथाएं स्पष्ट बताती है कि पडोसी राज्योके साथ कुमारपालका कूट-नीतिक दौत्य सम्बन्ध भी था। किन्तु इसका आधार साधारणतः प्रभुशक्ति तथा अधीनस्थ राज्योके मध्य था। अपने समकालीन राजाओसे कुमारपाल-का कैसा सम्बन्ध था, इसका विवरण हेमचन्द्रने द्वयाश्रय काव्यमे दिया है।[2]

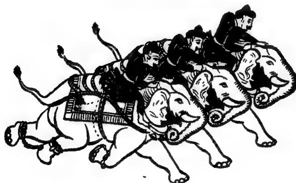
इस समय मडल सिद्धान्तकी राज्यनीति व्यवहारमे नही दृष्टगत होती। प्रत्येक राज्य एक दूसरेसे युद्ध करनेमे व्यस्त था। छोटे-छोटे राज्य उस गृहका दृश्य उपस्थित करते थे, जिन्होने स्वय अपने विरुद्ध विनाशक नीतिको ग्रहण कर लिया था। परराष्ट्रनीतिमें न कोई एकता भावना थी और न कोई साम्य ही। ये ऐसे अदूरदर्शी थे कि विदेशी आक्र-मण तथा अन्तमे विनाशके सकट तकको समझ ही न पाते थे। यदाकदा सैनिक सन्धि द्वारा एकताका प्रयत्न होता, किन्तु व्यक्तिगत स्वार्थ भावना-के कारण वह भी विफल हो जाता। सीमान्त सम्बन्धी नीतिके महत्त्वको वे ठीक-ठीक नही समझ सके और इसीके फलस्वरूप विदेशी आक्रामक बिना किसी प्रतिरोधके देशके भीतरी भाग तक पहुच जाता था। चौलुक्यों-की शक्ति इतनी प्रबल थी, किन्तु फिर भी वे उपयुक्त परराष्ट्रनीति कार्यान्वित न कर सके। सीमान्तपर किलोमे राज्य सेना रहती थी। पर वह विदेशी आक्रमणोके रोकनेमे समर्थ नही हो सकती थी। सम्भवतः उसकी उपयोगिता पडोसी राज्योपर प्रभुत्वमात्रके लिए समझी जाती

---

[1] वही, अध्याय ११, पृ० १९०।

[2] द्वयाश्रय काव्य : सर्ग ४, श्लोक ७१, ९४।

थी। शत्रु जब द्वारपर आ जाता था, तब हिन्दू राजा रक्षात्मक तैयारियां प्रारम्भ करते थे। इसीलिए आक्रमणात्मक होनेकी अपेक्षा वे प्राय: आक्रमणसे अपनी रक्षामात्र करते थे। हिन्दू राजाओंकी विदेशी नीति इतनी संकीर्ण हो गयी थी कि यद्यपि सपादलक्षमें अनहिलवाडेके राजाकी विजय पताका फहराती थी फिर भी अजमेरके राजे वुणराजके वंशजोंसे उस समय तक खतरनाक प्रतियोगिता करते रहे जब तक चौहान और सोलंकी दोनों ही यवन आक्रमणसे पराजित तथा पददलित न हो गये। कुमारपालके समयमें चौलुक्योंकी राज्यसीमाका विस्तार अपनी पराकाष्ठाको अवश्य पहुंच गया था, किन्तु उसकी साम्राज्यविषयक नीति, आक्रमणात्मक न होकर रक्षणात्मक थी। शाकम्भरी, मालवा, और सुदूरदक्षिणमें कोंकण नरेशोंसे उसे बाध्य होकर ही युद्ध करने पड़े। किन्तु इनका उद्देश्य साम्राज्यविस्तार न होकर सिद्धराज जयसिंह द्वारा छोड़े गये चौलुक्य साम्राज्यकी रक्षा था।




आर्थिक और
सामाजिक व्यवस्था

देशकी तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक अवस्थाका वास्तविक चित्रण समसामयिक नाटक "मोहराजपराजय"में सम्यकरूपेण मिलता है। इसके अतिरिक्त हेमचन्द्र, मेरुतुग तथा सोमप्रभाचार्यकी रचनाओमे भी इस कालके सामाजिक और आर्थिक जीवनकी प्रामाणिक तथा वास्तविक झाकी देखनेको मिलती है।

समाज चार वर्णोंमे विभक्त था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। जातीयताकी भावना सकुचित होती जा रही थी और वश परम्परागत हो रही थी। समाजमे ब्राह्मणोका सबसे उच्च स्थान था और राजा और प्रजा सभी समान रूपसे उनका आदर करते थे। चौलुक्योके शासन-कालमे ब्राह्मणोने देशके राजनीतिक तथा धार्मिक जीवनको विशेष रूपसे प्रभावान्वित किया था। मन्दिरोके लिए बहुतसे दानपत्र लिखे गये थे, जिनके पुजारी ब्राह्मण ही होते थे।[1] इनमेसे चार ब्राह्मण परिवार कन्नौज तथा उज्जयिनीके बडे मठसे आये थे और इन्होने भी गुजरातमे उसी प्रकारके मठोंकी स्थापना की। इसकालके बहुत पहले जो उज्जयिनी शैव मतकी केन्द्र थी अब महाकाल, पाशुपत, आमर्दक, कापाला मतके शैवोंकी आदिभूमि बन गयी। ये शैव—गुजरात, काठियावाड़ तथा आबू स्थित शिवमन्दिरोके मुख्य पुजारी हो गये।[2]

---

[1] आर्क० सर्वे० इंडिया, वे० स०, १९०७-८, पृ० ५४-५५।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २०६।

समाजमें दूसरा स्थान क्षत्रियोंका था जो शासक वर्गके थे और जिनका आदर ब्राह्मणोंके बाद ही दूसरे क्रममे किया जाता था। ये शस्त्र चलाना जानते थे और इनका मुख्य धन्धा युद्ध करना था। राजाके साथ रणभूमिमें राजपूत जातिके योद्धा भी उपस्थित रहते थे। फोर्वस्ने इनका जो वर्णन किया है इससे इनके स्वरूपका सम्यक् बोध हो जाता है। उसने लिखा है कि भाला और तलवार उसकी विशाल भुजाओंमें सुशोभित होता था। समरभूमिमें उसके नेत्र क्रोधसे आरक्त हो जाते थे। उसके कानके लिए रणनिनादका स्वर उतना ही परिचित था जितना राजमहलके सुमधुर वाद्योंकी ध्वनि का। वह शस्त्रधारी व्यक्ति होता था और अभिषक्त प्रधान भी।[1] राज्यके शासन तथा सैनिक दोनो विभागोमें ये महत्त्वपूर्ण उच्च पदोंपर नियुक्त होते थे। प्राय. सभी राजपूत घरोंके प्रधान बडी-बडी भूमिके स्वामी थे। इनमेंसे कुछ सामन्त अथवा सैनिक अधिकारी थे, तो कुछ सेनामे सैनिकके रूपमे भी थे। राजपूत तथा पैदल सैनिकोंकी इसप्रकार चर्चा की गयी है जैसे वे निश्चित रूपसे पदाति सेनाके अन्तर्गत हो।[2] इसप्रकार राजपूत भूमिके स्वामी तथा राज्यमे कुलीनतन्त्रके प्रतिनिधि थे। इनका मुख्य कार्य, सेना तथा प्रशासनमे योगदान देना था।

इस समय गुजरातमे वैश्य भी समाजके बहुत महत्त्वपूर्ण अग माने जाते थे। उद्योग और व्यवसाय ही उनका मुख्य धन्धा था। राजधानी अनहिलवाडेके वणिक बहुत ही सम्पन्न थे। नगरमे अनेकानेक लक्षाधिपति थे और कोटिश्वरोंके भव्य भवनोपर ऊची पताकाए तथा घटे टगे रहते थे। उनका वैभव पूर्णत. राजकीय वैभवके समान लगता था। उनके पास हाथी, घोडे थे और उन्होने सत्रागारोंकी भी व्यवस्था की थी।

---

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३०-२३१।

[2] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३४।

व्यापारी पोतोंसे विदेशी समुद्रमें जाकर व्यापार द्वारा विशाल धनराशि अर्जित करते थे।[1]

चौथा और अन्तिम वर्ण शूद्रोका था। ये मुख्यतः खेतीमें लगे थे। धरती माताके इन पुत्रोंकी आवाज सरकारमें नही थी। सामाजिक ढाचेमें वे सबसे निम्नतम जातिके माने जाते थे। इसी वर्णके अन्तर्गत उस जातिके लोग भी थे जिनका काम श्रम करना था और जिनका आर्थिक स्तर अत्यन्त निम्न था। एक सुदृढ सामाजिक ढांचेका स्वरूप विलुप्त हो गया था। धन्धेमें परिवर्तन सम्भव था किन्तु इसके लिए जाति परिवर्तनकी आवश्यकता न थी। मुसलिम आक्रमणोके फलस्वरूप विदेशी तत्त्वोका आत्मीयकरण त्याग दिया गया था और जातीय भावना अत्यन्त दृढ हो गयी थी।

चारो वर्ण अथवा जातियोका पारस्परिक सम्बन्ध था। ब्राह्मण शिक्षक और प्रचारक थे। क्षत्रिय शासन कार्य और देशकी रक्षा करते थे। वैश्य अपने उद्योग एवं व्यवसाय द्वारा देशको सम्पन्न बनाते थे और शूद्र कृषि तथा अन्य शारीरिक श्रमका कार्य करते थे। इसप्रकार समाज-की भावना अविच्छेद्य और परस्पर सहयोगी सघटनकी भाति थी। किन्तु इस समय समाजका उक्त आदर्शवादी स्वरूप, व्यवहारमें दृष्टिगत न होता था। अनहिलवाडेमे ब्राह्मणो, राजपूतो तथा वैश्योंमें राजनीतिक प्रभुत्वके लिए प्रतियोगिता होती थी। समाजके इस स्वरूपको समझनेके लिए उनके विस्तृत इतिहाससे परिचित होना आवश्यक है।

ब्राह्मणोंकी बस्तिया

आधुनिक गुजरातमे ब्राह्मणोकी विभिन्न जातियोकी प्रधानताका परिचय शिलालेखो द्वारा मिलता है। कनौजिया, वडनागरा, सिहोरिया ब्राह्मण प्राचीनकालमें कान्यकुब्ज, आनन्दपुरा तथा सिहोरसे आये

[1] मोहराजपराजय, पृ० १०।

थे।[1] एक राष्टकूट अभिलेखसे इस प्रकारके आगमनका निश्चित रूपसे पता लगता है।[2] इसमें मोटाकाको ब्राह्मण स्थान कहा गया है। इनथोवनका कथन है कि मोटाका ब्राह्मण इस स्थानमें पाये जाते थे। उसका यह भी अनुमान था कि चौदहवी शताब्दीमें ये गुजरातमें आये।[3] किन्तु राष्ट्रकूटोके अनेक विवरणोसे विदित होता है कि "मोटाका" ब्राह्मण नौवी शतीमें भी गुजरातमे थे। बहुत सम्भव है कि राष्ट्रकूटोके अधिकारके दिनोमे ये दक्षिणसे आये हो। इनथोवनका कथन है कि ये सम्भवतः देशस्थ थे।[4]

एक परमार अभिलेखसे नागर ब्राह्मणोकी प्राचीनता दो शताब्दी पूर्व तक जाती है।[5] इसमे आनन्दपुरके ब्राह्मणोको नागर कहा गया है। वडनगर प्रशस्तिमे बादमे उक्त स्थानको द्विजमहासना तथा विप्रपुर कहा गया है।[6] मोढ ब्राह्मण विभिन्न शासन विभागोमे सर्वप्रथम काम करते हुए दिखायी पडते है, विशेषकर ये महाक्षपटलिकके पदपर थे।[7]

---

[1] सिहोर (सिंहपुर) ब्राह्मणोंको वल्लभी कालमें संरक्षण प्राप्त हुआ था, किन्तु सिद्धराज जयसिंहने इन्हें बहुत बड़ी संख्यामें बसाया था। देखिये हेमचन्द्र कृत द्वयाश्रय, सर्ग १५, पृ० २४७।

[2] भडौंचके ध्रुव त्रितीयका दानलेख, इंडि० ऐंटी० खंड १२, पृ० १७९।

[3] कास्टस् एंड ट्राइबस आव गुजरात : खंड १, पृ० २३४।

[4] वही।

[5] आनन्दपुरके एक नागर ब्राह्मणको मोहडवासक विषयके दो ग्राम, कुम्भरोतक तथा शिहाका, सियाकट द्वारा दिये गये थे। —इपि० इंडि० खंड १९, पृ० २३६।

[6] इपि० इंडि० : खंड १, पृ० २९३-३०५ तथा इंडि० ऐंटी० खंड १०, पृ० १६०।

[7] इनथोवन : ओ० सी० १, पृष्ठ २३८।

मूलराजने ब्राह्मणोंको श्रीस्थलपुर, गाय, स्वर्ण, रत्नादिके हारोसे युक्त रथो सहित प्रदान किया था। उसने सिंहपुरकी सुन्दर तथा सम्पन्न नगरी अन्यान्य भेटों सहित दस ब्राह्मणोको दी थी। सिद्धपुर और सिहोरके निकट उसने बहुतसे ब्राह्मणोको छोटे-छोटे गाव दिये थे। उसने स्तम्भ-तीर्थ छ: सभातियोको साठ घोडो सहित दिया।[1] औदीच्य ब्राह्मणोंको, जो उदीच्य (उत्तर)से आये थे, कहा जाता है कि मूलराजने इन्हे उत्तरसे आमन्त्रितकर काठियावाड़ तथा गुजरातमे अनेक ग्राम दिये। इस सम्बन्धमें शिलालेख, दानलेख तथा जो अभिलेख प्राप्त हुए है, उनसे इनकी विशेष पुष्टि नही होती।[2] एक शिलालेखमे "उदीच्य ब्राह्मण"का उल्लेख आया है।[3] बहुत सम्भव है कि कन्नौज तथा मालवासे आये ब्राह्मण ही औदीच्य कहे जाते रहे हो। शिलालेखादिसे यह नही विदित होता कि चौलुक्योके समय गुजरातमे उत्तरके ब्राह्मण आकर बसे हो।[4]

इन विवरणों तथा प्रमाणोंसे इतना तो अवश्य ही स्पष्ट हो जाता है कि चौलुक्य राजाओंके शासनकालमे बडी सख्यामे ब्राह्मणोको राज-सरक्षण प्राप्त हुआ था। इनकी गतिविधि धार्मिक कृत्यो तक ही सीमित न थी अपितु ये शासनविभागमे भी उत्तरदायी पदोपर कार्यकर राजाको प्रभावित करते थे।

ब्राह्मणवादका पुनरोदय

यह प्रश्न करना स्वाभाविक ही है कि ब्राह्मणोको इसप्रकारका राज्य-

---

[1] रासमाला : अध्याय ४, पृ० ६४-६५।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात, अध्याय १०, पृ० २०८।

[3] जर्नल आव बम्बई बड़ोदा रायल एशियाटिक सोसायटी १९००, अतिरिक्त अंक, ४९।

[4] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २०८।

संरक्षण क्यों प्रदान किया गया था? सभी राजवशोंके शिलालेखोमे इस बातका उल्लेख किया गया है कि ब्राह्मणोको दान देनेसे पुण्यकी प्राप्ति होती है। उन्हे दानादि देनेका दूसरा कारण था उनको "पंचमहायज्ञ" सम्पन्न करनेमें सहायता देना। पंचमहायज्ञ दैनिक यज्ञ थे। इसके अन्तर्गत पितृयज्ञ, अग्निहोत्र, आथितेययज्ञ और विश्वेदेवा यज्ञ किये जाते थे। त्रैकुटक अभिलेखोंमे ब्राह्मणोके कार्योंके विषयमें कुछ नही कहा गया है। काटकूरी, गुर्जर तथा अन्य कतिपय चौलुक्य अभिलेखोमें इस बातका उल्लेख मिलता है कि ब्राह्मणोको ये दान पचमहायज्ञोके लिए प्रदान किये गये थे। तीनके अतिरिक्त सभी राष्ट्रकूट दानलेखोमे भी उक्त उद्देश्य ही बताये गये है। इन तीनोमें दो तो ब्रह्मदेवोको बिना किसी उद्देश्य विशेषके दान दिया गया है। तृतीयमें, जो गोविन्द चतुर्थका है, साधारण यज्ञोके अतिरिक्त दार्श, पौर्णमास, राजसूय, वाजपेय, अग्निस्तोम यज्ञोके सम्पन्न करनेका भी उल्लेख मिलता है।[1] गुजरातके अभिलेखोंमे यह प्रथम अवसर है, जब इन वैदिक यज्ञोका उल्लेख हुआ है।[2]

फोर्बस्ने भी इन यज्ञोका उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि मूलराजने पवित्र ब्राह्मण परिवारोका स्वागत किया। उत्तरी पर्वतो, तीर्थस्थानो, वनो, आदिसे मूलराजने इन्हे आमन्त्रित किया था। ये ऋषि सन्तान वेदोमे पारगत थे। इनमेसे एक सौ पाच गगा-यमुनाके सगम स्थलसे आये थे।[3] च्वनाश्रमसे सामवेदका पाठ करनेवाले सौ ब्राह्मण, दो सौ कान्यकुब्जसे तथा सूर्यकी भांति प्रकाशमान सौ ब्राह्मण वाराणसीसे गये थे। इनके अतिरिक्त दो सौ ब्राह्मण गगद्वार तथा एक सौ नैमिषारण्यसे आये थे। कुरुक्षेत्रसे भी राजाने एक सौ तैंतिस

---

[1] इपि० इंडि० : खंड ७, पृ० २६।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात, अध्याय १०, पृ० २०९।

[3] प्रयागसे जहां गंगा यमुना मिलती है।

ब्राह्मणोको आमन्त्रित किया था। ये ब्राह्मण-समूह जब यज्ञ करते थे तो आकाश यज्ञधूमसे आच्छादित हो जाता था।[1]

ये यज्ञादि प्राचीन तथा मध्यकालीन गुजरातमे यदि नियमित रूपसे न होते थे तो शान्ति तथा सम्पन्नताके दिनोमे अवश्य किये जाते थे। विशेषतः राजा जब इनके प्रति स्वय उत्साही रहता था। ऐसी शान्ति तथा सम्पन्नताकी अनुकूल परिस्थिति गुजरातमे उस समय उत्पन्न हुई, जब सिद्धराजने सहस्रलिंग तालाबका निर्माण किया तथा उसके तटपर ब्राह्मण-साहित्य, यज्ञ करने, पुराण पाठ, ज्योतिष और कल्प-सूत्रके अध्ययनार्थ मठ एव शालाओकी स्थापना की। इससमय निश्चय ही ब्राह्मणोका प्रभुत्व, प्रतिष्ठा और सम्पन्नता अत्यधिक थी। यही परम्परा कुमारपालके शासनकालमे भी उससमय तक विद्यमान थी, जब तक वह जैनधर्ममें दीक्षित न हो गया।[2] जैन धर्ममे दीक्षित हो जानेपर भी राजा ब्राह्मणोका आदर करता रहा। भाववृहस्पतिकी वेरावल प्रशस्तिमे ब्राह्मणों और उनके यज्ञोके सम्बन्धमे कुमारपालके भावोका उल्लेख सम्यक्रूपेण हुआ है।[3]

राजनीतिके क्षेत्रमें ब्राह्मण

ब्राह्मण राजाके मन्त्री भी हुआ करते थे। मन्त्रियोके रूपमे देशके शासनमे उनके भाग लेनेका उल्लेख वडनगर प्रशस्तिमे हुआ है। इसमें कहा गया है कि "वे राजा तथा राष्ट्रकी रक्षा अपने परामर्श द्वारा करते

---

[1] रासमाला : अध्याय ४, पृ० ६४।

[2] वडनगर प्रशस्तिके १९से २९ तक श्लोकोंमें आनन्दपुरके नागर ब्राह्मणोंकी प्रशंसा की गयी है। कुमारपालने इसके चतुर्दिक एक दीवार बनवा दी थी। इपि० इंडि० खंड १, पृ० २९३-३०५।

[3] वी० पी० एस० आई०, : पृ० १८६, सूची संख्या १३८०।

थे"।[1] दूतक, महाक्षपटलिक आदिके महत्त्वपूर्ण पदोंपर भी ब्राह्मण कार्य करते थे।[2] फोर्वस्ने लिखा है कि चौलुक्योंकी राजसभामें नयी पीढीके ब्राह्मण थे।[3] विक्रम संवत् १२१३के कुमारपालके नाडोल पत्र-लेखमे उसके मन्त्रीका नाम वहडदेव लिखा है। यह सम्भवत उसके प्रारम्भिक राज्यकालमे उदयनका पुत्र था जो प्रधान सेनापति अर्थात् दडाधिपति होनेके साथ ही प्रधान मन्त्री या महामात्य भी था।[4] किन्तु वाली शिलालेखमें महामात्यका नाम महादेव लिखा है, इससे विदित होता है कि उसने पुन खोया प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था। नागर ब्राह्मणो तथा वैश्य वणिकोमे प्रभुत्व प्राप्तिकी जो पुरानी प्रतियोगिता चली आती रही है, उसे मन्त्रिमडलके इन परिवर्तनोसे भली प्रकार समझा जा सकता है।[5] देशके सामाजिक तथा राजनीतिक जीवनको ब्राह्मण अत्यधिक प्रभावान्वित करते थे, इसमें सन्देह नही।

वैश्योंका उदय

ब्राह्मणवादकी परम्परा और गुजरातमें इसके विभिन्न सम्प्रदायोके प्रचार-प्रसारका श्रेय यदि ब्राह्मणोको है तो यहाके वैश्योंकी देन भी कुछ कम नही। गुजरातके वैश्यो, वणिको या वणिजोने ही मुख्यत. जैनधर्म और सस्कृतिका प्रचार किया। इन्होने भव्य कलापूर्ण मन्दिरोका निर्माणकर गुजरातको उन्नत कलाओंसे अलकृत किया तथा राजनीतिके क्षेत्रमे पदार्पण कर शासनसूत्र हस्तगत करनेमे भी सफलता प्राप्त की। इनमें प्रागवत

[1] इपि० इंडि० : खंड १, पृ० २९३।

[2] इनथोवेन : ओ० सी०, पृ० २२८-२२९।

[3] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३१।

[4] इंडि० ऐंटी० : खंड ४१, पृ० २०२-३।

[5] आर्कलाजिकल सर्वे आव इंडिया, वेस्टर्न सरकिल।

जो पोरवाड तथा मोढके नामसे प्रसिद्ध है, विशेष उल्लेख्य है। देलवारा मन्दिरोके निर्माणकर्ता वस्तुपाल तथा तेजपालने अपने और अपने सम्बन्धियो विषयक अनेकानेक अभिलेख अंकित कराये थे। श्वेताम्बर जैनधर्मके स्तम्भ होनेके अतिरिक्त उनके पूर्वज राज्यके योग्य मन्त्री भी हो चुके थे।[१] इसी प्रकारकी मोढोकी भी परम्परा थी। एक शिलालेखमें कहा गया है कि ये बहुत उच्च और राजाकी प्रशसाके योग्य माने जाते थे।[२] इनमें तथा पोरवाड़ो दोनोमें जैन[३] तथा अन्य धर्मावलम्बी[४] होते थे। इस समय वैश्योकी उपजाति कायस्थोका भी उल्लेख आया है, जो अभिलेख आदि विशेषकर भूमि सम्बन्धी दानपत्र लिखा करते थे। उनके इस कार्यसे सम्बन्धके कारण ही "कायस्थ नागरी" का अस्तित्व हुआ और जिसकी प्रसिद्धि डाक्टर ह्वलरने की।[५] यह भी ध्यानमें रखनेकी बात है कि राज्यके उच्चतम अधिकारियोमें प्रमुख वणिक ही थे। यथा वुणराज तथा सुज्जनके जाम्ब, जयसिंह सिद्धराजके समय मुजाल और कुमारपालके समय उयदन, उसके पुत्र तथा अन्य लोग।[६]

इस राजनीतिक प्रभावके अतिरिक्त वणिक वर्ग ही उद्योगपतियों और

---

[१] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २१०।

[२] वही। इसमें कँम्बेके सूर्य मन्दिरका उल्लेख है जिसे एक जैनने बनवाया था। ऐसा प्रतीत होता है कि मोढ़ और प्राग्वत परस्पर सम्बन्धी थे। आबू शिलालेखमें लिखा है कि वस्तुपाल प्राग्वतने....जो मोढ़ था उसके लिए बनवाया।

[३] बी० पी० एस० आई० पृ० २२७, सूची संख्या ६३९।

[४] इपि० इंडि० : खंड ८, पृ० २२९। श्रीमाली तथा ओसवाल आबू जैन शिलालेखमें अंकित हैं।

[५] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २११।

[६] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३३।

व्यवसायियोका भी वर्ग था। सम्पत्तिके अनुसार वणिकोकी विभिन्न श्रेणिया थी। इसीके अनुसार वे बनिया, वणिक, महत्तर वणिज, और महाजन कहलाते थे। सबसे अधिक सम्पन्न तथा वैभवशाली उद्योगपति नगरश्रेष्ठि होता था।[1] जैन लक्षाधिपति इस बातकी प्रतिज्ञा करते थे कि वे धन सम्पत्तिका एक निश्चित भाग ही लेंगे और शेष धार्मिक कार्योंमे व्यय करेंगे। कुबेरने छ करोड स्वर्ण मुद्रा, आठ सौ तुला चादी, आठ तुला बहुमूल्य रत्न, दो सहस्र अन्नके कुम्भ, दो सहस्र तेलकी खारी, पचास सहस्र घोडे, एक सहस्र हाथी, अस्सी सहस्र गाय, पाच सौ हल, घर, गाडी, डिब्बे आदि रखनेकी प्रतिज्ञा की थी।[2] इन जैन उद्योगपतियोकी शक्ति यहा तक पहुच गयी थी कि नगरसेठ तथा दडनायक विमल पाटन छोडकर चले गये थे और चन्द्रावती नामक नगर बसाया था। बहुतसे सम्पन्न उद्योगपति वहा गये और जाकर वही बस गये। राजधानीकी राजनीतिसे मुक्त होकर उन्होने पचायतोके माध्यमसे कार्य प्रारम्भ किया। उनपर राजधानीका प्रभाव तथा नियन्त्रण केवल नामका था।[3]

जैन तथा राजपूतोमे गहरी प्रतियोगिताकी भावना थी और प्राय यह सघर्षका रूप धारण कर लेती थी। जैन वणिक धनी और शक्तिशाली दोनों थे। बादके चौलुक्य राजाओके सम्मुख यह समस्या रहती थी, कि किसप्रकार धनी, शक्तिशाली तथा प्रभावशाली जैन श्रावकोको अनुकूल एव नियन्त्रित रखा जाय। कर्णदेवके शासनकालमें राजधानीमें जैनोका प्रभुत्व बढ गया था। बहुतसे श्रावक पाटन लौट आये और कर्णदेवकी दुर्बलताका लाभ उठाकर अपनी नीति कार्यान्वित करनेमें सफल हुए। उनकी यह धारणा बन गयी थी कि राजा तो नाममात्रका राजा है, वास्त-

[1] मोहराजपराजय, अंक ३, पृ० ५९।
[2] वही, पृ० १०-११।
[3] के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व पृ० ३ तथा ४३।

विक शक्ति तो उनके हाथमें थी।[1] अभिप्राय यह कि जैन वणिजों तथा नगर श्रेष्ठियोंका राजनीतिमें प्रभाव दिन प्रतिदिन अधिक होता जा रहा था और वे एक नयी शक्तिके रूपमें अग्रसर हो रहे थे।

ब्राह्मणोंके पुनरोदय, वैश्योंकी शक्ति, नेतृत्व और उदारभावना, क्षत्रियोंकी सुदृढ़ रक्षात्मक तथा प्रोत्साहनपूर्ण कार्यपद्धति और सन्तुष्ट चतुर्थ वर्णके कर्त्तव्योंके फलस्वरूप मध्यकालीन गुजरात, वैभव एवं उन्नति-की ओर अग्रसर हो रहा था।[2]

विवाह संस्था

विवाहकी संस्था इस समय अच्छी तरहसे संघटित और व्यवस्थित थी। ब्राह्म प्रकारके विवाह साधारणतः होते थे। सगोत्र तथा सपिंडमें विवाह नहीं होता था। बहुविवाहके बहुतसे उदाहरण मिलते हैं। आभि-जात्य वर्ग अधिकतर एकसे अधिक पत्नियां रखता था। इस बातका उल्लेख मिलता है कि कुमारपालने तीन रानियोंसे विवाह किया था। प्रभावकचरितमें उसकी रानीका नाम भोपालादेवी लिखा है।[3] ऐति-हासिक नाटक मोहराजपराजयमें कुमारपाल और कृपासुन्दरीसे विवाहका वर्णन मिलता है, जो जिनमदनके अनुसार संवत् १२१६में हुआ था।[4] कुमारपालने मेवाड घरानेकी सिसौदिया रानीसे विवाह किया था,

---

[1] के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व, पृ० ३ तथा ४३।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २११।

[3] "तस्य भोपालदेवीति कलत्रयनुगाऽभवत्"। प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० १९६।

[4] कृपासुन्दर्याः संवत १२१६ मार्गशुदि द्वितीयादिने पाणिजग्राह श्री कुमारपाल महीपालः श्रीमदर्हद्देवता समक्षम्। जिनमदन : कुमारपाल-प्रबन्ध।

इसका भी उल्लेख मिलता है।[1] ब्राह्मणोके धार्मिक कथाप्रसंगमें भी उक्त विवाहकी चर्चा आयी है।[2] यह कथा इस प्रकार है। जब सिसौदिया रानीने यह सुना कि राजाने प्रतिज्ञा की है कि राजमहलमें प्रवेश करनेके पूर्व उसे हेमाचार्यके मठमें जाकर जैनधर्मकी दीक्षा लेनी होगी, तो रानीने पाटन जाना अस्वीकार कर दिया जब तक उसे इस बातका आश्वासन न दे दिया जाय कि उसे हेमाचार्यके मठमे न जाना होगा। इसपर जब कुमारपालके चारण जयदेवने इसका दायित्व अपने ऊपर लिया तब रानी पाटन आयी। उसके आगमनके कई दिन बाद हेमाचार्यने राजासे बातें की कि सिसौदिया रानी मेरे मठमे नही आयी। इस पर राजाने रानीसे कहा कि उसे अवश्य जाना चाहिये। इधर रानी अस्वस्थ हो गयी। उसकी बीमारीका हाल सुनकर चारणकी पत्नी उसे देखने गयी। रानीकी कहानी सुनकर चारणकी पत्नी उसका वेश परिवर्तनकर चुपचाप अपने घर ले आयी। रातमें चारणोने नगरकी एक दिवार खोदकर एक छेद बनाया और उसी मार्गसे रानीको घर पहुचानेके लिए रवाना हुए। जब कुमारपालको इस घटनाका पता लगा तो वह दो हजार घुडसवारोके साथ उसकी खोजमे निकला। चारणने रानीसे कहा कि मेरे साथ दो सौ घुडसवार है। हममेसे कोई भी जब तक जीवित रहेगा, घबडानेकी आवश्यकता नही। रानीसे इतना कहकर वह पीछा करनेवालोकी ओर मुडा, पर रानीका साहस जाता रहा और उसने गाडीमे ही आत्महत्या कर ली। उधर युद्ध चल रहा था और पीछा करनेवाले गाडीकी ओर आगे बढ ही रहे थे कि दासियोने चिल्लाकर कहा "लडाई बन्द करो। रानी अब नही रही।" कुमारपाल तथा उसके सैनिक राजधानी लौट गये।

ब्राह्मण तथा जैनधर्मकी इस सघर्षमयी कहानीसे कुमारपालके उस

[1] रासमाला, अध्याय ११, पृ० १९२-१९३।

[2] वही।

विवाहका पता चलता है जो मेवाड़के घरानेमें हुआ था। इसप्रकार कुमारपालकी तीन रानियोंका उल्लेख मिलता है। कुमारपालके जीवनवृत सम्बन्धी प्रामाणिक ग्रन्थों तथा समसामयिक साहित्यमें उसके इस विवाहका उल्लेख नही मिलता और न इस घटनाकी चर्चा ही आयी है। इससे इसकी सत्यता संदिग्ध है। यह हम पहले ही देख चुके है कि राज्यारोहणके समय कुमारपालने अपनी रानी भोपालादेवीको पट्टरानी बनाया।

एक बात ध्यान देने योग्य है कि इसकालमे अन्तरजातीय विवाहके भी उदाहरण मिलते है। भीमदेवकी तीन रानिया थी। जिनमें एक वणिक कन्या बकुलादेवी भी थी।[1] देवप्रसाद और नगरसेठ मुंजालकी बहन हंसाका विवाह जो वणिक थी, इस प्रकारके विवाहका दूसरा उदाहरण है।[2] इससे स्पष्ट है कि सामाजिक सम्पर्क और सम्बन्धपर प्रतिबन्ध न था। स्वयवरकी कोटिके विवाह भी इस समय होते थे। सयुक्ताके स्वयवरकी घटना पृथ्वीराज रासोमे अंकित है। फोर्बस्ने भी "स्वयवर मडप"का उल्लेख किया है जिसमे राजकुमारी अपने इच्छित योद्धाको वरमाला पहनाती थी। उसने उक्त सभामडपको विवाहका "प्रकाशमय स्थल' कहा है, जहा प्रेमकी देवी अपने देवके पार्श्वमे विराजमान रहती थी।[3]

सामाजिक रीति और रिवाज

यह काल राजपूतोकी वीरता तथा गौरवके युगका था। समाजका नैतिक स्तर बहुत उच्च था। चरित्र तथा सम्मानके अभावमे लोग पापके पश्चातापपूर्ण जीवनके बदले मृत्युको उत्तम समझते थे। जयदेव चारणका

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणि : अध्याय ९, पृ० ७७ तथा के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व, पृ० ४२।

[2] पाटनका प्रभुत्वः पृ० ४५।

[3] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३१।

उदाहरण हम देख चुके हैं, जिसने सिसौदिया रानीको ले जाने तथा अपने वचनके पालनमें जान तक दे दी। चारण जयदेवने देखा कि अब उसका वचन भंग हो रहा है और उसका नैतिक पतन हो गया है, इसलिए उसने मृत्यु वरणका निश्चय किया। वह सिद्धपुर चला गया और वहांसे उसने अपनी जातिके लोगोंको लाल स्याहीसे पत्र लिखा। उसने पत्रमें लिखा था कि "हमारी जातिका सम्मान चला गया, इसलिए जो मेरे साथ चितामें जलनेके इच्छुक हो, वे प्रस्तुत हो जाये।" ईखकी ढेर लगायी गयी और जो सपत्नीक जलना चाहते थे उन्होंने दो और जो अकेले थे उन्होंने एक ईख उठायी। चिताएं प्रस्तुत की गयी। चिता और जमूर तैयार किये गये।[1] सिद्धपुरमें सरस्वती नदीके किनारे प्रथम जमूर बनाया गया था। दूसरा पाटनसे थोड़ी दूर (वाणकी दूरी)पर और अन्तिम जमूर नगरके प्रवेश द्वारपर बनाया गया था। प्रत्येक जमूरपर सोलह सोलह भाट अपनी पत्नी सहित जलकर भस्म हो गये। जयदेव चारणकी बहनका एक लड़का कन्नौजमें था। उसे भी एक पत्र लिखा गया था किन्तु उसकी माताने और कोई दूसरा पुत्र न होनेके कारण उसे जाने न दिया।

जमूरपर चारणोंके भस्म हो जानेपर उनके पुरोहितने उन भस्मोंको गंगामें प्रवाहित करनेका निश्चय किया। भस्म बैलगाड़ीपर लादी गयी और पुरोहित उसे लेकर कन्नौजकी दिशामें गये। संयोगसे जयदेवका भतीजा कन्नौजमें चुंगी विभागमें था। उसने इस गाडीको व्यापारिक वस्तुओंकी गाडी समझ कर निकासी कर मांगा। इसपर पुरोहितसे सारा विवरण बताते हुए कहा कि बैलगाडीमें कैसी भस्म लदी है। इसपर भाट अपने परिवारको एकत्रकर पाटन आये। एक स्त्री जिसे कुछ समय पूर्व ही बालक उत्पन्न हुआ था अपना शिशु पुरोहितको सौंप अपने पतिके

[1] फोर्बसने लिखा है कि चिता केवल एक व्यक्तिके जलनेके लिए थी और जमूर एकसे अधिकके लिए।

साथ भस्म हो गयी। अब तक पाटन जिलेमे भाट और चारण अपनेको उक्त शिशुका ही वंशज बताते है।[1] फोर्वस् द्वारा उल्लिखित उक्त कथाकी पुष्टिका अभाव तथा उसके समर्थनमे अन्य प्रामाणिक सूत्रोका मौन, उसकी सत्यतापर सन्देह उत्पन्न करता है। विशेषकर जब कि इस कालकी धार्मिक सहिष्णुता, भारतके इतिहासमें अभूतपूर्व रही है। इस-प्रकारकी धार्मिक संकीर्णताके लिए कुमारपालके राज्यकालमें कोई सम्भावना ही न थी। अतः ऐतिहासिक घटनाके रूपमे, और स्पष्ट प्रमाणोंके अभावमे रानीकी आत्महत्या तथा चारणोका चितामें भस्म होना सत्य नही, अपितु वर्ग-विशेषकी विद्वेष भावनाकी कल्पना मात्र ही प्रतीत होता है।

इस कथाका विश्लेषण करनेपर उस युगके चरित्र विशेषका परिचय मिलता है। चिता और जमूरपर लोग अपना अन्तिम संस्कार करते थे। उस समय लोग अपने सम्मान तथा प्रतिष्ठाके लिए चिता अथवा जमूरपर जीवित जलकर भस्म हो जाते थे। इस समय कर्तव्य तथा ईमानदारीकी जैसी उच्च नैतिक भावना थी, उसका उदाहरण संसारके इतिहासमे कहीं नही मिलता। प्राचीन भारतीय इतिहासमें राजपूतोंकी वीरता लोक-प्रसिद्ध थी। चितापर जलनेकी उक्त प्रथामें सती प्रथाका रूप भी देखा जा सकता है। उक्त कथासे यह भी विदित होता है कि मृत शरीरकी भस्म गगामे बारहवी शताब्दीमे भी प्रवाहित की जाती थी।

आर्थिक अवस्था

कुमारपालचरित[2] और कुमारपालप्रतिबोधमें राजधानी अनहिल-वाडाका जो वर्णन है, उससे हमे देशके तत्कालीन आर्थिक जीवनकी झाकी प्राप्त हो जाती है। यही नही उनसे राज्यकी विभिन्न आर्थिक गतिविधि तथा जनताके उद्योग धन्धोपर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। अणहिल-

---

[1] रासमाला : अध्याय ११, पृ० १९३-१९४।

[2] हेमचन्द्र : कुमारपालचरित, प्रथम सर्ग।

पाठक बारह कोस लगभग २४ मीलके घेरेमें बसा था। इसमें अनेक मन्दिर तथा उच्च विद्यालय थे। इसमें चौरासी महल्ले थे। इतनी ही संख्या यहांके बाजारोकी भी थी। यहां स्वर्ण और रजतकी मुद्रा ढालनेवाले गृह भी थे। सभी वर्गोंका अपना पृथक-पृथक क्षेत्र था। व्यापारकी वस्तुओमें हाथीदात, रेशम, हीरे, मोती आदि उल्लेख्य थे। मुद्रा-विनिमय करनेवालोंका अपना अलग बाजार था, तो सुगन्धके विक्रेताओंका क्षेत्र भी पृथक था। चिकित्सकों, कलाकारो, स्वर्णकारो और चांदीका काम करनेवालोंके अलग-अलग बाजार थे। नाविको, चारणों तथा वंशावलियोके विवरण रखनेवालोंके स्थान पृथक-पृथक थे। अट्ठारहों "वरण" नगरमे वास करते थे और सभी प्रसन्नतापूर्वक रहते थे। राजप्रासादके चतुर्दिक भव्य भवनोंकी पक्तियां थी। हाथी, घोडे, रथ तथा शस्त्रागारके लिए भवन बने थे। राज्याधिकारियों और जन आय-व्यय निरीक्षकोके लिए भी पृथक स्थान थे।

प्रत्येक प्रकारके मालके लिए पृथक-पृथक चुंगीघर बने थे। यहा आयात-निर्यात तथा विक्रय कर एकत्र किया जाता था। कर तथा चुगी लगनेवाली वस्तुओमें मसाला, फल, दवाइयां, कपूर, धातु तथा देश-विदेशकी सभी बहुमूल्य वस्तुए थीं। यह समस्त ससारके व्यापारका केन्द्र था। इस स्थानमें प्रतिदिन एक लाख तुखास (टका) कर रूपमें एकत्र होता था। यहाकी सम्पन्नताका इसी बातसे सरलतापूर्वक अनुमान किया जा सकता है कि पानी मागनेपर दूध मिलता था। यहा बहुतसे जैन मन्दिर थे। एक झीलके तटपर सहस्रलिंग महादेवका मन्दिर निर्मित था। यहाकी जनसख्या गुलाबी सेवो, चन्दन, आम्रवृक्षो तथा विभिन्न प्रकारकी लताओंके मध्य उन फुहारोके मध्य विचरणकर प्रसन्नताका अनुभव करती थी, जिनके जल अमृतके समान थे।[1]

---

[1] टाड : पश्चिमीभारत, पृ० १५६-८।

उद्योग और धन्धे

उपर्युक्त विवरणमे विभिन्न जन उद्योग धन्धोंका उल्लेख आया है। जैन व्यवसायी बडे उद्योगपति थे, इसका भी वर्णन मिलता है। विदेशोंसे व्यापार होता था। इसका प्रमाण हमें उस प्रसगसे मिलता है जिसमें कहा गया है कि राजधानीके कुबेर नामक कोट्याधीशका निधन समुद्र-यात्रामें हो गया।[1] कुबेर विदेशोंसे व्यापार करनेके लिए पाटनसे भरूच (भृगुकच्छ) गया था और वहासे ५०० पोतोंमे माल भरकर विदेश गया। विदेशोंमें अपना सारा माल विक्रयकर उसने चार करोड रुपयेका लाभ प्राप्त किया। वहासे स्वदेश लौटते समय, समुद्रमें भीषण आधी आयी और उसकी सभी नावे छिन्न-विच्छिन्न हो गयी। कुछ नावें भरूच बन्दरगाहपर आ लगी, किन्तु कुबेरका कही पता न लगा। इसप्रकार समुद्रमें विशाल और बहुसंख्यक पोतों द्वारा व्यवसायका वर्णन भी मिलता है। जलपोतो, समुद्रमे व्यापार करनेवालो तथा समुद्री डाकुओंका भी उल्लेख आया है। जवहरी (जौहरी) रत्नके पारखी, व्यापारी, अत्यधिक धनी व्यवसायी होते थे। विदेशसे समुद्रपर व्यवसाय करनेवाले संयात्रिक कहे जाते थे।

योगराजके शासनकालमें एक विदेशी राजाका हाथी, घोडो तथा अन्य व्यापारिक वस्तुओसे लदा जहाज सोमेश्वर पाटनके बन्दरगाहमे प्रवाहित होकर चला आया था। सिद्धराज जयसिहके कालमे संयात्रिक (समुद्र व्यवसायी) डाकुओके भयसे गाठो और बडलोमे स्वर्ण छिपाकर ले जाते थे।[2] इन सभी बातोसे विदित होता है कि चौलुक्योके शासन-

[1] "गुर्जर नगर वणिग्मूर्धन्यः कुबेरनामा श्रेष्ठी विदितो वेवस्य.... स च जलधिवर्त्मनि कथाशेषतया स्वामिपादानाम सेवकतामशिश्रियत।" मोहराजपराजय, अंक ३, पृ० ५१-५२।

[2] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३५।

कालमें बड़े पैमानेपर देशी-विदेशी व्यापार होता था। उन प्राचीन दिनोंमें पाटन भारतका वेनिस था। कृषिका धन्धा भी महत्त्वपूर्ण धन्धोंमे एक था। आजकल जैसे किसान अपने कृषिकर्ममें लगे दिखायी देते हैं, वैसे ही किसानोंका चित्रण हमे उस समय भी मिलता है। जब अन्नके अंकुर निकलते है तो वे अपने खेतका घेरा ठीककर उसके चतुर्दिक कांटेकी झाडिया लगा देते हैं। जब अन्नके पौधे बडे हो जाते हैं, तो किसान चिड़ियोंसे उसकी रक्षा करते हैं। धानके खेतोकी रखवाली करती हुई किसानोंकी स्त्रियां जिसप्रकार लोकगीत आजकल गाती है, ठीक उसीप्रकार उस समय भी वे खेतोमें अपने सुमधुर गायनोंसे आनन्द एव अह्लादकी धारा प्रवाहित कर समस्त वातावरण सगीतमय कर देती थीं।[1]

सुवर्णकार तथा रजतकारोके भी वर्णन मिलते है। रथ तथा अन्य ऊंचे-ऊचे भवनोका अस्तित्व इस समय था। इसलिए इस कलाके विज्ञोंके विद्यमान होनेमे कोई सन्देह ही नही किया जा सकता। इस समय समुद्रसे व्यापार तथा यात्राका प्रामाणिक वर्णन मिलता है।[2] इसप्रकार निश्चय ही जनसख्याका एक वर्ग नौका सचालनका धन्धा भी कर उदरपोषण करता होगा। नाविकोका स्पष्ट उल्लेख भी मिलता है। राजधानीमे इनके निवासका एक पृथक क्षेत्र ही था। इसप्रकार अनहिलवाडेमे एक उन्नत तथा वैभवपूर्ण सम्पन्न देश और समाजके सभी उद्योग-धन्धे तथा कार्योंकी व्यवस्था थी।

भोजन, वस्त्र और अलंकार

इस समय भोजनमे गेहू, चावल, जौ आदिके अतिरिक्त लोग मांसका भी व्यवहार करते थे। किराडू तथा रतनपुर प्रस्तर लेखोसे विदित होता

[1] वही, पृ० २३२।
[2] मोहराजपराजय : अंक ३, पृ० ५१-५२।

है कि लोग मांसाहारी थे। इन लेखोंमें कतिपय विशेष दिन पशुवधका जो निषेध किया गया है, उससे भी उक्त कथनकी पुष्टि होती है। पशुवधकी इस निषेधाज्ञाका उल्लंघन दंडनीय अपराध था।[1] किराडू शिलालेखमे इस आशयकी राजाज्ञा है कि पवित्र दिनोंमें पशुवधके अपराधके लिए राजपरिवारवालोको आर्थिक दंड नियत था और साधारण लोगोके लिए तो इस अपराधमें मृत्युदंडका विधान था। यह आज्ञा कुमारपालके राज्यारोहणके थोडे ही दिन बाद उसके हस्ताक्षरसे प्रचारित हुई थी। चौलुक्य राजाओंकी परम्पराके सम्बन्धमें फोर्वस् लिखता है कि सन्ध्यामे दीप जलने तथा देवमूर्तिकी अर्चनाके पश्चात् राजा "चन्द्रशाला" नामक ऊपरी भवनमें चला जाता था और वहीं विशिष्ट एवं विशेष भोजन करता था। इसमें मांस तथा मदिरा भी रहती थी। सामन्तसिंहका अत्यधिक आसव पानकी दशामे ही अन्त हुआ था।[2] चौलुक्योंके पुरोगामी चावडे भी मद्यपान करते थे। स्वय अणहिलपुरके सस्थापक वनराजको मद्य बहुत प्रिय था। उसके पश्चात् भी वहाके राजमहलोमें मदिरादेवीका खूब सत्कार होता था। मन्त्री यशपालकेवर्णनसे यह स्पष्ट है। प्रबन्धगत प्रमाणोसे प्रतीत होता है कि कुमारपाल जैनधर्मानुयायी होनेके पहले मासाहार तो करता था लेकिन मद्यपानसे उसे हमेशा घृणा थी। यहां तक कि उसके कुलमे यह वस्तु त्याज्य थी। हेमचन्द्रके योगशास्त्रमें आये हुए एक उल्लेखसे प्रतीत होता है कि चौलुक्य कुलमे मद्यपान ब्राह्मण जातिकी तरह ही निन्द्य था।[3] इसप्रकार स्पष्ट है कि भोजनके साथ मास और मदिरा भी ग्रहण की जाती थी। हेमचन्द्रके शिष्य होनेपर कुमारपालने मासभोजन तथा मदिरापानका त्याग कर दिया

[1] भावनगर इन्सक्रिपशन : पृ० २०५-२०७।
[2] रासमाला, अध्याय १३, पृ० २३७।
[3] राजर्षि कुमारपाल : मुनि जिनविजय, पृ० १९।

था।[1] मांसभोजन, आसवपान तथा पशुवधके पापको रोकनेकी आज्ञा कुमारपालने दी थी।[2] वनराज तथा सभी चावड़े राजा अधिक आसव पानके अभ्यस्त थे।[3] युवावस्थामें कुमारपालको भी मांस खानेका व्यसन था और पर्यटनकालमें तो उसने मुख्यतः मांसपर ही निर्वाह किया था।[4]

उस समय भी लोग शाल और उत्तरीय वस्त्र उसीप्रकार ओढ़ते थे जिसप्रकार आजकल शाल और चादर धारण करनेकी चाल है। आधुनिक कालकी भांति ही स्त्रियां साड़ी पहनती थी।[5] फोर्वस्का कथन है कि जब राजा भोजन कर चुकता था तो चन्दनकी सुगन्ध उसके शरीरमें लगायी जाती थी। सुपाडी खाकर वह छतमें लटकाये झूलनेवाले बिछावनपर विश्रामकी मुद्रामें आसीन होता था। उसकी लाल रंगकी राजकीय पोशाक कोच और तकियापर फैला दी जाती थी।[6] जैन आचार्योंकी लम्बी सफेद पोशाकका भी वर्णन आया है।[7] पुरुष उस समय धोती, उत्तरीय वस्त्र तथा पगडी पहनते थे।[8] स्वर्णकारों तथा रजतकारोंका

---

[1] मोहराजपराजय तथा कुमारपालप्रतिबोध सभी इसका उल्लेख करते हैं।

[2] मोहराजपराजय : अंक ४, पृ० ८३।

[3] वनराजस्याहं बहुमतोऽभूवमित्युपस्थितममुना
इय धवल हरे सुचिरं चाउक्कडराय लालिओवसियो।
मोहराजपराजय, अंक ४, पृ० ४७।

[4] बालत्ताउ वि:तुह देव। निच्चमच्चंतवल्लहो अहयं
महसाहिज्जेण तया कंपाइं देसंतराइं तए। वही।

[5] के० एम० मुंशी : पाटनका प्रभुत्व, खंड २, पृ० १००।

[6] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७-२३८। यह प्रथा आज भी गुजरात और महाराष्ट्रके घरोंमें व्यापकरूपसे प्रचलित है।

[7] वही।

[8] पाटनका प्रभुत्व : खंड २, पृ० १०४।

अनेक स्थलोंमें उल्लेख हुआ है। जैन तीर्थंकरोंके चित्रोंसे मोतीकी मालाओं, कंकण, कड़ा, कानकी ऐरन आदि आभूषणोंके विवरण मिलते है। आबू मन्दिरकी, मूर्तियों-चित्रोंसे ज्ञात होता है कि उस समय लोग दाढ़ी-मोछ रखनेके साथ ही, कलाइयों तथा बाहोमें आभूषण पहने थे और कानमें गोल अगूठी (बाली) तथा गलेमे हार एवं मोतीकी माला भी धारण करते थे। दर्शनादिके निमित्त मन्दिर जाते समय उनका वस्त्र एक छोटीसी धोती और उत्तरीय होता था। उत्तरीय वस्त्रको दोनों कन्धेपर डालकर बाहोपर लटका लिया जाता था। स्त्रिया कंचुकीके अतिरिक्त दो वस्त्र पहनती थी। इनका ऊपरी वस्त्र आधुनिक ओढनी जैसा था। स्त्रिया कानपर बडे कमंडल धारण करनेके अतिरिक्त बाहो और हाथोमे कडा तथा चूड़िया धारण करती थी।[1] यशपालके नाटक मोहराजपराजयमे भी सुन्दर वस्त्राभूषणोका वर्णन मिलता है।[2]

चौलुक्यकालीन सिक्के

चौलुक्यराजाओके सम्बन्धमे जब प्रभूत एव प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री मिलती है, तो यह वस्तुत· आश्चर्यका विषय हो जाता है कि उस कालकी मुद्राए क्यो दुर्लभ और अप्राप्य है। बारहवी शताब्दीमे गुजरातका साम्राज्य आर्थिक सम्पन्नताके विचारसे अत्यधिक समृद्ध था। समसामयिक साहित्य, विदेशी इतिहासकारोके विवरण तथा अन्य साधनोसे इसकी पुष्टि होती है। तत्कालीन नाटक 'मोहराजपराजय'मे यशपालने कुबेरके वैभवका वर्णन करते हुए लिखा है कि कुबेरके पास ६ करोड स्वर्णमुद्रा[3] और आठ

---

[1] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय ४, पृ० ११८।

[2] पौराः ! कुर्युविपणि पवबोमस्तपांशुं पयोभिर्मुक्ताहारं रुचिर वस-नैर्हट्टशोभां विदध्युः। मोहराजपराजय : अंक ४, पृ० ९२।

[3] स्वर्णस्य षटकोट्यस्तार स्याष्ट तुलाशतानि च महार्णाणां मणीनांवशः
—मोहराजपराजय।

सौ तोला रजत, बहुमूल्य रत्न आदि-आदि थे। गुजरातकी राजधानी पाटन तत्कालीन भारतकी 'वेनिस नगरी' कही जाती थी। गुजरातके स्तम्भतीर्थ (सूरत) भृगुपुर (गुंडाया) द्वारका, देवपाटन, मोटा तथा गोपनाथ आदि बन्दरगाहोंसे विदेशी व्यापार बड़े पैमानेपर होता था। समुद्रमें व्यापारके लिए गये कुबेरके निधनके विवरणसे स्पष्ट है कि उस समय पाटन संसारके प्रमुख व्यापारकेन्द्रोंमें था और यहांसे व्यापारिक पोतोंका विशाल समूह विदेशोसे व्यापार करने जाता था। ऐसी स्थितिमे यह कहना कि चौलुक्यकालीन राजाओंने अपने सिक्कोका प्रचलन न किया होगा, हास्यास्पद लगता है। उत्तरप्रदेशमे मिली सिद्धराज जयसिंहकी स्वर्णमुद्रासे विदित होता है कि उस समय सिक्के ढाले जाते रहे हैं और अर्थविभागके अन्तर्गत इसकी व्यवस्था अवश्य रही थी।[1] कुमारपाल-चरितके प्रथम सर्गमे तथा कुमारपालप्रतिबोधमे राजधानी अनहिलवाड़ाका जो वर्णन मिलता है उनमे पाटनमें स्वर्ण तथा रजत मुद्राओको ढालनेवाले गृहोका भी उल्लेख आया है। यहा चौरासी बाजार थे जहां आयात-निर्यात तथा विक्रय कर लेनेकी व्यवस्था थी। यहां प्रतिदिन एक लाख तुखास (टका) कर के रूपमें एकत्र होता था।[2] अब प्रश्न है कि ऐसी समृद्धिशील आर्थिक स्थितिमें चौलुक्यकालीन सिक्कोका अभाव क्यों है? इसके अनेक कारण हो सकते है। प्रथम तो यह कि कुमारपालके उत्तराधिकारियोके समय और उसके बाद जितने यवन आक्रमण हुए, उनमे स्वर्णके भूखे आक्रमणकारियोने मनमानी लूटपाट की। बहुतसी स्वर्ण और रजत मुद्राए तो इसप्रकार नष्ट हो गयी होगी अथवा विदेश ले जायी गयी होगी। दूसरा कारण, सिक्कोका प्रचलन सम्बन्धी वह साधारण नियम है, जिसके अनुसार राज्यपरिवर्तन अथवा नवीन राजाके

---

[1] जे० आर० ए० एस० बी०, लेटर्स, ३, १९३७ नं० २ आर्टिकिल।
[2] टाड : एनल्स आव वेस्टर्न इंडिया, पृष्ठ १५६।

अधिकारग्रहणके बाद उसके पूर्वके अधिकाश सिक्कोका नयी मुद्रा चलानेके लिए गला दिया जाना है। जब सिद्धराज जयसिंहकी स्वर्णमुद्राका पता चला है तो कोई कारण नही कि उसके उत्तराधिकारी कुमारपालने राज्यारोहणके उपरान्त अपनी मुद्राए न प्रचलित की हो। विशेषकर उस स्थितिमें जब कि उसीके शासनकालमें गुजरातका साम्राज्य उन्नतिकी पराकाष्ठापर था। यह केवल अनुमान ही नहीं, अपितु अन्य सूत्रोंसे भी विदित होता है। एक सूत्रसे पता चलता है कि अलाउद्दीनके मुद्रा-अधिकारी लोगोसे प्राचीन सिक्के लेते थे और द्रव्यपरीक्षा कर उसका मूल्याकन नये सिक्केमें करते थे। ऐसे ही एक प्रसगमें 'कुमारपालीय मुद्रा'का उल्लेख आया है।[1] इस प्रकार विदेशी आक्रमणकारियोंकी लूटपाटसे अवशिष्ट सिक्के, यवनराज्यकी स्थापनाके कारण नये सिक्कोके लिए गला दिये गये होंगे। इसके पश्चात भी बचे हुए सिक्के बहुत सम्भव है कि तत्कालीन वैभवकेन्द्रोंके ध्वंसके नीचे दबे पडे हो। हम लिख चुके है कि पुरातत्त्ववेत्ता श्री सकालियाने जब उक्त क्षेत्रोमे सिक्कोके सम्बन्धमे पूछताछ की तो उन्हे पता लगा था कि सहस्रलिंग तालाबके निकट, नगरकी सीमाके बाहर जब एक सडकका निर्माण हो रहा था तो कुछ सिक्के सागर अप्सराके मुनि पुण्यविजयजीको मिले थे। इन स्थितियोमें यह स्वीकार करनेमे किसी प्रकारका सन्देह नही कि चौलुक्य राजाओ तथा उनमे सर्वप्रमुख कुमारपालने अपनी मुद्राए अवश्य ही प्रचलित की होगी। निकट भविष्यमे प्राचीन ऐतिहासिक स्थलोंके उत्खननपर, इस सम्बन्धमे और अधिक प्रकाश पड़नेकी सम्भावना है।

मनोरंजन और खेलकूदके साधन

ऐसे सम्पन्न और उन्नतिशील समाजमें विविध प्रकारके खेलकूद तथा मनोरजनके साधन होने स्वाभाविक ही थे। कुमारपालप्रतिबोधमें

[1] मुनिकान्तिसागर : खसर लेख और उनके ग्रन्थ।

मल्लयुद्ध प्रतियोगिता, हस्तियुद्ध तथा अन्य मनोरंजनोंके वर्णन मिलते हैं। द्यूत खेलनेकी प्रथा राजा और प्रजा दोनोंमें बहुत प्रचलित थी। धार्मिक समारोहोपर तो लोग सार्वजनिक और स्वतन्त्र रूपसे जुआ खेलते थे। द्यूत-क्रीडाके पाच भेदोंका वर्णन मिलता है। प्रथम भेद अन्व्य था, जो नित्य राजा लोगो द्वारा वस्त्रके टुकडेपर बने वर्गपर खेला जाता था। दूसरा प्रकार नालय था, जिसे सम्पन्न लोग सुवर्ण लेकर खेलते थे। तृतीय चतुरंग था, जो आधुनिक कालका शतरज है। द्यूतका चतुर्थ भेद अक्ष था जिसे खेलकर कौरवोने विजय प्राप्त की थी। पाचवा प्रकार वराड नामका था, जिसे कौडियोकी सहायतासे खेला जाता था। जुआ खेलनेवालोका भी वर्णन मिलता है। कुछ लोगोंके हाथ, पैर और कान काट लिये जाते थे। कुछ लोगोके तो नेत्र भी निकाल लिये जाते थे। दडस्वरूप जुआ खेलनेवालोकी नाक, जीभ तथा कुछके पैर तक काट लिये जाते थे। कुछ लोगोको इस अपराधमे नग्न कर दिया जाता था।[1]

द्यूत खेलनेवालोमे निम्नलिखित राजवशके सदस्योके नाम मिलते है:—(१) मेवाडके राणाका पुत्र, (२) सोरठके राजाका भाई, (३) चन्द्रावतीका राजा, (४) नाडुल्यके राजाका भतीजा, (५) गोधरा नरेशका भतीजा, (६) धारानरेशका भाजा, (७) साकभरी राजके श्वसुर, (८) कच्छ नरेशका साला, (९) कोकण राजका सौतेला भाई, (१०) मारवाड़के राजाका भाजा तथा (११) चौलुक्य राजका चाचा। द्यूत क्रीडामे ये इतने निमग्न रहते थे कि परिवारमे माता-पिता या पत्नीकी मृत्यु भी हो जाती तो उसपर बिना शोक प्रकट किये, ये अपने खेलमे ही व्यस्त रहते।[2] कहते हैं शूद्रकने अपना साम्राज्य द्यूत क्रीड़ासे ही हस्तगत कर लिया

---

[1]केवि कट्टिय चरण करकन्न, किवि कड्ढियनयणजुय केविनक्क अहरिहि विवज्जिय। किवि लूण सव्वावयव केवि जेव सवणय अलज्जिय।

[2]मोहराजपराजय : चतुर्थ अंक, श्लोक २२।

था।[1] राजप्रासाद तथा नगरमें संगीत तथा नृत्यका भी उल्लेख मिलता है। कुमारपालके दैनिक कार्यक्रममे हमने देखा है कि जब वह राजप्रासादके मन्दिरोंमें पूजन-अर्चन समाप्त कर लेता तो नर्तकिया दीप लेकर देवताओंके सम्मुख नृत्य करती थी। आराधनके उपरान्त वह चारणों तथा अन्य लोगोंसे वाद्यसंगीत और गायन सुनता।[2] वेश्यावृत्ति कोई विशेष और बड़ा पाप नही समझा जाता था।[3] समारोहोपर नागरिक सड़कोपर छिड़काव कराते थे तथा मोतियोके हार और सुन्दर वस्त्रोसे अपनी दुकान सुसज्जित करते थे। प्रमुख स्थानोमें उन्हे स्वर्णघट रखने पडते थे और सुसज्जित रंगमचपर नर्तकिया नृत्यकलाका प्रदर्शन करती थी।[4] समाजके शिष्टवर्गसे वेश्याओका घनिष्ट सम्पर्क रहता था। वेश्याओकी स्थिति भी आजकी भाति हलकी और व्यभिचारपोषक न थी। वेश्याओंका स्थान समाजमे एक प्रकारसे उच्च समझा जाता था। राजदरबारमें हमेशा उनकी उपस्थिति रहती थी। देवमन्दिरोमे भी नृत्यसगीत आदिके लिए उनकी उपस्थिति आवश्यक समझी जाती थी। व्यक्तिगत और सार्वजनिक

---

[1]वही, श्लोक २९।

[2]कुमारपालप्रतिबोध : पृ० ३८।

[3]मोहराज पराजय, पृ० ११—'वेश्याव्यसनं तु वराकमुपेक्षणीयम्। न तेन किञ्चिद्गतेन स्थितेन वा।'

[4]भो भोः पौराः। महाराज श्रीकुमारपाल देवो युष्मानाज्ञापयति। यज्जिन रथयात्रामहोत्सव भविष्यति। ततः

पौराः। कुर्यं विपणिपदवीमस्तयांतुं पयोभि
र्मुक्ताहारे रुचिर वसनैर्हट्ट शोभां विदध्युः
स्थाने स्थाने कनक कलशान् स्थापयैयुर्भवन्तः
पंडस्त्रीभिः सुरगृह सखान् मंचकान भूषयेयुः।

वही, चतुर्थ अंक, श्लोक १९।

महोत्सवोमें भी उनका स्थान प्रमुख रहता था। कला और कुशलताकी वे शिक्षिका मानी जाती थीं। नाटकों तथा अन्य मनोरंजक कार्यक्रमोंके आयोजनोंसे भी वर्णन मिलते है। हेमचन्द्रने लिखा है कि सिद्धराज जयसिंह वेश परिवर्तनकर इन स्थानोंमें जाया करते थे। धनाढ्य उद्योगपतियोंके भव्य-भवनोंके उज्ज्वल प्रकाश या अन्य समारोहके स्थल उसके आकर्षणके विषय थे। अज्ञात समझकर भी वह जहा जाता और उसका आदर होता था। कभी वह शिव मन्दिरोके प्रागणमें होनेवाले सगीत अथवा हास्यसे आकर्षित होकर जाता, जहा अभिनेता अपनी बुद्धि एवं अभिनय कलासे जनसमूहको अह्लादित करते थे। एक समय जयसिंह सिद्धराज वेश बदलकर कर्ण मेरुप्रासादमें अभिनीत होनेवाले एक नाटकमें उपस्थित थे। ऐसे प्रदर्शनोमें पर्याप्त धनराशिका व्यय होता था और धनाढ्य ही इसका आयोजन करनेमे समर्थ हो सकते थे। इसप्रकार एक सम्पन्न एव पूर्ण उन्नत समाजमें प्राप्य समस्त प्रकारके खेल-कूद, प्रदर्शन, सास्कृतिक आयोजन, कलात्मक अभिनय तथा मनोरंजनके विविध साधन इस समय उपलब्ध थे।





धार्मिक और सांस्कृतिक अवस्था

१४

सोलंकीराज कुमारपालका शासनकाल भारतके धार्मिक एवं सांस्कृतिक इतिहासमें विशेष महत्त्व रखता है। जैन इतिहासोंमें यह बात स्पष्ट लिखी है कि जैसे-जैसे कुमारपाल प्रौढावस्थाको प्राप्त हो रहा था, उसी प्रकार क्रमशः उसपर हेमचन्द्रका अधिकाधिक प्रभाव होता जाता था और अन्तमे वह जैनधर्ममे दीक्षित हो गया। कुमारपालके बीससे अधिक शिलालेखोमे उसे "उमापति वरलब्ध"—शंकरका भक्त कहा गया है[1] तथा अनेक शिलालेखोमें उसके सम्बन्धमें परम अर्हत सूचक विरुदका उल्लेख आता है। गुजरातके बहुतसे प्रतिष्ठित परिवारोमें जैन और शैव दोनो धर्मोका पालन किया जाता था। किसी घरमें पिता शैव था तो पुत्र जैन, किसी घरमें सास जैन थी तो वधू शैव। किसी गृहस्थका पितृकुल जैन था तो मातृकुल शैव। किसीका मातृकुल जैन था तो पितृकुल शैव। इसप्रकार गुजरातमे वैश्य जातिके कुलोंमे प्रायः दोनों धर्मोके अनुयायी थे। निष्कर्ष यह कि शैव और जैन दोनो मुख्यरूपसे गुजरातके प्रजाधर्म थे।[2] दोनो धर्मोमे सद्भावकी स्थिति थी तोभी सामान्यरूपसे राजधर्म शैव ही माना जाता था और गुजरातके राजाओंके उपास्य शिव

[1]इंडि० ऐंटी० : खंड १८, पृ० ३४१-४३ तथा इपि० इंडि० : ४१२, सूची संख्या २७९।

[2]मुनिजिनविजय : राजर्षि कुमारपाल, पृ० ५।

थे।[1] दसवीं शताब्दीमें जब मूलराजने अनहिलवाड़ामें चौलुक्य राजवंशकी स्थापना की तो उस समय भी सोमनाथका पवित्र मन्दिर सर्वप्रसिद्ध था।[2] सिद्धपुरमें रुद्रमहालयका निर्माण कर मूलराजने उत्तरी गुजरातमे भी शैवमतका बीजारोपण किया। सिद्धराज जयसिंहके समय भी शैव मतकी अत्यधिक उन्नति हुई। उसने सहस्रलिंग तालावका निर्माण करा उसके चतुर्दिक मन्दिरोमें एक सहस्र शिवलिंगोकी स्थापना करायी। इतना ही नही, झीलके चारो ओर अन्य देवी-देवताओंके मन्दिरोंका भी उसने निर्माण कराया।[3] निश्चय ही कुमारपालने जयसिंह सिद्धराजकी भाति शैवधर्म-को राजसरक्षण नही प्रदान किया और उसका झुकाव जैनधर्मकी ओर ही अधिक था। फिर भी हेमचन्द्रने लिखा है कि कुमारपालने अनहिलवाड़ामे कुमारपालेश्वर नामक शिवमन्दिरकी स्थापना की।[4] इसके अतिरिक्त उसने सोमनाथके मन्दिरका पुनर्निर्माण कराया तथा केदार मन्दिरको बनवानेका आदेश भागवतको दिया।[5] उसके उत्तराधिकारी अजयपालने शैवधर्मका प्रचार-प्रसार बडे उत्साहसे किया। इस समयसे लेकर चौलुक्य-वंशके अन्त तक शैवधर्मको राज्य समर्थन एवं सरक्षण प्राप्त रहा।

---

[1]हेमचन्द्रके द्वयाश्रय काव्यमें जो चौलुक्यकालीन गुजरातकी प्रामाणिक रचना है, मूलराजसे जयसिंह सिद्धराज तकके वर्णनमें जैनधर्मका कहीं नामोल्लेख भी नहीं मिलता।

[2]द्वयाश्रयमें मूलराजकी सोमनाथ यात्राका उल्लेख है। भिल्लरी शिलालेखके अनुसार लक्ष्मण राजा ई० सन ९६०में सोमेश्वरकी आराधना करने गया था। इपि० इंडि० : खंड १, पृ० २६८।

[3]द्वयाश्रय : सर्ग १५, श्लोक ११४, १२२ तथा अप्रकाशित "सरस्वती पुराण"।

[4]वही, सर्ग २०, श्लोक १०१।

[5]द्वयाश्रय महाकाव्य : सर्ग २०, श्लोक ९५।

शैवमतका प्राधान्य

इस संक्षिप्त सिंहावलोकनके पश्चात् इस निर्णयपर पहुंचना उचित होगा कि कुमारपालके जैनधर्ममें दीक्षित होनेके पूर्व शैवधर्म ही राज्यधर्म था। कुमारपाल अपने उत्तरार्व जीवनमें जैनधर्मको मुख्य मानने लगा था। सिद्धराजके इष्टदेव अन्त तक शिव ही थे किन्तु कुमारपालके इष्टदेव पिछले जीवनमें जिन थे।[1] कुमारपालके शासनकालमें भी शैव सम्प्रदायकी अवनति नहीं हुई। इस बातके प्रमाण मिलते हैं कि शैव और जैनधर्म दोनों साथ-साथ फल-फूल रहे थे। प्रबन्धचिन्तामणिके अनुसार हेमाचार्यके गुरु देवसूरिसे जब कुमारपालने पूछा कि उसका नाम किस प्रकार चिरस्मरणीय हो सकता है तो देवसूरिने उत्तर दिया—'समुद्रकी लहरोंसे ध्वस्त सोमनाथके काष्ठ मन्दिरका ऐसा नवीन निर्माण कराओ जो एक युग तक ठीक रहे।' कुमारपालने मन्दिर निर्माण करना स्वीकार किया तथा सोमनाथ स्थित राज्याधिकारी गडभाव बृहस्पतिकी अध्यक्षतामें एक पंचकुल अथवा मन्दिर निर्माण समितिका संघटन किया।[2]

भावबृहस्पतिकी प्रशस्तिमें यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि "कामके शत्रु सोमनाथके मन्दिरको ध्वस्त देखकर उसने (कुमारपालने) देवमन्दिरके पुनर्निर्माणकी आज्ञा दी।" कुमारपालने जब मन्दिरके शिलान्यासका समाचार सुना तो हेमचन्द्रके आदेशके अनुसार यह प्रतिज्ञा की कि जब तक मन्दिरका पूर्ण निर्माण न हो जायगा तब तक वह व्यसनादिका त्याग रखेगा। अपनी इस प्रतिज्ञाकी साक्षीके लिए उसने हाथमे जल लेकर नीलकठ महादेवपर छोड़ा, जो सम्भवत. उसके इष्टदेव थे। दो वर्षोंमें मन्दिर बनकर तैयार हो गया और उसपर पताका फहराने लगी। हेमाचार्यने

---

[1]राजर्षि कुमारपाल, पृ० ६।

[2]प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश।

राजासे उस समय तक अपनी प्रतिज्ञा न तोड़नेका परामर्श दिया जब तक नवीन मन्दिरमें वह देवका दर्शन नही कर आता। राजाने यह स्वीकार किया और सोमनाथ गया। हेमाचार्य भी पहले ही पैदल रवाना हुए और शत्रुंजय तथा गिरनार हो आनेके बाद सोमनाथ आनेका भी वचन दिया। सोमनाथ पहुंचनेपर कुमारपालका भव्य स्वागत वहाके राज्याधिकारी गड बृहस्पतिने सोमनाथकी जनता तथा मन्दिर निर्माण समितिकी ओरसे किया। कुमारपालकी राज-सवारी नगरके मुख्य मार्गोसे होती हुई, सोमनाथ महादेवके नवनिर्मित मन्दिर तक निकाली गयी। मन्दिरकी सीढियोपर राजाने अपना मस्तक नत किया। गडबृहस्पतिके निर्देशनके अनुसार उसने देवका पूजन कर, हाथियो और अन्य बहुमूल्य वस्तुओंकी भेंट रखी। उसने सिक्को द्वारा अपना तुलादान भी किया और वह समस्त धनराशि मन्दिरमें अर्पित कर दी। इसके पश्चात् कुमारपाल अणहिलपुर वापस लौटा।[१]

फोर्वस् लिखता है कि वृणराज तथा उसके उत्तराधिकारी सिद्धराज जयसिंह और उसके बाद कुमारपाल, (उस समय तक जब कि कुमारपालने हेमचन्द्राचार्यसे अर्हतके सिद्धान्तोको ग्रहण न किया था) शैव मतावलम्बी थे।[२] कुमारपालने, केवल सोमनाथका नवीन मन्दिर निर्माण ही न कराया अपितु शैवधर्मके प्रति अपनी श्रद्धा, चित्तौर तथा उदयपुर (ग्वालियर) स्थित समिद्धेश्वर और उदयलीश्वरके शिवमन्दिरोको दानमें ग्राम देकर भी प्रकट की थी। कुमारपाल जीवनके उत्तरकालमे जैनधर्ममें दीक्षित हो जानेपर भी शैवमतका सरक्षक था, इसका प्रमाण चित्तौरगढ उत्कीर्ण लेख द्वारा मिलता है। इस शिलालेखका प्रारम्भ जैनदर्शनके 'ओम नमः सर्वज्ञ' तथा साथ ही शिव प्रार्थनासे होता है। इसमे इस घटनाका भी उल्लेख है कि शाकभरी भूपालसे जब वह युद्ध करने जा रहा था तब उसने

---

[१]प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश।

[२]रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

चित्रकूट पर्वतपर स्थित समिद्धेश्वर महादेवका पूजन किया था और भेंटके अतिरिक्त एक ग्राम दान भी किया था।[1] इसीप्रकार उदयपुर प्रस्तर लेखमें उदयपुर नगरके उदयलीश्वर मन्दिरमें महाराजपुत्र वसन्तपाल द्वारा दान दिये जानेका उल्लेख है। यह शिलालेख शाकंभरी तथा अवन्तिराजको पराजित करनेवाले अनहिलपाठकके राजा कुमारपालके शासनकालका है।[2] कुमारपाल जीवनके प्रारम्भमें शिवका अनन्य भक्त था, इस तथ्यकी पुष्टि उसके बहुसंख्यक शिलालेखों द्वारा होती है जिनमें उसे उमापति शिवका प्यारा "उमापति वरलब्ध" कहा गया है।[3] इसप्रकार अपने पूर्वजोंकी भांति कुमारपाल, शासनकालके प्रारम्भमें शिवका पक्का भक्त था और जनसंख्याका बहुत बडा दल भी इसी धर्म मार्गका अनुयायी था।

जैनधर्मका उदय और उत्कर्ष

जैनसूत्र तथा साहित्यका दावा है कि यहां अतीत प्राचीनकालसे जैनधर्मका प्रसार था।[4] सम्भव है कि गुजरात तथा काठियावाड़में जैन-धर्मकी प्रथम लहर ईसा पूर्व चौथी शताब्दीमें उस समय फैली जब भद्रबाहु दक्षिणकी ओर गये थे।[5] चालुक्योंके अधीन गुजरातमें जैनधर्मके प्रसारका

---

[1] इपि० इंडि० : ४१२, सूची संख्या २७९।

[2] इंडि० ऐंटी० : खंड १८, पृ० ३४१-४३।

[3] आर्कलाजिकल सर्वे आव इंडिया वेस्टर्न सरकिल, १९०८, पृ० ५१, ५२। वही, ४४, ४५, पूना ओरयंटलिस्ट खंड १, उपखंड २, पृ० ४०, इपि० इंडि०—खंड ११, पृ० ४४ आदि आदि।

[4] संकालिया : दि ग्रेट रिननशियेसन आव नेमिनाथ, इंडियन हिस्टा-रिकल क्वाटरली, जून १९४०।

[5] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय ११, पृ० २३३।

पता किसी प्राचीन ऐतिहासिक भवन या लेखादिसे नहीं प्राप्त होता। अवश्य ही कर्नाटकमें प्राचीनकालसे दिगम्बर जैनधर्मका प्रचार था।[1] चौलुक्यकालमें गुजरात श्वेताम्बर जैनधर्मका सबसे बड़ा केन्द्र बना। हरिभद्रने आठवीं शताब्दीमें इस सम्प्रदायकी प्रमुखता और प्रसिद्धि करायी।[2] राजपूताना और उत्तरी गुजरातमें जैनधर्मके प्रचारका पता उन जैनमन्दिरसे भी लगता है जो दसवी शतीमें हस्तिकुडी वशके राष्ट्रकूट राजा विदग्धराज द्वारा बनवाया गया था। चावड़ वंशके सस्थापक वनराजका पालन पोषण एक जैनसूरिने किया था, इससे भी जैनधर्मके प्राचीन प्रचलनकी स्थिति विदित होती है।

जो हो, महर्षि हेमचन्द्रके कालमें गुजरातमें जैनधर्मकी स्थिति अत्यधिक सुदृढ़ ही न हुई अपितु कुछ समयके लिए यह राज्यधर्म भी बन गया। यह किस प्रकार हुआ, इसका विवरण जैनमुनि हेमचन्द्राचार्य द्वारा ही विदित होता है। वह अपने द्वयाश्रय काव्यमें लिखते हैं कि वास्तवमे पहलेके राजाओमे जैनधर्मके प्रति विशेष उत्साह नही था। समय-समयपर भले ही उनकी सदिच्छा इस धर्मके प्रति जाग्रत हुई हो और उन्होने जैनमन्दिरोके निर्माण भी कराये हो, किन्तु इससे यह अर्थ कदापि नही लिया जा सकता था कि वे राजे जैन थे। इन राजाओंके शैव होनेपर भी जैनधर्मपर उनकी आदरदृष्टि थी। विद्वान जैन आचार्य, राजाओके पास निरन्तर आते रहते थे और राजा लोग भी अपने गुरुओंके समान ही उन्हे आदर करते थे। शैवधर्मके आदर्श प्रतिनिधि सिद्धराज भी जैनोंसे काफी सम्बन्धित थे। सिद्धपुरमें रुद्रमहालयके साथ-साथ उसने 'रायविहार' नामक आदि-नाथका जैनमन्दिर भी बनवाया था। गिरनार पर्वतपर नेमिनाथका जो मुख्य जैन-मन्दिर आज विद्यमान है, वह भी सिद्धराजकी उदारताका

[1]विंटरनित्स : हिस्ट्री आव इंडियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ४३१।
[2]आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय ११, पृ० २३५।

ही फल हैं। शत्रुंजय तीर्थका खर्च चलानेके लिए उसने बारह गांव उसके साथ लगा देनेके लिए अपने महामात्य अश्वाकको आज्ञा दी थी।[1] हाँ यह अवश्य है कि हेमचन्द्रने इसका उल्लेख किया है कि जयसिंह सिद्धराज, जब सोमनाथसे यात्रा कर लौट रहे थे तो उन्होंने नेमिनाथका पूजन-वन्दन किया था।[2] जयसिंह सिद्धराजने सिद्धपुरमें महावीरका एक चैत्य भी बनवाया था।[3] किन्तु इससे यही पता चलता है कि गुजरातमें जैनधर्मके व्यापक प्रचार-प्रसारके लिए उपयुक्त वातावरण बन चुका था। कुमारपालके राजत्वकालमें जैनधर्मको राज्य संरक्षण तो मिला ही साथ ही सम्पूर्ण गुजरातमे इसका व्यापक प्रसार भी हुआ। कुमारपालने जैनधर्म स्वीकारकर ऐसी अहिंसा नीतिका राज्यभरमे प्रवर्तन किया, जिसने देशके भावी इतिहासको प्रभावित किया और जिसकी स्पष्ट छाप आज भी भारतीय जीवन और संस्कृतिपर दृष्टिगोचर होती है।

आचार्य हेमचन्द्र और कुमारपाल

कुमारपालप्रतिबोधके लेखकका कथन है कि जैनधर्मके इतिहासमें महर्षि हेमचन्द्रका व्यक्तित्व महान है। जैनधर्मावलम्बियो तथा आचार्योंमें उनका बहुत उच्च स्थान है। हेमचन्द्रने जैनधर्मके उत्कर्षके लिए महान आचार्यका कार्य किया। वह अपने समयके महापंडित भी थे। इसी पांडित्यपर विमुग्ध होकर राजा जयसिंह सिद्धराज उनसे सभी शास्त्रीय प्रश्नोपर परामर्श लेकर पूर्णतया सन्तुष्ट हो जाते थे। यह हेमचन्द्रकी शिक्षा तथा उपदेशका ही प्रभाव था कि सिद्धराज जैनधर्मके प्रति आकृष्ट हुए और उन्होने एक जैनमन्दिरका निर्माण कराया। हेमचन्द्रके प्रति

---

[1] मुनिजिनविजय : राजर्षि कुमारपाल, पृ० ६।

[2] द्वयाश्रय काव्य : सर्ग १५, श्लोक ६९, ७५।

[3] वही, श्लोक १६।

राजाका ऐसा भाव हो गया था कि जब तक वह उनके अमृत समान उपदेशका श्रवण न कर लेते थे, उन्हें प्रसन्नताका अनुभव ही न होता था।[१] कहा जाता है कि मन्त्री वहडने कुमारपालसे कहा कि यदि वह सच्चे धर्मकी संप्राप्ति करना चाहता हो तो उसे श्रद्धायुक्त होकर आचार्य हेमचन्द्रके पास जाना चाहिये। अपने मन्त्रीके परामर्शानुसार कुमारपाल हेमचन्द्रसे उपदेश ग्रहण करने लगा।[२] पहले हेमचन्द्रने पशुहिंसा, द्यूत, मांसाहार, मद्यपान, वेश्यागमन तथा लूटपाटकी बुराइयोंको दिखानेवाली कथाओं द्वारा कुमारपालको उपदेश दिया। उसने कुमारपालसे राजाज्ञा निकालकर राज्यमे इनका निषेध करनेकी भी प्रेरणा की। तब उसने जैनधर्मके अनुसार सत्यदेव, सत्यगुरु और सत्यधर्मका उपदेश करते हुए असत्‌देव, असत्‌गुरु तथा असत्‌धर्मकी बुराइयोको दिखाया।[३] इसप्रकार कुमारपाल शनै-शनै. जैनधर्मका भक्त हो गया और इसके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करनेके निमित्त उसने विभिन्न स्थानोमे जैनमन्दिरोंका निर्माण कराया। पहले उसने पाटनमे मन्त्री वहड और वयड वशके गर्गसेठके सर्वदेव तथा सावसेठ नामक दो पुत्रोंके निरीक्षणमे कुमारपाल विहार नामक भव्य मन्दिर बनवाया।[४] इस विहारके मुख्य मन्दिरमे उसने श्वेत सगमरमरकी विशाल

---

[१]बुह यण चूड़ामणिणो भुवन पसिद्धस्य सिद्धरायस्स।
संसय पएसु सव्वेसु पुच्छणिज्जो इयो जाओ॥
जयसिंह देव-वयणा निम्मियं सिद्धहेम वागरणं
नीसेस-सह-लक्खण निहाण मिमिणा मुणिवेण।
—कुमारपालप्रतिबोध, पृ० २२।

[२]इय सम्मं धम्म-सरुप-साहगो साहियो अमच्चेणं
तो हेमचन्द सूरिं कुमर-नरिंदो न मइ निच्चं।—कुमारपालप्रतिबोध।

[३]वही, पृ० ४०, ११४।

[४]वाऊण य आएसं "कुमर विहारो" करावियोएत्थ
अ्ठावओ व्व रम्मो चउवीस-जिणालयो तुंगो। वही, पृ० ११३।

पार्श्वनाथकी मूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा की और साथके अन्य चौबिस मन्दिरोंमें चौबिस तीर्थंकरोकी स्वर्ण, रजत तथा पीतलकी मूर्तियां प्रतिष्ठापित कीं। इसके पश्चात् कुमारपालने इससे भी विशाल एवं भव्य त्रिभुवन विहार नामक मन्दिरका निर्माण कराया। इसके साथके बहत्तर छोटे मन्दिरोंमे विभिन्न तीर्थंकरोंकी मूर्तिया स्थापित की गयी। इस मन्दिरका शिखर भाग स्वर्ण मंडित था। केन्द्रीय मन्दिरमे तीर्थंकर नेमिनाथकी अत्यन्त भव्य मूर्ति प्रतिष्ठित थी। विभिन्न बहत्तर छोटे मन्दिरोमें अन्य तीर्थंकरोकी पीतल धातुकी बहत्तर मूर्तिया स्थापित थी। इनके अतिरिक्त केवल पाटनमे ही कुमारपालने चौबिस तीर्थंकरोके चौबिस मन्दिर बनवाये। इनमें त्रिविहार मन्दिर प्रमुख था। पाटनके बाहर अपने राज्यके विभिन्न स्थानोमे भी कुमारपालने इतनी अधिक सख्यामे जैनमन्दिरोका निर्माण कराया, जिसकी ठीक-ठीक सख्या निश्चित करना भी कठिन है। इनमें तारगा पहाडीपर सुबेदार अभयके पुत्र जसदेवके निरीक्षणमे निर्मित अजित-नाथका विशाल कलामण्डित मन्दिर विशेषरूपसे उल्लेखनीय है।[1]

शिलालेखोंकी साक्षी

कुमारपालने अपने आध्यात्मिक गुरु हेमचन्द्रसे विक्रम सवत् १२१६में सकल जन समक्ष जैनधर्मकी दीक्षा ली थी और कुमार विहारका निर्माण कराया था, इसका उल्लेख केवल विभिन्न जैनग्रन्थोमें ही नही, शिलालेख तथा अभिलेखोंमें भी मिलता है। विक्रम सवत् १२४२के जालोर शिला-लेखमें लिखा है कि "कुमार विहार"मे पार्श्वनाथका मूलबिम्ब प्रतिष्ठित था। इसकी स्थापना परमअर्हत, गुर्जरधराधीश महाराजाधिराज चौलुक्य कुमारपालने जावालीपुर (आधुनिक जालोर)के कचनगिरि किलेमे प्रभु हेमसूरिसे दीक्षा लेनेके उपरान्त की थी। सोलंकी राजा कुमारपालने

---

[1]कुमारपालप्रतिबोध : पृ० १४३, १७४।

इसका निर्माण कराया था और इसीलिए उसके नामपर इसका नामकरण "कुमार विहार" रखा गया।[1]

जैन समारोहोंका आयोजन

कुमारपालने इन मन्दिरोका निर्माण कर जैनधर्मके प्रति अपने कर्त्तव्यकी इतिश्रीका अनुभव कर लिया हो, ऐसी बात नही। जैनधर्मके सच्चे अनुयायी और साधककी भांति वह जैनमन्दिरोमें जाकर मूर्तियोके समक्ष आराधन भी करता था। धर्मकी महत्ताका प्रभाव जनतापर डालनेके लिए वह बड़े समारोहपूर्वक अष्टान्हिका महोत्सवका आयोजन कराता था। प्रतिवर्ष चैत्र तथा आश्विन शुक्लपक्षके अन्तिम सप्ताहमें पाटनके प्रसिद्ध "कुमार विहार"मे यह समारोह मनाया जाता था। उत्सवके अन्तिम दिन सन्ध्या समय हाथियों द्वारा चलनेवाले विशाल रथमे पार्श्व-नाथकी सवारी नगरसे होती हुई राजप्रासाद जाती थी। इसमे राजाके उच्च अधिकारी तथा प्रमुख नागरिक भी सम्मिलित रहते थे। चारों ओर जनसमूह नृत्य और गायन करता रहता था और इस हर्षोल्लासपूर्ण वातावरणके मध्य राजा स्वयं जाकर मूर्तिकी पूजा करता था। रात्रिमें रथ, राजप्रासादमें ही रहता था और प्रातः राजप्रासादके द्वारपर निर्मित विशाल मैदानमें चला जाता था। यहां राजा भी उपस्थित रहता था। राजा द्वारा पूजन-अर्चनके पश्चात् रथ नगरके प्रमुख मार्गोंसे होकर जाता था। मार्गमे बनाये गये मैदानोंमें ठहरता हुआ यह रथ अपने मूलस्थानको

---

[1]. . . .संवत १२२१ श्रीजावालिपुरीय कांचनगि(ग)रि गढ़स्योपरि प्रभु श्रीहेमसूरि प्रबोधित गुर्जरधराधीश्वर परमार्हत चौलुक्य महारा(ज)ाधिराज श्री(कु)मारपाल देव कारिते श्रीपा(र्श्व)नाथ सत्कमू(ल) बिंब सहित श्रीकुवर विहाराभिधाने जैन चैत्ये (।) सद्विधि प्रव (र्त्त)नाय. . . . इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ५४, ५५।

लौट आता था।[1] राजा स्वयं तो यह समारोह मनाता ही था साथ ही अपने अधीनस्थोंको भी इसका समारोहपूर्वक आयोजन करनेका आदेश देता था। अधीनस्थ राजाओंने भी अपने-अपने नगरोंमे विहारोंका निर्माण कराया।

इस समारोहका विस्तृत विवरण सोमप्रभाचार्यने ही केवल नही किया है अपितु अन्य ग्रन्थोंमें भी इसका उल्लेख आया है। नाटककार यशपालने रथके इस महोत्सवको, अपने नाटकमें—जिसका नायक कुमारपाल है, रथयात्रा महोत्सव कहा है। इसमें नागरिकोंको सूचना दी जाती है कि महाराज कुमारपालदेवने रथयात्रा महोत्सव मनानेकी आज्ञा की है, इसलिए समारोहकी समस्त तैयारी होनी चाहिये।[2] हेमचन्द्रके महावीरचरित्रमें भी इस रथयात्रा महोत्सवका विवरण मिलता है।[3]

---

[1]प्रेंखन्मडपकुल्ल सवध्वजपटं नृत्यद्वघूममंडलं
वन्वन्मन्वमुवंचंचुंच्चकवली स्तम्भं स्फुरत्तोरणम्।
विष्वग्जैनरथोत्सवे पुरमिवं व्यालोकितुं कौतुका-
ल्लोका नेत्र सहस्र निर्मितकृते चर्कुर्विधे प्रार्थनाम्।
—कुमारपालप्रतिबोध, पृ० १७५।

[2]भो भोः पौराः महाराज श्रीकुमारपालदेवो युष्मानाज्ञापयति। यज्जिन रथयात्रा महोत्सवोभविष्यति। ततः—
पौराः! कुर्यविपणिपवीमस्त पांशु पयोभि
र्मुक्ता हारै रचिर वसनैर्हट्ट शोभां विदध्युः
स्थाने स्थाने कनक कलशान् स्थापयेयुर्भवन्तः
पंडस्त्रीभिः सुरगृहसखान् मंचकान भूषयेयुः।—
मोहराजपराजय, चतुर्थ अंक, श्लोक १९।

[3]प्रतिग्रामं प्रतिपुरमासमुद्रं महीतले
रथयात्रोत्सवं सोऽर्हत्प्रतिमानां करिष्यति।—
महावीरचरित्रः सर्ग १२, श्लोक ७६।

कुमारपालकी सौराष्ट्र तीर्थ-यात्रा

एक समय जैनयात्रियोंका एक दल सौराष्ट्र (काठियावाड़)के मन्दिरोंकी तीर्थयात्राके लिए जाता हुआ पाटनमें ठहरा। यह देख कुमारपालके मनमें भी ऐसी ही तीर्थयात्राकी इच्छा उत्पन्न हुई। एक बड़ी सेनाके साथ आचार्य हेमचन्द्र एव जैन समाजके सहित कुमारपालने सौराष्ट्रकी यात्रा की। इस तीर्थयात्राके प्रसंगमें वह गिरनार (जूनागढ़) ठहरा, किन्तु शारीरिक निर्बलताके कारण[1] वह पर्वतके ऊपर न जा सका। इसलिए उसने अपने मन्त्रियोंको पूजनके लिए भेजा। यहांसे सारा दल शत्रुंजय पहाडीपर स्थित ऋषभदेवके मन्दिरकी ओर अग्रसर हुआ। कुमारपालके आगमनके पूर्व राजाकी आज्ञासे मन्त्री वहड द्वारा इस मन्दिरकी आवश्यक मरम्मत हुई थी। इस तीर्थयात्राके पश्चात् कुमारपाल राजधानी वापस आया। जब वह लौटा तो उसे गिरनार पर्वतपर न चढ सकनेका अत्यन्त खेद रहा। उसने इस आशयका आदेश जारी किया कि उक्त पहाडीपर सीढ़िया बनायी जाय। कवि सिद्धपालके सुझावपर उसने अमरको सौराष्ट्रका सूबेदार नियुक्त कर यह कार्य सौंपा। प्रबन्धचिन्तामणि[2] तथा पुरातन प्रबन्धसग्रहमे भी कुमारपालकी इस तीर्थयात्राका विस्तृत विवरण मिलता है।

कुमारपालकी जैनधर्ममें दीक्षा

आचार्य हेमचन्द्रने कुमारपालके समक्ष जैनधर्मकी द्वादश प्रतिज्ञाएं रखते हुए प्राचीनकालके महान जैनसन्तों, आनन्द तथा कामदेवके साथ ही तत्कालीन पाटनके सबसे धनी जैनचड्डुआका उदाहरण दिया। राजाने

---

[1] "चलियो कुमारवालो सत्तुंजय तित्थ नमणत्थ
कुमारपालप्रतिबोध, पृ० १७९।

[2] प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ९३।

अगाध श्रद्धाके साथ सभी प्रतिज्ञाएं की और इसप्रकार पूर्णतया जैनधर्ममें दीक्षित हो गया। राजा सर्वदा असीम भक्तिके सहित प्रसिद्ध जैन नमस्कार मन्त्रका पाठ करता था और कहा करता था कि जो वस्तु वह अपनी शक्तिशाली सेनासे नही प्राप्त कर सकता था, वह केवल इस मन्त्रके उच्चारणसे सुलभ हो जाती थी। इस मन्त्रकी शक्तिमें उसकी इतनी अगाध श्रद्धा थी कि इससे उसके शत्रुओका दमन होता था। गृहयुद्ध तथा विदेशी आक्रमणका संकट दूर होता और उसके राज्यमें कभी अकाल नही पडता था।[1]

जयसिंह रचित कुमारपालचरितके पाचसे लेकर दस सर्गोमे उन परिस्थितियोका वर्णन किया गया है, जिनके कारण वह जैनधर्ममे दीक्षित और जैनधर्मके प्रसार-प्रचारमें प्रवृत्त हुआ। इसमे कहा गया है कि आचार्य हेमचन्द्रके कथनपर उसने सर्वप्रथम मास तथा मदिराका त्याग किया।[2] इसके पश्चात् हेमचन्द्रके आदेशानुसार राजा कुमारपाल उसके साथ सोमनाथ गया। हेमचन्द्रने शिवका आह्वान किया और शिवने प्रकट होकर जैनधर्मकी प्रशसा की। फलस्वरूप कुमारपालने अभक्ष नियमको स्वीकार किया तथा जैनधर्मके गूढ सिद्धान्तोपर अपना ध्यान केन्द्रित किया। दीक्षा धारण करते समय उसने मुख्यरूपसे निम्नलिखित प्रतिज्ञाएं की थी—राजरक्षा निमित्त युद्धके अतिरिक्त यावत् जीवन किसी प्राणीकी हिंसा और आखेट न करना। मद्यमासका सेवन त्याज्य समझना। नित्य जिनप्रतिमाका पूजन-अर्चन करना। अष्टमी और चतुर्दशीके सामयिक और पौषध आदि विशेष व्रतोका पालन करना तथा रात्रिको भोजन न करना आदि-आदि।

जयसिंहने आगामी अध्यायमें हेमचन्द्र तथा कुमारपालके मध्य एक

---

[1] पुरातनप्रबन्धसंग्रह, पृ० ४२, ४३।

[2] कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ३१६-४१५।

धार्मिक वादविवाद कराया है। सातवें सर्गमें हमें विदित होता है कि उसने हेमचन्द्रसे श्रद्धाधर्म स्वीकार कर राज्यमें पशुहत्यापर प्रतिबन्ध लगाया था।[1] इस ग्रन्थके रचयिताका कथन है कि यह आज्ञा सौराष्ट्र, लाट, मालवा, आभीकमेदापाट, मारी तथा सपादलक्षदेशमें लागू हो गयी थी।[2] इस आज्ञाका इतनी कठोरतासे पालन होता था कि सपादलक्षके एक व्यापारीने राक्षसके समान रक्त चूसनेवाले एक कीड़ेकी हत्या कर दी तो उसे चोरकी भांति पकड़ लिया गया और उसे यूक विहारके शिलान्यासके लिए समस्त सम्पत्ति त्याग देनेके लिए बाध्य होना पड़ा।[3]

किराडू शिलालेखमें जो कुमारपालके समयका है, यह लिखा है कि शिवरात्रि चतुर्दशी तथा कतिपय अन्य निश्चित दिनोंमें कुमारपालने राजाज्ञा निकालकर पशुवधका निषेध कर दिया था। राजपरिवारका सदस्य आर्थिक दंड देकर तथा साधारण व्यक्ति प्राणदंडके लिए प्रस्तुत होकर ही उपर्युक्त दिन किसी पशुकी हत्या कर सकता था।[4] इसी आशयका आदेश रत्नापुरी नगरके एक शिलालेखमें भी प्राप्त हुआ है।[5] इस शिलालेखमे गिरिजादेवीकी उस निषेधाज्ञाका उल्लेख है, जिसमे विशेष तिथियोको पशुवधपर प्रतिबन्ध लगा था। इस आज्ञाका उल्लंघन करनेवालोके लिए अर्थदंडकी व्यवस्था थी। नवरात्रमें बकरियोका वध रोक दिया गया था और कुमारपालने अपने मन्त्रियोंको पशुहिंसा रोकनेके लिए काशी भेजा। जयसिंह कृत कुमारपालचरितके आठवें और नवे सर्गमे विभिन्न जैन तीर्थोंकी यात्रा तथा चैत्यो और मन्दिरोके निर्माणका वर्णन है। दसवें

---

[1] जयसिंह : कुमारपालचरित, ७वां अध्याय, ५७७।

[2] वही, ५८१-८२।

[3] वही, ५८८।

[4] इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४४।

[5] बी० पी० एस० आई०, २०५-७, सूची संख्या १५२३।

सर्गमें राजा कुमारपाल अपने गुरुको "कलिकाल सर्वज्ञ"की उपाधि प्रदान करता है।[1]

यशपालके तत्कालीन नाटक मोहराजपराजयमें भी कुमारपालके जैनधर्ममें दीक्षित होनेकी चर्चा आयी है। इस नाटकमें कुमारपालने चार व्यसनोंपर जो प्रतिबन्ध लगाया था, उसपर विशेष प्रकाश डाला गया है। राज्य द्वारा नि.सन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर अधिकार करनेका जो प्राचीन और परम्परागत नियम चला आ रहा था उसका कुमारपालने निषेध कर दिया था, इसका भी इस नाटकमें उल्लेख हुआ है।[2] नाटकमें राजा अपने दंडपाशिकको द्यूत, मांसाहार, मदिरापान, हत्या-लूट तथा खाद्यपदार्थोंमें मिलावटकी अवैध पद्धतिके दमन और विनाशका आदेश देता है।[3] यह आश्चर्यकी बात है कि वेश्या व्यसन तत्कालीन गुजरातमें गम्भीर पाप न समझा जाता था।[4]

जैनधर्म दीक्षाकी समीक्षा

समस्त जैन ग्रन्थकार कुमारपालके जैनधर्म की दीक्षा लेने के विवरण-पर एकमत है। शिलालेखादिके उल्लेखोंके आधारपर यह स्वीकार करना होगा कि उक्त वर्णन, सत्य और ऐतिहासिक घटनाके ही बोधक है। किराडू[5] तथा रत्नपुरा[6] शिलालेख विशेष तिथियोंपर पशुवधका प्रतिषेध

---

[1]कुमारपालचरित : सर्ग १०, १०६। उसने परमार्हतकी उपाधि भी प्रदान की थी।

[2]मोहराजपराजयः अंक ४ तथा ५।

[3]वही, अंक ४।

[4]वही।

[5]इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४४।

[6]बी० पी० एस० आई० : २०५-७।

करते हैं तो जालोर शिलालेखमें कुमारपालको परमार्हत कहा गया है।[1] इतना होते हुए भी इस तथ्यके प्रमाण मिलते हैं कि कुमारपालने अपने परम्परागत शैवधर्मका कभी तिरस्कार नहीं किया न उसके प्रति अपनी आदर श्रद्धाकी भावनाका ही परित्याग किया। जैन ग्रन्थकारोंने भी लिखा है कि कुमारपाल सोमेश्वरकी आराधना करता था और उसने सोमनाथका मन्दिर निर्मित कराया था।[2]

वेरावल शिलालेखमें कुमारपालको "महेश्वर नृप" कहा गया है। यह शिलालेख सन् ११६९का है और इसीके कुछ वर्ष बाद ही सन् ११७४में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके अधिकांश शिलालेखोंमें शिवकी प्रार्थना अंकित हैं, तो अनेकमें जैनदेवताओंकी प्रार्थना भी मिलती है। विक्रम संवत् १२४२के जालोर शिलालेखमें उसे 'परमअर्हत' कहा गया है। चित्तौरगढ उत्कीर्ण लेखके प्रारम्भमें ही 'ओम नमः सर्वज्ञ' तथा साथ ही शिवकी प्रार्थना मिलती है।[3] जैन इतिहासोंमें हेमचन्द्रके प्रभावके प्रति ब्राह्मणोंके द्वेषकी भी चर्चा आयी है। इस संघर्षमें ब्राह्मण सदा पीछे पड़ जाते थे और राजाके कोपभाजन ब्राह्मणोंकी रक्षा दयालु हेमचन्द्र द्वारा ही होती थी। किन्तु जैनोंके साथ राजाके पक्षपातकी बात सन्देहास्पद है। वह समानभावसे शैवों और जैनोंका आदर करता था। कुमारपाल जैन सिद्धान्तोंको हार्दिकतासे स्वीकार करता था और उसके अनुसार

---

[1]इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ५४-५५। "हेमसूरिप्रबोधित गुर्जरधराधीश्वर परमार्हत चौलुक्य महाराजाधिराज श्रीकुमारपालदेवा"।

[2]द्वयाश्रयकाव्यमें अनहिलवाड़ामें कुमारपालेश्वर महादेवके मन्दिरके निर्माणका उल्लेख है। केदारेश्वर मन्दिरका पुनर्निर्माण भी कराया गया था। वही। मन्दिरोंकी मरम्मतके सम्बन्धमें देखिये वसन्तविलास, ३:२६।

[3]इपि० इंडि० : ४१२, सूची संख्या २७९।

व्यवहारिक जीवनमें आचरण भी करता था। उसने जैनधर्म प्रतिपादित उपासक अर्थात् गृहस्थ-श्रावक धर्मका दृढ़ताके साथ पालन किया। ऐतिहासिककालमें कुमारपालके सदृश्य जैनधर्मका अनुयायी राजा शायद ही कोई हुआ हो।[1] इस प्रकार जैनधर्ममें कुमारपालका दीक्षित होना मुख्यतः उसकी आन्तरिक श्रद्धा और विश्वास भावनाका ही परिणाम था। यों तो अणहिलपुरके संस्थापक वनराज चावडासे लेकर सिद्धराज जयसिंहके राज्यकाल तक प्रजावर्गमे जैनोकी प्रतिष्ठा और प्रतिभा, समाज तथा राजनीति दोनोको प्रभावित कर रही थी, किन्तु कुमारपालके शासनकालमे उनका प्रामुख्य और प्राधान्य हुआ। महर्षि हेमचन्द्राचार्य मोढ बनिया थे और महात्मात्य उदयन भी श्रीमाली जातिके सम्पन्न उद्योगपति थे।[2] बारहवी शताब्दीके गुजरातमें शैव और जैनधर्मोंमें जैसी परम्परागत सहिष्णुता चली आ रही थी, उसे ध्यानमे रखकर यह कभी नही स्वीकार किया जा सकता कि जैन कुबेर और लक्षाधिपतियोके किसी प्रभाव विशेष अथवा दबावके कारण उसने जैनधर्म स्वीकार कर, उसे राजधर्म घोषित किया था। हेमचन्द्राचार्य द्वारा जैनधर्ममें कुमारपालकी दीक्षाके मूलमें उसकी अपनी श्रद्धा और जैनधर्मके सिद्धान्तोंके प्रति उसके हार्दिक विश्वास ही प्रधान कारण थे।

अन्य धार्मिक सम्प्रदाय

इन दो प्रमुख धार्मिक सम्प्रदायोके अतिरिक्त देशमें अन्य धार्मिक सम्प्रदायोंका भी अस्तित्व था। चौलुक्यकालमें सूर्यपूजा भी प्रचलित थी, यद्यपि इस समयके राजा सूर्यके प्रति भक्तिव्यक्त करनेवाला विरुद धारण नही करते थे। द्वयाश्रयमें जयसिंह द्वारा अनेक देवी-देवताओके

---

[1] मुनिजिनविजय : राजर्षि कुमारपाल, पृ० १२।

[2] प्रबन्धचिन्तामणि, पृ० ८२। इसी ग्रन्थमें जैनदल द्वारा कुमारपालको सिंहासनारूढ़ करनेमें योग देनेका प्रसंग वर्णित है।

मन्दिर बनवानेका उल्लेख है किन्तु इनमें सूर्यका मन्दिर नहीं है। अप्रकाशित सरस्वतीपुराणमें सूर्य मन्दिरका उल्लेख है, जो मायाल स्वामीके नामसे प्रसिद्ध था। कहते हैं कि सहस्रलिंग तालाबपर जब यह स्थित था तो जयसिंह सिद्धराज इसकी आराधना करते थे।[1] प्रसिद्ध जैनमन्त्री वस्तुपालने सूर्य, रत्नादेवी तथा राजादेवीकी मूर्तियोंका प्रतिष्ठापन किया था।[2] कुमारपालकालीन प्रभास पाटन शिलालेखमें काठियावाड़में पाशुपत सम्प्रदायके भी प्रचलित होनेका उल्लेख मिलता है।[3] शिलालेखका विश्लेषण तथा उसका अभिप्राय-अर्थ स्पष्ट करनेपर यह विदित होता है, कि गड वृहस्पतिने पाशुपत सम्प्रदायके प्रचारके लिए प्रयत्न किया था। उसकी दूसरी व्याख्या करनेपर यह भी अर्थ किया जा सकता है कि सोमनाथका मन्दिर गड वृहस्पतिके आगमनके पूर्व पाशुपत मतका केन्द्र था। किन्तु इस मन्दिर तथा यहां प्रवर्तित पाशुपत मत दोनोंका ही पतन हो चुका था, इसलिए गड वृहस्पति उसकी रक्षा करने आया।[4] भाव वृहस्पतिकी वेरावल प्रशस्तिमें भवानीपति (शिव) गणेश तथा सोमकी प्रार्थना है। गणेश्वर शिलालेखमें वस्तुपाल द्वारा गणेश्वर मन्दिरमें एक मार्ग बनानेका उल्लेख मिलता है।[5] यद्यपि उक्त स्थानका पता नहीं चला है फिर भी इसमे जो तथ्य व्यक्त किया गया है उसके अनुसार १२वी

---

[1]दवे : महाराजाधिराज, पृ० २९१।

[2]गनेश्वर शिलालेख, डब्लू० एम० आर०, राजकोट १९, २३, २४, १८।

[3]बी० पी० एस० आई०, पृ० १८६।

[4]शिलालेखमें अंकित है कि "गंड पाशुपत केन्द्रकी रक्षा करना चाहता था और उनसे कुमारपालसे ध्वस्त सोमनाथके मन्दिरके निर्माणके लिए प्रार्थना की थी।

[5]द्वयाश्रय : सर्ग १५, श्लोक ११९।

शतीमें काठियावाड़में गणेश-पूजन भी प्रचलित था। मध्यकालीन गुजरातमें वैष्णव सम्प्रदायका भी अस्तित्व था। हेमचन्द्रने लिखा है कि जयसिंहने सहस्रलिंग तालावके तटपर एक ऐसा मन्दिर बनवाया जिसमें दशावतारकी झांकी थी।[1] जयसिंह तथा कुमारपालके समयके दोहाद शिलालेखमें यह अंकित कि जयसिंहने गोगनारायणका मन्दिर निर्माण करानेके लिए दधिपद्रमें एक मन्त्री नियुक्त किया था।[2] इसी मन्दिरमें कुमारपालके समय और भी दान दिये जानेके उल्लेख मिलते हैं।

विभिन्न मन्दिरों तथा देवालयोंकी व्यवस्था दान दिये हुए ग्रामोंसे होती थी। व्यक्तिगत मन्दिरोंका आर्थिक संचालन जनतापर लगे विशेष 'कर'से होता था और कभी-कभी राजकीय चुंगीगृहको भी अपनी आयका एक हिस्सा मन्दिरोंकी व्यवस्थाके लिए देना पड़ता था। मंगरोल उत्कीर्ण लेखमें उन करोंका विवरण दिया गया है जो चुंगी, द्यूतगृह, आदि विभिन्न पेशोंसे वसूल किया जाता था। दूकानदारों तथा व्यापारियों द्वारा दिये जानेवाली ऐच्छिक रकमकी भी इसमें चर्चा है। वटुकों और पुजारियोंके वेतन तथा मन्दिरकी व्यवस्था सम्बन्धी अन्य बातोंका भी इसमें उल्लेख है।

धार्मिक सहिष्णुताकी भावना

सभी धर्मके मूलतत्व एक हैं और सभी विभिन्न मार्गोंसे होते हुए एक ही लक्ष्य-स्थानपर पहुंचते हैं। फिर भी धर्मके क्षेत्रमें लोगोंमें सहिष्णुताके साथ सकीर्णता भी पायी जाती रही है। फोर्वस्ने लिखा है कि इस समय दो प्रमुख धर्मों—जैन तथा ब्राह्मणमें परस्पर विरोध था।[3] किन्तु तत्कालीन शिलालेख और प्रभृत जैन साहित्यसे इस तथ्यकी पुष्टि नहीं

[1]इंडि० ऐंटी० : खंड १०, पृ० १५९-६०।
[2]बी० पी० एस० आई० : पृ० १५८।
[3]रासमाला, अध्याय १३, पृ० २३५।

होती। फोर्बस्की 'रासमाला'में ब्राह्मण और जैन आचार्योंमें संघर्ष और कटुभावनाको व्यक्त करनेवाली अनेक कहानियोंका उल्लेख मिलता है जिनमेंसे प्रमुख निम्नलिखित है—ब्राह्मण परम्पराके अनुसार कुमारपालने मेवाड़के सिसौदिया वंशकी राजकुमारीसे विवाह किया था। जब रानीने राजाकी वह प्रतिज्ञा सुनी कि राजमहलमें प्रवेशके पूर्व उसे हेमचन्द्रके मठमें जाना होगा, तो उसने अनहिलवाड़ा जाना अस्वीकार किया। कुमारपालके चारण जयदेवने रानीको विश्वास दिलाया और इसपर रानी अनहिलवाड़ा गयी। उसके आनेके कई दिन बाद हेमाचार्यने सिसौदिया रानीके अपने मठमें न आनेकी बात कही। कुमारपालने रानीसे वहां जानेके लिए कहा तो उसने अस्वीकार कर दिया। इसी बीच रानी बीमार पड़ी और चारणोंकी स्त्रियां उसे अपने घर ले आयी। चारण उसे घर पहुंचाने ले जाने लगा। जब कुमारपालने यह सुना तो उसने दो हजार घुड़सवारोंके साथ पीछा किया। रानीने जब यह सुना तो उसका साहस जाता रहा और उसने आत्महत्या कर ली।[1] पहले ही कहा जा चुका है कि उक्त ब्राह्मणों और चारणोंकी परम्परा, तत्कालीन ऐतिहासिक तथ्योंकी कसौटीपर खरी नहीं उतरती और न इस धार्मिक द्वेषकी भावनाका इतिहास-सम्मत सामान्य आधार ही मिलता है।

ब्राह्मणों और जैनोंमें पारस्परिक संघर्षका परिचय करानेवाली एक दूसरी कहानी भी है। एक दिन कुमारपाल जब मार्गसे जा रहा था तो उसने हेमाचार्यके एक शिष्यसे पूछा कि आज मासकी कौन तिथि है। वास्तवमें उस दिन अमावस्या थी, किन्तु जैन साधुने भ्रमवश पूर्णिमा कह दिया। कुछ ब्राह्मणोंने जब यह सुना तो जैनसाधुकी हँसी उड़ाते हुए कहा "ये सिर घुटाये हुए साधु क्या जाने कि आज अमावस्या है।" कुमारपालने यह सब सुन लिया था। राजप्रासाद पहुंचते ही उसने हेमाचार्य

---

[1] वही, अध्याय ११, पृ० १९२-१९३।

तथा ब्राह्मणोंके प्रधानको बुला भेजा। इसी बीच हेमचन्द्रका शिष्य अत्यन्त दु:खी और लज्जित हो मठमें पहुंचा। हेमचन्द्रने उससे सारा विवरण पूछा और दु:खित न होनेकी बात कही। तब तक कुमारपालका सन्देश-वाहक वहां पहुच चुका था। सवाद पाकर हेमाचार्यने राजभवनकी ओर प्रस्थान किया। कुमारपालने उनसे पूछा कि आज कौनसी तिथि है ? ब्राह्मण आचार्यने कहा कि आज अमावस्या है किन्तु हेमचन्द्रने कहा कि आज पौर्णिमा है। ब्राह्मणोंने कहा कि सन्ध्याका चन्द्रमा ही वास्तविक स्थिति बता देगा। यदि पूर्णिमाका चन्द्र निकला तो सभी ब्राह्मण इस राज्यसे निकल जायगे। यदि चन्द्रमा न निकले तो जैनसाधुओका निष्कासन हो। हेमाचार्यने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और मठ वापस पहुंचे। उनकी एक सिद्धदेवी थी, उन्हीकी सहायतासे पूर्व दिशामें ऐसी कृत्रिमता उत्पन्न की गयी, जिससे सभीको विश्वास हो गया कि आज पूर्णिमा है। इसके पश्चात् घोषित किया गया कि ब्राह्मण हार गये और सभीको राज्य छोड़कर चले जाना चाहिये। दूसरे दिन प्रात: कुमारपालने ब्राह्मणोको बुला राज्य छोड़कर चले जानेकी आज्ञा दी।

इसी समय शकर स्वामीका पाटनमें आगमन होता है। शकर स्वामीने आगे बढकर कहा राज्यसे किसीको निष्कासित करनेकी क्या आवश्यकता है। "नौ बजे समुद्र अपनी मर्यादा सीमा तोड़कर सम्पूर्ण देशको उदरस्थ कर लेगा।" राजाने हेमचन्द्रको बुला भेजा और पूछा कि क्या यह सत्य है ? हेमचन्द्रने जैन सिद्धान्तोंके अनुसार कहा कि यह ससार न कभी निर्मित हुआ और न कभी नष्ट होगा। शकर स्वामीने एक जलघडी मगवायी और कहा देखना चाहिये क्या होता है। तीनों वही बैठ गये। जब नौ बजा तो वे प्रासादके ऊपरी भवनमे पहुचे जहासे उन्होंने देखा कि समुद्रकी लहरें उमड़ती हुई चली आ रही है। लहरे बढ़ती गयी और सारा नगर जलमग्न हो गया। राजा तथा दोनो आचार्य ऊपरी मंजिलोंमें चढ़ते रहे किन्तु जलका वेग ऊपरकी ओर निरन्तर बढ़ता ही

गया। अन्तमें वे सातवीं और अन्तिम मंजिलपर पहुंचे। सबसे ऊंचे वृक्ष तथा मन्दिरके शिखर जलमें समाविस्थ थे। उमडती हुई समुद्रकी भयंकर लहरोंके अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखायी पडता था। कुमारपालने भयभीत होकर शंकर स्वामीसे बचनेका उपाय पूछा। शंकर स्वामीने कहा कि पश्चिम दिशासे एक नाव आवेगी जो इस वातायनके निकटसे ही जायगी। जैसे ही यह हमारे निकट आवे हम उछलकर उसपर बैठ जायं। तीनोंने अपने वस्त्र सभाले और नावमें तत्परतासे बैठ जानेका उपक्रम किया। तत्काल बाद ही एक नौका दिखायी दी। शंकर स्वामीने राजाका हाथ पकडकर कहा कि हम दोनों नावमें बैठनेमें एक दूसरेकी सहायता करेंगे। इतनेमे नौका वातायनके निकट आयी और राजाने उसमें कूदनेका प्रयत्न किया किन्तु शकर स्वामीने उन्हे पीछे खीच लिया। हेमचन्द्र खिडकीसे कूद गये थे। समुद्र और नौका वस्तुत: और कुछ नहीं मायाकी रचना थी। इसके पश्चात् जैन साधुओपर उत्पीडन होने लगा और कुमारपाल शकरस्वामीका शिष्य हो गया।

धार्मिक सघर्षकी इन कथाओमे उस समय वर्ग विशेषकी धार्मिक संकीर्णताकी स्थितिका परिचय मिलता है। जैनधर्मका अभ्युदय और उत्कर्ष न देख सकनेवाले संकीर्ण लोगोकी कल्पना ही इन कथाओका आधार है। न तो इस प्रकारकी घटनाओका तत्कालीन साहित्यमें उल्लेख मिलता है और न कोई प्रामाणिक एवं मान्य आधार। इन्हे ऐतिहासिक तथ्य न मान्यकर कपोल कल्पनाकी ही कोटिमे रखना उचित होगा।

नवीन युगका समारम्भ

ब्राह्मण और जैनधर्मकी पारस्परिक सद्भावनापूर्ण स्थिति इस युगकी ऐतिहासिक विशेषता थी। यदि सामाजिक अभ्युत्थानका विचार किया जाय तो विदित होगा कि जैन धर्मके अभ्युदयके साथ देशमे एक नवीन जागरण और सस्कृतिके युगका समारम्भ हुआ था। कुमारपालप्रतिबोध

तथा मोहराजपराजयके रचयिताओंने समाजमें प्रचलित उन बुराइयोंका उल्लेख किया है जिनसे सामाजिक स्तर निम्नतर होता जा रहा था। पशु हिंसा, द्युत क्रीड़ा, मास, मदिरा सेवन, वेश्याव्यसन, शोषण आदिसे जनताका धन-धर्म विलुप्त और मानसिक पतन होता जा रहा था। यह पहले ही देखा जा चुका है कि कुमारपालने किस प्रकार विशेष तिथियोंको पशुवधका प्रतिषेध कर दिया था। यह तथ्य विभिन्न जैन ग्रन्थोमे ही वर्णित नही किराडू[1] तथा रत्नापुर[2] शिलालेखोमे भी उत्कीर्ण है। यशपालने अपने नाटक मोहराजपराजयमे कुमारपालको अपने दंडपाशिकको यह आदेश देते हुए चित्रित किया है कि जूआ, मांसाहार, मदिरापान तथा पशुहत्याके पापका दमन किया जाय। चोरी और खाद्यपदार्थोंमे मिलावटको नगरसे निष्कासित कर दिया गया था। दडपाशिक इनकी खोजमें जाता है और सबको पकडकर लाता है। सभी राजाके समक्ष उपस्थित किये जाते है। ये अपने पक्ष समर्थनका तर्क देते हुए क्षमाकी याचना करते हैं। वे यह भी कहते हैं कि उन्हींके द्वारा राज्यको बहुत भारी आय होती हैं। किन्तु राजा उनकी एक भी नही सुनता और सभीके निष्कासनकी आज्ञा देता है।[3]

इस समयकी एक क्रूर राजनीतिक परम्परा और प्रथा यह थी कि यदि कोई राज्यमें निस्सन्तान मर जाता तो उसकी समस्त सम्पत्ति राज्य अपने अधिकारमें कर लेता था। ऐसे व्यक्तिकी मृत्यु होते ही, राज्याधिकारी उसके घर तथा उसकी सारी सम्पत्तिपर जब अधिकार कर लेते और जब पचकुलकी नियुक्ति हो जाती, तभी शव अन्तिम सस्कारके लिए सम्बन्धियोको दिया जाता था। इससे जनताको घोर कष्ट और व्यथा होती थी। जैनधर्मकी शिक्षाका राजापर सबसे बडा जो प्रभाव दृष्टिगत

---

[1] इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४४।

[2] भॉ० पी० एस० आई० : २०५-७, सूची संख्या १५२३।

[3] मोहराजपराजय : चतुर्थ अंक, पृ० ८३-११०।

हुआ, वह यह कि उसने निस्सन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर अधिकार करनेका राजनियम (मृतधनापहरण) वापस ले लिया।[1] निर्वंशकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारके प्रजापीड़क नियमकी कुमारपालपर कैसी घोर प्रतिक्रिया हुई और उसका कैसा प्रभाव पड़ा था, इस सम्बन्धमें द्वयाश्रय और मोहराजपराजयमे विशद विवरण मिलते हैं। हेमचन्द्राचार्यने द्वयाश्रयमे ऐसे एक प्रकरणका उल्लेख करते हुए लिखा है कि एक दिन जब रात्रिके समय कुमारपाल प्रगाढ निद्रामे सो रहा था तो निस्तब्धतामें उसे एक स्त्रीका रुदन सुनाई पड़ा। वेश बदलकर जब वह राजमहलसे उक्त स्थानपर पहुचा तो उसने देखा कि वृक्षके नीचे एक स्त्री गलेमें फन्दा लगाकर आत्महत्याकी तैयारी कर रही है। राजाने उससे इसका कारण पूछा। तब उस स्त्रीने अपने पति और पुत्रकी मृत्युका घटना प्रकरण बताते हुए कहा कि अब मेरी समस्त सम्पत्तिपर राजाका अधिकार हो जायगा और मेरा कोई आधार न रह जायगा। इससे अच्छा है कि मै आत्मघात कर लू। इसपर राजाने उसे ऐसा करनेसे मना किया और आश्वासन दिया कि उसकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारी अधिकार न करेंगे। प्रातःकाल राजाने मन्त्रियोको बुलाकर 'मृतधनापहरण'को समाप्त करते हुए उसके निषेधकी आज्ञा निकाली। कहते हैं कि इसप्रकार प्रतिवर्ष राजकोषमें एक करोड रुपये आते थे, किन्तु कुमारपालने इसकी तनिक परवाह न की और उक्त प्रथाका निषेध कर दिया। इसी प्रकारकी एक दूसरी घटना-का वर्णन यशपालके नाटक मोहराजपराजयमें मिलता है। कुबेर नामक करोड़पति नगरसेठकी मृत्यु हो जाती है। वह निःसन्तान था पर उसकी माता जीवित थी। वह शोकमे विह्वल थी। पुत्रशोक और धनशोकके कारण उसके दुःखका पारावार न था। राजाको इसकी सूचना मिलती है। वह बहुत उद्विग्न होता है। राज्यकी क्रूर नीतिका बीभत्स तथा

---

[1]मोहराजपराजय : अंक ३, पृ० ६०-७० ।

शोकसंतप्त परिवारका करुण दृश्य उसके सम्मुख उपस्थित होता है। वह कुबेरकी माताके यहां जाता है। कुबेरके वैभवको देखकर आश्चर्य-चकित होता है। कुबेरके मित्रसे वह सारा विवरण पूछता है। कुमारपाल, कुबेरकी माताको सान्त्वना देता है और कहता है कि मैं भी तुम्हारा ही पुत्र हूं। उधर राज्यके अधिकारी कुबेरकी समस्त सम्पत्तिको एकत्रकर ढेर लगा देते हैं। कुमारपाल नगरसेठों और महाजनोंके सम्मुख घोषणा करता है कि आजसे निस्सन्तान मृतकोंके धनको राज्यकोषमें लेनेके नियम-का मैं निषेध करता हूं। राजा अपने राजप्रासादमें लौटता है और मन्त्रियों-से परामर्शकर निषेधाज्ञा घोषित कराता है—

निःशूकैः शकितं न यन्नृपतिभिस्त्यक्तुं क्वचित् प्राक्तनैः
पत्न्याः क्षार इव क्षते पतिमृतौ यस्यापहारः किल।
आपाथोधिकुमारपालनृपतिर्देवो रुदत्या धनं
बिभ्राणः सदय प्रजासु हृदयं मुंचत्ययं तत् स्वयम्॥

कुमारपालके इस महान सामाजिक और राजनीतिक सुधारकी प्रशंसा करते हुए जैन आचार्य हेमचन्द्र कहते हैं :—

न यन्मुक्तं पूर्वं रघु-नहुष-नाभाक-भरत
प्रभृत्युर्वीनाथैः कृतयुगकृतोत्पत्तिभिरपि।
विमुञ्चन सन्तोषात् तदपि रुदतीवित्तमधुना
कुमारक्ष्मापाल! त्वमसि महतां मस्तकमणिः॥

निस्सन्तान मृतजनकी सम्पत्तिको राज्यकोषमें न लेनेकी घोषणा ऐतिहासिक और युगप्रवर्तक थी। सत्ययुगके महान राजा रघु, नहुष, नाभाक और भरत आदि परमधार्मिक नरेशोंने भी जैसी कीर्तिका अर्जन न किया था वैसी धवलकीर्ति कुमारपालने अपने इस कार्यसे अर्जित की। एक प्रसिद्ध इतिहासकारने लिखा है कि "बारहवीं शतीमें गुजरातके राजा कुमारपालने बड़ी तत्परतासे पशुओंके वधका निषेध किया और इस नियमका उल्लंघन करनेवालोंपर कठोर दंडकी व्यवस्था की। एक अभागे व्यापारीको एक विषैले कीड़ेकी हत्याके अपराधमें अनहिलवाड़ाके विशेष

न्यायालयमें उपस्थित किया गया और उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। उक्त सम्पत्तिसे एक मन्दिरका निर्माण कराया गया। कुमारपाल द्वारा निर्मित इस विशेष न्यायालयकी कार्यसीमा और निर्णय, अशोकके धर्ममहामात्रोंके कार्यों एव निर्णयोंकी भांति थी।[1]

जैनधर्मकी शिक्षासे प्रभावित होकर कुमारपालने एक सत्रागारकी स्थापना की जहां अपग जैनसाधकोको भोजन वस्त्र दिया जाता था। इसीके निकट एक मठ (पोषधशाला)का भी निर्माण किया गया जहा धार्मिक प्रवृत्तिके लोग एकान्त साधना कर सकते थे। इन दातव्य सस्थाओंकी व्यवस्थाका भार सेठ अभयकुमारको सौंपा गया था।[2] इस-प्रकार धर्मके प्रभावसे राज्यनीति और समाजके स्तर दोनोमे परिवर्तन हुए थे। निर्धन और असहायकी सहायताके लिए मानवीय हितके कार्य प्रारम्भ किये गये। इन धार्मिक तथा सामाजिक नव व्यवस्थाओंके नियो-जनने भारतीय इतिहास और समाजको अत्यधिक प्रभावान्वित किया था, और उसका प्रभाव आज भी देखा जा सकता है। कुमारपालकी इस अहिंसा प्रवर्तक रीतिका यह फल है कि वर्तमानकालमे भी सबसे अधिक अहिंसक प्रजा, गुजराती प्रजा है और सबसे अधिक परिमाणमें अहिंसा धर्मका पालन गुजरातमे होता है। गुजरातमे हिंसक यज्ञ-याग प्रायः उसी समयसे बन्द हो गये है और देवी-देवताओंके निमित्त होनेवाला पशुवध भी दूसरे प्रान्तोंकी तुलनामें बहुत कम है। गुजरातका प्रधान किसान वर्ग भी मासत्यागी हैं। भले ही अतिशयोक्ति हो और उसका उपहास भी हो, किन्तु यह तथ्य है कि इसी पुण्यमय परम्पराके प्रतापसे जगतकी सबसे श्रेष्ठ अहिंसामूर्ति महात्माको जन्म देनेका अद्वितीय गौरव भी गुजरातको प्राप्त हुआ है।[3]

---

[1]विसेंट स्मिथ : भारतका इतिहास, पृ० १६१-२। [2]कुमारपाल प्रतिबोध। [3]मुनिजिनविजय : राजर्षि कुमारपाल, पृ० १८।


साहित्य और कला

चौलुक्य शासनकालमे उत्तरी गुजरातमें एक नवीन साहित्यिक चेतना और जागतिके दर्शन होते है। इसका प्रादुर्भाव आकस्मिक और अचानकसा प्रतीत होता है, किन्तु बात ऐसी न थी। जयसिंह सिद्धराज तथा कुमारपालके सरक्षणमें वस्तुतः यह जैन साधको और आचार्योंके एकान्त मनन और साधनका सुपरिणाम था। इसका प्रभाव अन्य लोगोपर भी पडा और फलस्वरूप सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश तथा प्राचीन गुजराती भाषामे धार्मिक तथा साहित्यिक रचनाओंकी एक नई लहर और बाढसी आ गयी। इस कालमे प्रणीत प्रचुर साहित्य अब भी जैन भडारोंमें भरे पड़े है। अनेक वर्ष पूर्व पाटनके भडारोमे रखे ताडपत्रकी पाडुलिपियोकी संक्षिप्त सूची प्रकाशित हुई है।[1] इधर उसकालकी अनेक कृतियोका प्रकाशन हो रहा है, यह शुभ लक्षण है। इनका सिंहावलोकन करनेसे चौलुक्यकालीन साहित्यके विभिन्न अंगोपर प्रकाश पडता है। इनमें व्याकरण, नाटक, काव्य, दर्शन, वेदान्त, इतिहास आदिकी प्रभूत रचनाये मिलती है। विंटरनित्सको उस समय तक जितनी रचनाए प्राप्त हुई थी, उनका विभाजन उसने प्रबन्धकथा, काव्य, कोश तथा उपदेशात्मक साहित्यके अन्तर्गत किया है।[2] श्रीकन्हैयालाल माणिकलाल मुशीने भी प्राप्य सामग्रीपर विश्लेषण और विचार किया है।[3]

---

[1]डिसक्रिप्टिव कैटलाग आव मैन्यूस्क्रिप्ट इन जैनभंडारस् एट पाटन : औ० ओ० एस०, ७५, बड़ौदा १९३७।

[2]हिस्ट्री आव इंडियन लिटरेचर : खंड २, पृ० ५०३-१४।

[3]गुजरात एंड इटस् लिटरेचर : पृ० ३६-४७

जयसिंह और कुमारपाल साहित्यके महान संरक्षक थे। वडनगर प्रशस्ति (३०वी पंक्ति)में कहा गया है कि जयसिंह सिद्धराजने श्रीपालको अपना भाई माना था और वह कविचक्रवर्ती कहे जाते थे। प्रबन्धोंमें इस बातका उल्लेख है कि कवि चक्रवर्ती श्रीपाल जयसिंहदेवका राजकवि था। वीरोचन पराजय उसकी प्रमुख कृति थी। वह दुर्लभराज मेरु तथा श्रीस्थल सिद्धपुरमे रुद्रमहालयके लिए प्रशस्ति लिखता था, इसका वर्णन प्रभावकचरितमें मिलता है।[1] पाटन अनहिलवाड़ाके निकट जयसिंह द्वारा निर्मित सहस्रलिंग तालाबकी प्रशसामें श्रीपालने जो प्रशस्ति लिखी थी, उसका उल्लेख मेरुतुंगने भी किया है।[2] इस प्रशस्तिमें लिखा है कि कुमारपालके समय भी वह अपने पदपर बना रहा। सोमप्रभाचार्यने इसका उल्लेख किया है कि कवि सिद्धपाल कुमारपालके राजदरबारमें था।[3] कुमारपालकी दिनचर्य्याका वर्णन करते हुए कहा गया है कि भोजनोपरान्त वह विद्वानोकी सभामे उपस्थित हो धार्मिक एव दार्शनिक विषयोंपर विचार विमर्श करता था।[4] इनमे कवि सिद्धपाल मुख्य थे और ये सदा राजाको कहानिया तथा कथा प्रसग सुनाकर प्रसन्न करते थे।[5] फोर्बस्ने भी लिखा है कि कार्य समाप्त हो जानेपर पडित और विद्वान आते थे और अमूल्य साहित्य तथा व्याकरणपर विचार एव विवेचन होता था।[6] इतनेसे ही स्पष्ट हो जाता है कि कुमारपाल महान् साहित्यप्रेमी था।

---

[1]प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० २०६-८।

[2]प्रबन्धचिन्तामणि : पृ० १५५-६।

[3]कुमारपालप्रतिबोध।

[4]वही, पृ० ४२३।

[5]वही, पृ० ४२८।

[6]रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

हेमचन्द्रकी साहित्यिक कृतियां

जैन आचार्य हेमचन्द्र अपने समयका महापंडित तथा महान प्रतिभा-सम्पन्न ग्रन्थकार हुआ है। कहा जाता है कि उसने साढ़े तीन करोड़ श्लोकोंकी रचना की थीं।[1] उसकी प्रथम रचना सिद्ध हेम शब्दानुशासन है। यह आठ अध्यायोंकी रचना है जो सिद्धराजकी प्रार्थनापर उसके स्मारक रूपमें प्रस्तुत की गयी थी। हेमचन्द्रने स्वयं इस रचनापर वृहत टीका लिखी जो अष्टदश सहस्रीके नामसे विख्यात है। इसीके साथ एक न्यास भी लिखा गया जो चौरासी हजार ग्रन्थोंके बराबर था। अपने नवीन व्याकरणके नियमोंका उदाहरण प्रस्तुत करने तथा चौलुक्य राजाओंके गौरवगानके निमित्त उसने द्वयाश्रय महाकाव्यकी रचना की। इसका, कुमारपालके राजत्वकालका प्राकृत अंश, कुमारपालके शासनकालमें ही जोड़ा गया। उसके व्याकरणकी अन्य टीकाओंकी भी इसी समय रचना हुई थी। अनेकार्थ संग्रहके साथ अभिधान चिन्तामणि दशिनाममाला तथा निघंटु, काव्यानुशासन विवेक, छन्दोनुशासन तथा प्रमाणमीमांसाकी रचना सिद्धराजके शासनकालमें ही हुई थी। इसप्रकार सिद्धराजके राज्यकालमें ही हेमचन्द्राचार्य अपनी अधिकाश साहित्य साधना कर चुके थे। कुमारपालके शासनकालमे उन्होने जो रचनाएं कीं वे अधिकतर धार्मिक ग्रन्थ थे। योगशास्त्र तथा वीतरागस्तु, कुमारपालके उपदेशार्थ प्रणीत हुए। तीर्थंकरोके जीवनदर्शनके ग्रन्थ 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितकी' रचना उसने कुमारपालकी प्रार्थनापर की थी। हेमचन्द्रका जन्म विक्रम सवत् ११४५में हुआ था और विक्रम संवत् १२२९में चौरासी वर्षकी प्रौढावस्थामे उसका निधन हुआ। भाषण साहित्य और व्याकरणके क्षेत्रमें उसकी महान देन आज भी इतिहासके सुनहरे पृष्ठोंपर अंकित है।

---

[1]व्याकरणं पंचांगं प्रमाणशास्त्रं प्रमाणमीमांसा
छन्दोलंकृति चूड़ामणी च शास्त्रेविभुर्व्यहृत।

सोमप्रभाचार्य और उसकी रचनाएं

कुमारपालप्रतिबोधका रचयिता सोमप्रभाचार्य प्रसिद्ध जैन विद्वान था। कुमारपालकी मृत्युके ग्यारह वर्ष बाद विक्रम संवत् १२४१में उसने उक्त रचना की। इससे स्पष्ट है कि वह कुमारपाल तथा उसके गुरु हेमचन्द्रका समसामयिक था। राजकवि श्री श्रीपालके पुत्र सिद्धपालके निवास स्थानपर रहकर उसने इस ग्रन्थकी रचना की। यही रहकर उसने अपनी दूसरी महान कृति "सुमतिनाथचरित"का भी प्रणयन किया। कुमारपाल-प्रतिबोधके अतिरिक्त उसके तीन ग्रन्थोमे सुमतिनाथचरित उल्लेख्य है। इसमें पाचवें तीर्थंकर सुमतिनाथकी जीवन गाथा वर्णित है। कुमारपाल-प्रतिबोधके समान ही इसका अधिकाश भाग प्राकृत भाषामे लिखा गया है और उसीकी भांति इसमे जैनधर्मकी शिक्षाको समझानेवाली कहानियां भी हैं। इसमें साढ़े नौ हजार श्लोक है। सूक्ति मुक्तावली, सोमप्रभाचार्य-की उल्लेखनीय रचना है, जिसमें मिश्रित प्रकारके सौ श्लोक है। इसका एक नाम सिन्दूरप्रकर भी है क्योकि इसके प्रथम श्लोकका प्रथम शब्द सिन्दूरप्रकर ही है। जैनोमें इस ग्रन्थकी बहुत प्रसिद्धि है और बहुतसे स्त्री-पुरुष इसे कठस्थ करते है। इनकी रचनाशैली भर्तृहरिके नीति-

---

एकार्थानेकार्था देश्या निर्घंट इति च चत्वारः
विहिताश्च नामकोशाः भुवि कवितानत्युपाध्यायाः।
त्र्युत्तरषष्टि शलाका नरेश वृत्त गृहि व्रत विचारे
अध्यात्मयोगशास्त्रं विदधे जगदुपकृति विधित्सुः।
लक्षण साहित्यगुणं विदधे च द्वयाश्रयं महाकाव्यम्
चक्रे विंशतिमुख्याः स वीतराग स्तवानांच
इति तद्विहित ग्रन्थसंख्यैव हि न विद्यते
नामापि न विदन्त्येषां मादृशा मन्दमेधसः।

—प्रभावकचरित।

शतकके समान है। इसमें हिंसाके विरुद्ध, सत्य., आस्तेय, पवित्रता तथा सत्के सम्बन्धमें छोटे किन्तु गंभीर अर्थवाले श्लोक हैं। इसकी रचनाशैली अत्यन्त हृदयग्राही, सरल और बोधगम्य है।

सोमप्रभाचार्यकी तीसरी रचनाका नाम है शतार्थकाव्य। संस्कृत भाषापर उसके आश्चर्यजनक अधिकारका पता उसकी इस रचनासे लगता है। इस रचनामें वसन्त तिलक छन्दमें केवल एक ही श्लोक है और इसे सौ प्रकारसे समझाया गया है। इसी कृतिसे उसका नाम "शतार्थिक" पड़ा और इसी नामसे बहुतसे बादके ग्रन्थकारोंने उसका नामोल्लेख किया है।[1] सोमप्रभाचार्यने इस ग्रन्थमें अपने समसामयिक लोगोंका उल्लेख अत्यन्त काव्यात्मक रूपमें किया है। इनमें देवसूरि तथा हेमचन्द्राचार्य जैसे जैनधर्मके आचार्योंका वर्णन है, तो क्रमसे हुए गुजरातके चार राजा जयसिंहदेव, कुमारपाल, अजयदेव तथा मूलराजका भी विवरण है। इनके अतिरिक्त इसमें अपने समयके सर्वश्रेष्ठ नागरिक: कवि सिद्धपाल और उसके दो गुरुओ अनितदेव तथा विजयसिंहकी भी चर्चा आयी है। सोमप्रभाचार्यकी चार रचनाओमें "सुमितनाथचरित"की रचना कुमारपालके शासनकालमें हुई थी।

राजसभामें विद्वान मंडली

कुमारपालके महामात्य तथा सचिव विद्वान थे। उसने अपनी राज-सभामें विद्वान, विशेषतः संस्कृत भाषाके कवियोंको रखनेकी परम्परा बनाये रखी। उस समय दो प्रमुख विद्वान रामचन्द्र और उदयचन्द्र थे। ये दोनो ही जैन थे। रामचन्द्रका उल्लेख गुजराती साहित्यमें बारम्बार

---

[1] "सोमप्रभोमुनिपतिर्विदितः शतार्थी"—मुनिसुन्दर सूरिकृत गुर्वावली
ततः शतार्थिकः ख्यातः श्रीसोमप्रभसूरिराट्।
—गुणरत्नसूरिकृत क्रियारत्न समुच्चय।

आया है। वह अपने समयका श्रेष्ठ विद्वान था। उसने "प्रबन्धशत"की रचना की है। उदयनकी मृत्युके पश्चात् कपर्दी कुमारपालका महामात्य नियुक्त हुआ। कपर्दी विविध शास्त्रोंका ज्ञाता होनेके अतिरिक्त संस्कृत भाषाका कवि भी था। कुमारपालके शासनकालमें उस युगका सबसे महान जैन पंडित हेमचन्द्र उसका प्रधान परामर्शदाता था। कपर्दीकी विद्वत्ताकी एक अत्यन्त मनोरंजक कहानी है। इसके अनुसार कुमारपालके दरबारमें सपादलक्षके राजाके दूतके आनेपर राजाने उससे सांभर प्रदेशके राजाकी कुशलता पूछी। जब दूतने उत्तर दिया कि "उनका नाम विश्वबल (संसारकी शक्ति) है फिर भला उनकी सदा कुशलतामें क्या सन्देह है? इसपर राजाके पास खड़े कपर्दी मन्त्रीने, जो कुमारपालका प्रिय पात्र विद्वान कवि था, "शुल" और "शुवल" धातुका अर्थ शीघ्रजाना बताते हुए कहा—वह है विश्वबल, जो (वी) चिड़ियाके समान शीघ्र उड़ जाता है। दूत जब स्वदेश लौटा तो उसने इसकी चर्चा की। इसपर सपादलक्षके राजाने विद्वानोंसे परामर्शकर विग्रहराजकी उपाधि ग्रहण की। दूत कपर्दीने इस नामका भी ऐसा हास्यास्पद अर्थ किया कि इसके बाद राजाने कपर्दीके भयसे अपना नाम कवि बान्धव रख लिया।[1]

भाषा, साहित्य और शास्त्रोंकी रचना

इस समय हेमचन्द्र व्याकरणशास्त्रका सर्वप्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ प्रणेता हुआ। संस्कृतमें लिखे नौ व्याकरणोंकी पांडुलिपियां प्राप्त हुई हैं, इनमें विक्रम संवत् १०८०का "बुद्धिसागर"[2] नामक ग्रन्थ जो जावालीपुर आधुनिक जालोरमें लिखा गया था, मिला है। हेमचन्द्रने प्राकृत तथा संस्कृत दोनोंमें रचनाएं की हैं। प्राकृत भाषामें उसकी सर्वप्रसिद्ध कृति

---

[1]रासमाला, अध्याय ११, पृ० १९०।

[2]आर्कलाजी आव गुजरात, अध्याय १२, पृ० २५०।

शब्दानुशासन है। इसमें ११वीं १२वीं शतीके अपभ्रंश तथा आधुनिक प्राचीन गुजराती भाषाके पारस्परिक प्रभाव और सम्बन्धका अध्ययन किया जा सकता है। हेमचन्द्रका द्वयाश्रय काव्य, व्याकरणशास्त्र होनेके साथ-साथ कुमारपाल तक चौलुक्यकालीन राजाओंका इतिहास भी है।

चौलुक्योंके समय नाटकके क्षेत्रमें दो प्रमुख नाटककार दृष्टिगत होते हैं। इनमे एक जयसिंह और दूसरे यशपाल हैं। पहलेकी कृति हम्मीरमदमर्दन है और दूसरेकी मोहराजपराजय।[1] नाटककार यशपालने अपनेको कुमारपालके उत्तराधिकारी चक्रवर्ती अजयपालके चरणकमलमें विचरण करनेवाला हंस कहा है। अजयदेवने सन् १२२९से १२३२ तक शासन किया। इसलिए नाटकके प्रणयनकी तिथि इसीके मध्यमे निश्चित की जा सकती है। मोहराजपराजय पांच अकोंका एक रूपक है। इसमें कुमारपालके द्वारा जैनधर्मकी दीक्षा ग्रहण करनेका विशद चित्रांकन किया गया है। हम्मीरमदमर्दन तथा मोहराजपराजय दोनों नाटकोंका ऐतिहासिक महत्त्व है। इस समयके नाटकोंकी जो पाडुलिपियां प्राप्त हुई है उसमें कालिंजरके परमार्धिदेव (सन् ११६५–१२०३)के मन्त्री वत्सराजके छः नाटक है।[2] इनसे गुजरातके अन्तरप्रान्तीय साहित्यिक सम्पर्कका परिचय होता है।

कविताके क्षेत्रमें इस समयकी सर्वाधिक महत्त्वकी रचना संस्कृत भाषामे रचित उदयसुन्दरी कथा है।[3] इसका रचयिता लाटदेशका निवासी सोड्ढल है। इसमें तत्कालीन इतिहास तथा साहित्य सम्बन्धी उपयोगी जानकारी है।

तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र तथा वेदान्त सम्बन्धी पांडुलिपियां भी प्राप्त

---

[1]गायकवाड़ ओरियंटल सिरीजमें प्रकाशित। संख्या ९, १०।

[2]आर्कलाजी आव गुजरात: अध्याय १२, पृ० २५०।

[3]गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज: संख्या ११।

हुई हैं। इनमेंसे हेमचन्द्रका योगशास्त्र अथवा अध्यात्मोपनिषद् तथा कुछ अन्य कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमे सर्वाधिक महत्त्वकी पाडुलिपि शान्तारक्षितकी तत्वसंग्रह[1] रचना है। इसके साथ ही इसकी कमलशील तथा तर्कभास कृत पंजिका टीका भी है जो पूर्वी भारतके नालन्दा और राजगृह नामक स्थानोमे लिखी गयी थी। इससे नालन्दाका गुजरातपर प्रभाव ही नही परिलक्षित होता है, अपितु यह भी विदित होता है कि भारतकी दूसरी सीमापर रचित दार्शनिक ग्रन्थोंके प्रति गुजरातकी कैसी भावना थी। बारहवी शताब्दीमें सांस्कृतिक एकताने, देशके दिगत छोरोंको किस प्रकार एक सूत्रमें आबद्ध किया था, यह इससे स्पष्ट है।

इस कालके ऐतिहासिक ग्रन्थोमे कुमारपालचरितोके विभिन्न लेखक है। 'वसन्तविलास', सुकृतकल्लोलिनी तथा वस्तुपाल तेजपाल प्रशस्ति भी ऐतिहासिक रचनाके अन्तर्गत आती है। कीर्ति-कौमुदी, प्रबन्धचिन्तामणि, विचारश्रेणि, थेरावली, प्रभावकचरितका तो इतिहासकी दृष्टिसे अत्यधिक महत्त्व है।

इस कालके बाद ही नागरीका जन्म होता है और प्राकृत एवं सस्कृत साहित्यमे प्रभूत रचनाएं होती है। कुछ लोग नागरीका सम्बन्ध 'नागर'से जोडते हैं। नागर ब्राह्मणोका मूलस्थान गुजरातमें है। साहित्यके विभिन्न अगोकी समुन्नतिका श्रेय इसकालमे राज्यसरक्षण तथा विद्वानोंकी शान्त एकान्त साहित्य-साधनाको ही हैं।

कला

कुमारपाल तथा उसके पूर्व शासक जयसिंहसिद्धराज ललित और वास्तुकलाके प्रेमी तथा संरक्षक थे। समाजकी आर्थिक स्थिति अत्यधिक सम्पन्न और समृद्ध थी। चौलुक्य राजाओंके शान्ति और सम्पन्नताके

[1]आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय १२, पृ० २५१।

शासनकालमें इन परिस्थितियोंके अन्तर्गत विभिन्न कलाके विकास और उन्नति क्रममें बड़ी सानुकूलता थी। सोमप्रभाचार्यका कथन है कि कुमारपाल महान् निर्माता था। उसने पाटनमें मन्त्री वहड तथा वायड परिवारके गर्गसेठके दो पुत्रो सर्वदेव तथा शंभासेठके निरीक्षणमें "कुमारविहार"का विशाल तथा भव्य मन्दिर बनवाया। इसके केन्द्रीय मन्दिरमे श्वेत संगमरमरकी पार्श्वनाथकी विशाल मूर्ति प्रतिष्ठापित है। इसके साथके अन्य चौबिस मन्दिरोमें उसने चौबिस तीर्थंकरोकी स्वर्ण, रजत तथा पीतलकी मूर्तिया स्थापित की। इसके पश्चात् कुमारपालने पहलेसे भी विशाल और भव्य "त्रिभुवनविहार"का निर्माण कराया, जिसके बहत्तर मन्दिरोमें बहत्तर तीर्थंकरोकी मूर्तियां स्थापित थी। इन मन्दिरोके शिखर भाग स्वर्णमडित थे। मध्यके मन्दिरमे तीर्थंकर नेमिनाथकी अत्यन्त विशाल मूर्ति स्थापित है। केवल पाटनमे ही कुमारपालने चौबिस मन्दिर बनवाये। कुमारपालके अनेकानेक मन्दिरोमे "त्रिविहार" नामक मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है।

वास्तु कला

चौलुक्यकालीन वास्तुकलाको धार्मिक तथा लौकिक दो भागोमें विभाजित किया जा सकता है। लौकिकके अन्तर्गत पाटनमे रखी काष्ठपर अकित कलात्मक वस्तुएं हैं। नगरकी दीवारें तथा नगरद्वार भी इसीके अन्तर्गत आते हैं। सभवतः उस समय गुजरातमें निवास योग्य भवन लकडीके ही बनते थे। काष्ठ बहुत जल्दी नष्ट हो जाता है इसीलिए चौलुक्यकालीन काष्ठके भवनोके ध्वसावशेष भी नही मिलते। नाटककार यशपालने लिखा है कि चौलुक्य राजे उसी राजप्रासादमें रहते थे जिनमें चावड़ा राजा रहते थे।[1] फोर्बस्ने राजमहलका वर्णन करते हुए लिखा

[1] "इह धवलहरेसु चिरं चाबुक्कडराय लालिओ वसियो"।
—मोहराजपराजय अंक ४, पृ० ४७।

है कि राजाका भवन "राजपाधीक" कहा जाता था, जहां राजप्रासादके अतिरिक्त अन्य राजकीय भवन भी थे। यह कीर्ति स्तम्भोंसे अलंकृत किया जाता था। घटिका द्वार ही नगरद्वार था। यह नगरकी दिशामें खुलता था। मुख्य गलीमें तीन द्वारोंकी त्रिपोलिया होती थी।[1]

चौलुक्योंके कालकी सैनिक इमारतोंमें किलोंके ध्वंसावशेष ही अब बच गये हैं। ये और कुछ नही अपितु नगरके चतुर्दिक विशाल दीवालके रूपमें हैं। उस समय जैसा एक शिलालेखमें कहा गया है इन्हे "प्रकार" कहते हैं। वडनगर प्रशस्तिमें लिखा है कि एक ऐसा "प्रकार" कुमारपालने आनन्दपुर (आधुनिक वडनगर) नगरके चतुर्दिक बनवाया था।[2] वडनगरकी उक्त दीवारका अवशेष भी अब नही मिलता, क्योंकि वर्गेसने भी इसका उल्लेख नहीं किया हैं। हां, उसने नगरके उत्तरकी बाहरी दीवारोंका उल्लेख अवश्य किया है।[3]

चौलुक्यकालीन ध्वंसावशेषोमें धवोई तथा झिनजूवाड़ाके किले अध्ययन करने योग्य है। धवोईकी दीवारें प्रायः ध्वस्त होकर गिर गयी है, किन्तु मुख्यद्वारके अवशेषसे उसकालके द्वारोकी सजावट तथा कलात्मक योजनाका अनुमान किया जा सकता है। सम्भवतः सर्वप्रथम धवोईके चतुर्दिक दीवार जयसिंह सिद्धराजने बनवाई। वर्गेसका कथन है कि चार मुख्य द्वारोमे बडोदा द्वार सबसे कम क्षतिग्रस्त है। इसमें तत्कालीन वास्तुकलाका स्वरूप देखा जा सकता है। वर्गेसने झुनजूवाडामें एक ऐसे और द्वारका उल्लेख किया है, जो सम्भवतः उस पहाडी किलेका होगा जिसे चौलुक्योंने सौराष्ट्रसे होनेवाले आक्रमणोके प्रतिरोध निमित्त निर्मित

---

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

[2] इपि० इंडि० : खंड १, पृ० २९३।

[3] बर्गेस, ए० एस० डब्लू० आई० : ९, ८२-८६।

किया होगा।[1] इस द्वारपर अंकित कला भी धबोईसे प्रायः साम्य रखती है। हां, इसमें कतिपय भिन्न वस्तुएं भी हैं जो धबोईमें नहीं मिलती। ये हैं अश्वपर सवार मनुष्य, शार्दूल तथा नृत्य करती हुई मूर्तियां।[2]

इस कालके इतिहासो तथा शिलालेखोंसे झील, तालाब, वापी, कूप आदिके निर्माणका पता लगता है। ये राजकीय संरक्षणमें भी बनते थे और जनता द्वारा भी। भीमप्रथमकी रानी उदयमतिने अनहिलवाडामें रानी वाप बनवाया। कर्णने मोढ़ेरा तथा दधिपद्रके निकट रुपन नदीपर कर्णसागरका निर्माण कराया। इसीप्रकार सिद्धराज जयसिंहने सहस्रलिंग नामक विशाल तालाब बनवाया।[3] जयसिंहकी माता रानी मीनलदेवीने लगभग सन् ११००में वीरुमगांवमें मानसूर झील बनवायी।[4] इसका आकार कुछ वक्र प्रतीत होता है और यह शंखाकार प्रतीत होती है।[5] इसमें जल तक पहुचनेके लिए सीढ़िया तथा घाट भी बने है। घाटपर प्राचीन समयके ५२० मन्दिरोंमेंसे अब केवल ३५७ ही छोटे मन्दिर रह गये है।[6] इन्ही मन्दिरोके अवलोकनसे इस बातकी कल्पना सम्भव हो सकती है कि सहस्रलिंग तालाबमें एक हजार एक शिवलिंगकी स्थापना कैसे हुई।

सोमनाथका मन्दिर

गुजरातके चौलुक्य सोलंकी राजाओंके समय सोमनाथ मन्दिरके निर्माणकी घटना इतिहासकी चिरस्मरणीय घटना है। प्रबन्धचिन्तामणिमें

---

[1] बर्गेस : ए० के० के०, पृ० २१७।

[2] वही।

[3] ए० एस० डब्लू० आई० : ९, पृ० ३९।

[4] आर्किलाजिकल सर्वे आव इंडिया वेस्ट सर्किल : अध्याय ९, पृ० ३९।

[5] वही, अध्याय ८, पृ० ९१।

[6] वही।

मेरुतुंगने लिखा है कि जब कुमारपालने हेमाचार्यके गुरु श्रीदेवसूरिसे अपना सुयश चिरस्थायी बनाये रखनेके सम्बन्धमे पूछा, तो श्रीदेवसूरिने कहा सोमनाथका एक नया मन्दिर पत्थरका बनवाओ जो युगोतक स्थायी रहे। लकडीका बना मन्दिर समुद्रकी लहरोंसे क्षतिग्रस्त हो गया है।

कुमारपालने इसे स्वीकार किया तथा एक मन्दिर निर्माण समिति नियुक्त की, जिसे पंचकुल कहा जाता था। इस पचकुल अथवा समितिके अध्यक्ष सोमनाथ स्थित राज्याधिकारी ब्राह्म गंडभाव बृहस्पति थे। सोमनाथ मन्दिरका अब नवनिर्माण हुआ है। उसके पूर्व समुद्रतटपर लहरोंसे क्षत-विक्षत जिस मन्दिरका गर्भागार मसजिदके रूपमें परिवर्तित कर दिया गया था तथा जिसका शिखर भाग छिन्न-विच्छिन्न हो गया था, यह उसी मन्दिरका अवशेष था, जिसे कुमारपालने बनवाया था। यहांकी वास्तुकला तथा शिल्पकला कुमारपालकालीन अन्य भवनो एव मन्दिरोंमें पायी जानेवाली कलासे भी साम्य रखती थी। कुमारपालके बनवाये सोमनाथ मन्दिरको बादके मुसलिम शासकोंने अनेकानेक बार पुनः क्षति पहुचायी। इसके स्पष्ट विवरण मिलते है। १३०० ईस्वीमे अलफरखांने, १३९०में मुजफ्फर द्वारा, १४९०के लगभग महमूद बेगदा, तथा मुजफ्फर द्वितीय द्वारा सन् १५३०मे इस मन्दिरको क्षति पहुचायी गयी।

कुमारपालके बाद खेंगण चतुर्थ (१२७९-१३३३में) द्वारा सोमनाथका पुनर्निर्माण बहुत प्रसिद्ध है। अलाउद्दीन खिलजीने जब सोमनाथ मन्दिर ध्वस्त किया था, उसके पश्चात् ही उक्त नामके जूनागढके चौदशम् राजाने जिसका दो गिरिनारके शिलालेखोमें उल्लेख मिलता है, सोमनाथ मन्दिरका पुनर्निर्माण किया। गिरिनार शिलालेखमें जूनागढ़का उक्त राजा सोमनाथ मन्दिरके पुनर्निर्माताके रूपमे उल्लिखित है।

सोमनाथके मन्दिरके निर्माणका वर्णन प्रभासपाटन शिलालेखमें मिलता है। यह भद्रकाली मन्दिरके निकट एक पत्थरपर अकित है। पाटनमें भद्रकालीका एक छोटासा प्राचीन मन्दिर है। इसी भद्रकाली

मन्दिरके द्वारके निकट दीवारकी ओर एक ओरसे खंडित शिलामें आदिकालसे सोमनाथ मन्दिरके निर्माणकी कहानीका उल्लेख है। इस शिलालेखमे हमें सोमनाथके ऐसे विवरण प्राप्त होते हैं, जिनका अन्यत्र कहींसे पता नही लगता। इस शिलालेखके दाहिनी ओरके पत्थरका कोना टूटा हुआ है, इससे लेखकी कतिपय पंक्तिया अस्पष्ट हैं। इसके अतिरिक्त शिलालेख सुरक्षित तथा एकदम सुस्पष्ट है।

यह शिलालेख सन् ११६९ तथा वल्लभी सवत् ८५०का है। इसमे सोमनाथ मन्दिरके निर्माण विषयक प्राचीन गाथाका जो उल्लेख है वह इस प्रकार है—सोमेशदेव (सोमनाथ)का मन्दिर सर्वप्रथम स्वर्णका था और इसे चन्द्रमाने बनवाया था। इसके पश्चात् रावणने चादीका सोम मन्दिर निर्मित कराया। श्रीकृष्णने इसे लकडीका बनवाया। सम्राट कुमारपालके समय सोमनाथका यह मन्दिर गड बृहस्पतिके निरीक्षणमें निर्मित हुआ था।

कुमारपालने बहुतसे जैन चैत्य और मठ भी बनवाये। स्तम्भतीर्थ या कैम्बेमें उसने सागल वसहिकके मन्दिरका जीर्णोद्धार कराया, जहां हेमचन्द्रने दीक्षा ली थी। जिस महिलाने विपत्तिकालमे उसे जौका आटा तथा दही खिलाया था, उसकी स्मृतिमे उसने पाटनमे "करम्बकविहार" नामक एक मन्दिर निर्मित कराया। इतना ही नही प्रारम्भिक जीवनके पर्यटन-कालमें मूषककी जो हत्या हो गयी थी, उसका प्रायश्चित करनेके लिए उसने "मूषकविहार" नामक मन्दिर बनवाया। हेमचन्द्रके जन्मस्थान धन्धूकमे उसने "झोलिका विहार" निर्मित कराया। इन मन्दिरके अतिरिक्त कुमारपालने एक हजार चार सौ चौआलिस मन्दिरोंका निर्माण कराया था।[1]

---

[1]देखिये प्रबन्धचिन्तामणि तथा कुमारपालचरित।

शिल्पकला

भारतीय शिल्पकला वास्तुकलासे मिश्रित है और इसमें मुख्यतः अलकरण वास्तुका प्राधान्य होता है। चौलुक्यकालकी शिल्पकलाके उत्कृष्ट निदर्शन, आबूके मन्दिरोमें जैन तीर्थंकरोंके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रसंग है। इनमे वस्तुपाल और तेजपालके पूर्वजों, परिवार तथा विमल मन्दिरके सामने हस्तिशालामें हाथी और घोडेपर सवार मनुष्यों-की आकृतिया, अध्ययनकी विशेष सामग्री प्रस्तुत करती है। आबू मन्दिरों-की आकृतियोंसे हमें विदित होता है कि उस समय लोगोंका पहिनावा कैसा होता था। इन आकृतियोंसे ज्ञात होता है कि लोग उस समय दाढ़ी और बड़ी-बड़ी मूछे रखना पसन्द करते थे। कलाई और बाहोमें आभूषण, कानमें एरन तथा गलेमें हार पहननेकी उस समय प्रथा थी। मन्दिरमें दर्शनके समयका पहिनावा एक ऊंची धोती तथा उत्तरीय होता था। उत्तरीयको कन्धेके चतुर्दिक डाल देते थे और हाथसे उसके छोर पकड़े रहते थे। स्त्रिया कचुकीके अतिरिक्त दो वस्त्र पहनती थी। ऊपरका वस्त्र आधुनिक ओढ़नी जैसा था। स्त्रियां कानोमें बडे कुडल, बांह तथा हाथमें कडे अथवा कगन जैसे आभूषण धारण करती थीं।[1]

आबूके विमल तथा तेजपाल मन्दिरोमे अनेक तीर्थंकरोंके जीवनकी विशेष घटनाओंकी आकृतिया भी निर्मित की गयी हैं। एक बडे पट्टमें नेमिनाथके विवाह तथा सन्यासकी घटना शिल्पमें चित्रित की गयी है। पट्टमें कुल मिलाकर सात खड है। इनमेंसे चार अधोमुखी हैं और तीन उर्ध्वमुखी। प्रथम खंडमें नेमिनाथके विवाहका जलूस, नृत्य एवं गायकों सहित निकल रहा है। अन्य खडोमे युद्ध, सेना, वधके लिए पशुओंका वाडा, विवाहमडप तथा गानवाद्य आदिके दृश्योके अंकन हुए हैं।[2]

---

[1]आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय ४, पृ० ११८।
[2]आर्कलाजी आव गुजरात। अध्याय ४, पृ० ११८।

चौलुक्य मन्दिरोंके ऊपरी भागका निर्माण, हाथी अथवा घोड़ोंकी पंक्तिके स्वरूपको शिलामें अंकित कर होता था। अश्वोंकी पंक्तिका उत्खनन, विशाल मन्दिरोंकी विशेषता मानी जाती थी। हस्ति आकृतिका उत्खनन इस कालके मन्दिरोंकी निर्माणकलामे विशिष्ठ उत्कृष्टता मानी जाती थी। नवताल मन्दिरमे, सिंह, नान्दी, बन्दरकी भी आकृतियां मिलती हैं।[1] यहा ये आकृतिया मन्दिरके स्तम्भोंमें ब्राइकेटके रूपमें प्रयुक्त हुई है। इनमें शिल्पका सर्वोत्कृष्ट नमूना उस नान्दीका है, जो विशेष मुद्रामे अपना एक पैर फैलाकर बैठा है।[2]

चित्रकला

चौलुक्य शासकोके राज्यकालमें चित्रकलाका पूर्ण विकास तथा उन्नयन हुआ था। चौलुक्यराजाओके दरबारमे प्रायः चित्रकार आया करते थे। इस तथ्यका समर्थन फोर्बस्के कथनसे भी होता है। उसने लिखा है कि दरबारमे चित्रकारोकी कलाकृतियों सहित उनका परिचय कराया जाता था।[3] कर्णदेव सोलकीके समय भी चित्रकारका उल्लेख मिलता है।[4] एक दिन जब राजाको सिंहासनस्थ हुए बहुत दिन नही हुए थे, सूचना दी गयी कि बहुतसे देशोका परिभ्रमण कर आनेवाला एक चित्रकार राजदरबारमे उपस्थित होनेकी आज्ञा चाहता है। राजाके आदेश पर चित्रकारको सभामें उपस्थित होनेकी अनुमति दी गयी। अभिवादनके बाद चित्रकारने कहा "आपका यश बहुतसे देशोमें फैल गया है और बहुतसे लोग आपके दर्शनाभिलाषी है। मैं भी बहुत दिनोसे आपके

---

[1]बर्गेस : ए० के० के०, आकृतियां। क्रमशः १, ११, ८, १०, १३।

[2]आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय ४, पृ० १२३।

[3]रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

[4]वही, अध्याय ७, पृ० १०५-१०६।

दर्शनका इच्छुक था।" इसके पश्चात् चित्रकारने राजाके सम्मुख चित्रोंका समूह रखा। उन चित्रोंमेंसे एकमें राजाके सम्मुख लक्ष्मी नृत्य करती हुई दिखायी गयी थी और राजाके पार्श्वमें उससे भी एक सुन्दरी खड़ी चित्रित की गयी थी। कर्णदेवने जब इस चित्रका परिचय पूछा तो चित्र-कारने बताया "दक्षिणमें चन्द्रपुर नगरका राजा जयकेशी है। यह उसीकी राजकुमारी मीनलदेवीका चित्र है।" यह राजकुमारी सौन्दर्यकी प्रति-मूर्ति है। बहुतसे राजकुमारोंने उससे विवाहका प्रस्ताव किया। किन्तु राजकुमारीने सभी प्रस्ताव अस्वीकार कर दिये। बौद्ध यतियोंने भी राजकुमारीके सम्मुख बहुतसे राजाओंका चित्र रखा। कुछ समयके उपरान्त एक चित्रकार आपका चित्र लेकर वहां उपस्थित हुआ। राज-कुमारीने जब यह चित्र देखा तो प्रसन्न होकर आपको अपना पति चुना। यह कहानी चित्रकारोंके सौन्दर्यमय और यथातथ्य चित्रणकी कलाके अस्तित्वकी पुष्टि करती है। ऐसे आकर्षक चित्र बनाये जाते थे, जो हृदय-हारी और मनोमोहक होते थे।

इसके अतिरिक्त यशपालके नाटक मोहराजपराजयमें भी चित्रकलाका उल्लेख आया है। लक्षाधिपतियोंके विशाल भवनोंकी दीवारोंपर जैन तीर्थंकरोंकी जीवन घटनाके चित्रांकन किये जाते थे।[1]

नृत्य और संगीत

कुमारपालके शासनकालमें नृत्य तथा गायनवादनके अनेकानेक प्रसंगोंकी चर्चा आती है। राज्यारोहण समारोहपर जब वह सिंहासनपर आसीन हुआ तो सुन्दरी नर्तकिया अपनी नृत्य तथा संगीतकलाका प्रदर्शन करने लगी। राजप्रासादका प्रागण मोतीके टूटे हुए हारोंसे भर गया था। सारा संसार मंगलमय गानवाद्यसे प्रतिध्वनित हो उठा।[2] कुमारपालकी

[1] मोहराजपराजय : अंक ३, पृ० ६०-७० ।
[2] कुमारपालप्रतिबोध : पृ० ५ ।

दिनचर्य्याके अन्तर्गत भी गान-वाद्य सुननेका उल्लेख आता है। सन्ध्या समय राजप्रासादके देवमन्दिरमें पुष्पोंसे पूजन-अर्चनके उपरान्त नर्तकियां दीप प्रज्ज्वलित कर देवताके सम्मुख नृत्यकलाका प्रदर्शन करती थीं। पूजनके पश्चात् वह चारण तथा कलाकारोंसे गान-वाद्य सुनता। समारोह तथा महोत्सवके समय नागरिक संगीतका आनन्द लेते और सुसज्जित रंगमंचपर वेश्याएं नृत्य करतीं। इस समय उन्नत रंगमंच तथा नाटक अभिनीत करनेका भी उल्लेख मिलता है। सिद्धराज जयसिंहको वेश परिवर्तन कर, कर्ण मेरुप्रासादमें नाटक अवलोकन करते हम देख चुके हैं। एक और अन्य अवसरपर एक उद्योगपति द्वारा आयोजित नाटक अभिनयमें भी जयसिंह सिद्धराजकी उपस्थिति हमें विदित है। इन विवरणोंसे स्पष्ट है कि नृत्य और नाट्यकलाके प्रयोग और आयोजन समय-समयपर हुआ करते थे और जनसाधारणके अतिरिक्त राजन्यवर्ग भी उनमें दिलचस्पी लेता था। वस्तुतः नृत्य और संगीतकी कलाका समाजमें बड़ा आदर था और इसकी दिनोंदिन उन्नति हो रही थी।




महान
चौलुक्य कुमारपाल

गुजरात और भारतके इतिहासमें सम्राट् चौलुक्य कुमारपालका व्यक्तित्व और कृतित्व असाधारण एवं अभूतपूर्व है। जब वह (विक्रम संवत् ११९९ : सन् ११४२) में सिंहासनारूढ हुआ तो सिद्धराजकी मृत्युसे शोक सन्तप्त जनतामें प्रसन्नताकी लहर दौड गयी।[1] इस कालके सर्वश्रेष्ठ और महान् विद्वान हेमचन्द्रने अपनी रचना महावीरचरित्रमें कुमारपालको चौलुक्य वंशका चन्द्रमा कहा है और कहा है कि वह महान् शक्तिशाली और प्रभावशाली होगा।[2] तत्कालीन विद्वानोंके ये वर्णन, उनके संरक्षककी 'कवित्वमय प्रशस्ति मात्र ही नहीं, अपितु उसकी महत्ता और सत्ता, शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा अभिलेखोंसे भी प्रमाणित होती है। कुमारपालके एक-दो नहीं, बाइस शिलालेख एकमत होकर एक स्वरसे उसके महान् व्यक्तित्व, शौर्य-वीर्य और प्रभुत्वका विशिष्ठ उल्लेख करते हैं। इन सभी शिलालेखोंमें इस

---

[1] एको यः सकलं कुतूहलितया बभ्राम भूमंडलम्
प्रीत्या यत्र पतिंवरा समभवत्साम्राज्य लक्ष्मीः स्वयम्।
श्रीसिद्धाधिपविप्रयोगविधुरामप्रीणयद्यः प्रजां
कस्यासौ विदितो न गुर्जरपतिश्चौलुक्य वंशध्वजः।
—मोहराजपराजय : अंक १, पृ० २८।

[2] कुमारपालो भूपालश्चौलुक्य चन्द्रमाः
भविष्यति महाबाहुः प्रचंडाखंड शासनः।
—महावीरचरित्र, १२ सर्ग, श्लोक ४६।

बातका उल्लेख मिलता है कि कुमारपाल सर्वगुणसम्पन्न तथा 'उमापति-वरलब्ध' था।[1]

महान् विजेता

कुमारपालके इतिहासका अनुशीलन और विशेषतः उसके प्रारम्भिक जीवनका अध्ययन करनेपर विदित होता है कि वह अपने भाग्यका स्वयं निर्माता और विधाता था। प्रारम्भमें वह निरन्तर सात वर्षों तक शत्रुओंके मध्य मित्रहीन और साधनहीन होकर यत्रतत्र-सर्वत्र भटकता रहा। उसके अदम्य साहस और दृढ़ निश्चयका ही यह परिणाम था कि वह शक्तिशाली जयसिंह सिद्धराजका उत्तराधिकारी हो सका। राजकीय सत्ता ग्रहण करनेपर उसने न केवल चौलुक्य साम्राज्यके सुदूर प्रदेशोंपर अधिकार बनाये रखा अपितु स्वयं अनेक राज्योंपर विजय प्राप्त कर अपने साम्राज्यको भी सुदृढ़ बनाया। वह महान् योद्धा, पराक्रमी और सफल सेनानायक था। कुमारपालने चौहान अर्णो राजाको युद्धमें ऐसा पराजित किया कि "स्वभुज विक्रम रणागण विनिर्जित शाकंभरी भूपाल" उसके नामका एक अंश बन गया।[2] कुमारपालने जिन महत्त्वपूर्ण युद्धोंमें विजय प्राप्त की उनमें कोंकणराज मल्लिकार्जुन तथा मालवाधिप बल्लालकी पराजय उल्लेखनीय है।[3] वसन्तविलास[4] तथा कीर्तिकौमुदी[5]से भी इस तथ्यकी

---

[1]परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज उमापतिवरलब्ध प्राप्त राज्य प्रौढ़प्रताप लक्ष्मी स्वयंवर स्वभुज विक्रम रणागण विनिर्जित शाकंभरी भूपाल श्रीकुमारपालदेव पादानुध्यात इंडि० ऐंटी० : खंड ११, पृ० १८१।

[2]"स्वभुज विक्रम रणांगण विनिर्ज्जित शाकंभरी भूपाल श्रीकुमारपालदेव"।

[3]इंडि० ऐंटी० : खंड ४, पृ० २६८।

[4]वसन्तविलास, ३:२९।

[5]बम्बई गजेटियर : खंड १, उपखंड १, पृ० १८५।

पुष्टि होती है। इतने ही विवरणसे स्पष्ट है कि कुमारपाल एक महान् योद्धा था और उसने अपने चतुर्दिकके सभी प्रदेशोपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। युद्धमे उसे सदा विजय ही प्राप्त हुई। उसका जीवन सैनिक विजयोकी शृंखलासे अलंकृत था। उसकी नीति आक्रमणात्मक न होकर रक्षात्मक थी। साम्राज्य विस्तार उसका अभिप्रेत न था किन्तु सिद्धराज जयसिंह द्वारा छोड़े हुए प्रदेशोपर अधिकार और प्रभाव बनाये रखना, अनिवार्यत. आवश्यक था। इसीलिए शाकभरी और मालवाके विरुद्ध उसे बाध्य होकर युद्ध करना पडा था।

महान् निर्माता

कुमारपाल न केवल युद्धकी कलामे पारगत था, अपितु शान्तिके महत्त्वको भलीप्रकार समझता और उसके लिए प्रयत्नशील भी रहता था। जब देशमे शान्ति स्थापित हो गयी तो वह उत्साहपूर्वक रचनात्मक कार्योमें प्रवृत्त हुआ। प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिरके पुनर्निर्माताके रूपमे वह प्रख्यात है।[1] पाटनमे उसने कुमार विहारके विशाल मन्दिरकी स्थापना की।[2] इसके पश्चात् उसने अपने पिता त्रिभुवनपालकी स्मृतिमे और अधिक विशाल तथा भव्य "त्रिभुवन विहार"का बहत्तर छोटे मन्दिरो सहित निर्माण कराया।[3] कुमारपालप्रतिबोधके रचयिताका कथन है कि कुमार-पालने पाटनमे जिन चौबिस जैन मन्दिरोकी प्राणप्रतिष्ठा करायी उनमे त्रिविहारका मन्दिर सबसे भव्य था।[4] उसने केवल मन्दिरोका निर्माण ही न किया अपितु इसका भी ध्यान रखा कि उनकी समुचित व्यवस्था

[1]इंडि० ऐंटी० : खंड ४, पृ० २६९।
[2]इपि० आई० खंड ११, पृ० ५४-५५।
[3]कुमारपालप्रतिबोध।
[4]वही।

होतीं रहे। पाटनके बाहर उसने जो सैकड़ों मन्दिर बनवाये उनमें तारंगा पहाड़ीपर स्थित अजितनाथका मन्दिर उल्लेख्य है। इस व्यापक, विशाल और भव्य निर्माणकी प्रेरणा कुमारपालको केवल जैनधर्ममें दीक्षित होनेसे ही नही प्राप्त हुई थी, बल्कि कला कौशल और वास्तुकलाके प्रति उसका सच्चा प्रेम ही बहुत अधिक अंशतक इन कार्योंका प्रेरक था।

युगप्रवर्तक समाज सुधारक

गुजरातके इतिहासमे अपने समयके महान् समाजसुधारकके रूपमें कुमारपालका नाम स्वर्णाक्षरोमे अंकित रहेगा। कुछ विद्वान यह कह सकते है कि कुमारपालने जो समाज-सुधार किये वे शुद्ध समाज-सुधारकके रूपमे नही अपितु जैनधर्मकी श्रद्धाभावनासे अनुप्राणित होकर किये गये थे। किन्तु यह कभी विस्मरण न किया जाना चाहिये कि इतिहासकारके लिए ठोस परिणाम एव निष्कर्ष ही सब कुछ है। इस समय गुजरातका समाज पशुवध, द्यूत, मांसाहार, मद्यपान, वेश्यागमन तथा लूटपाटके बुरे परिणामोंसे अभिशप्त हो गया था।[1] इस समय राज्यका एक नियम अत्यन्त ही निन्दा-जनक था। यह था निस्सन्तान मरनेवालोकी सम्पत्तिपर राज्य द्वारा अधिकार कर लेना। राज्यके अधिकारी विना उत्तराधिकारीके मृत व्यक्तिके घरकी जब सभी सम्पत्ति और वस्तुओपर अधिकार कर लेते थे, तभी शवको अन्तिम सस्कारके लिए ले जाने देते थे। इससे जनताको बहुत कष्ट होता था।[2] कुमारपालने राज्यमे कुछ विशेष तिथियोपर पशुवधपर प्रतिबन्ध लगा दिया था। इसका उल्लघन करनेवालोको भारी आर्थिक दड और मृत्युदड तक दिया जाता था।[3] कुमारपालने निस्सन्तान

[1]मोहराजपराजय : अंक ३, तथा ४।

[2]वही।

[3]इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४४, बी० पी० एस० आई० २०५-७।

व्यक्तियोंकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारकी नीतिका परित्याग कर दिया।[1] हेमचन्द्रने अपने महावीरचरित्रमें भी इस घटनाका उल्लेख किया है।[2] जिनमदनने कुमारपालप्रतिबोधमें लिखा है कि निस्सन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारकी नीतिका परित्याग कर कुमारपालने वस्तुतः 'राज्य पितामहकी' उपाधिके लिए अपनेको योग्य सिद्ध किया।[3] यद्यपि यशपालने लिखा है कि जूआ, मद्य और वध करना राज्यमे नही था। इससे यह समझा और स्वीकार किया जा सकता है कि कुमारपालके राज्य-कालमे इनपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था और इनके नियन्त्रण और निर्मूलीकरणके कार्यमें बहुत ही कड़ाई कर दी गयी थी। हिंसा, द्यूत, और मद्यपर प्रतिबन्ध लगानेके साथ ही उसने निस्सन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्ति-पर राज्य अधिकारकी, प्राचीन परम्पराको समाप्त कर राज्यमें सर्वत्र निषेधाज्ञा प्रचारित करायी। वस्तुतः कुमारपालके ये साहसपूर्ण सामाजिक सुधार देशमे नये युगका समारम्भ करते है।

साहित्य और कलासे प्रेम

कुमारपाल साहित्य, विद्या और कलाका महान् प्रेमी था। शिल्पकला, और वास्तुकलाके प्रति उसके अत्यधिक प्रेमके निदर्शन उसके बहुसंख्यक मन्दिर है, जिनका निर्माण उसने जैनधर्मकी दीक्षाके उपरान्त कराया।

---

[1]मोहराजपराजय, चतुर्थ अंक।

[2]अपुत्रमृतप्रस्वं स द्रविणं न ग्रहीष्यति
विवेकस्य फलं ह्येतदतृप्ता ह्य विवेकिनः।
—महावीरचरित्र : सर्ग १२, श्लोक ६४।

[3]अपुत्राणां धनं गृह्णन् पुत्रो भवति पार्थिवः
त्वं तु सन्तोषतो मुंचन सत्यं राजपितामहः।
—जिनमदन : कुमारपालचरित।

सोमप्रभाचार्यका कथन है कि भोजनोपरान्त वह विद्वानोंकी परिषद्में पंडितोंसे मिलता और उनसे धार्मिक एव दार्शनिक विषयोपर विचार-विमर्श करता था। इनमे कवि सिद्धपालका दल राजाको सुन्दर कहानियों और कथा-प्रसंगोके कथन-श्रवण द्वारा प्रसन्न किया करता था।[1] कवि सिद्धपालकी उस स्थानमे भी चर्चा आयी है, जहा कुमारपाल सेठ अभयकुमारको दातव्य सस्थाओका व्यवस्था भार सौंपता है। कहते है कि कुमारपालके इस सुन्दर और सुविचारित चुनावपर कवि सिद्धपालने उसकी प्रशसा की।[2] कवि सिद्धपालके अतिरिक्त उस युगके विद्वान समाजका सबसे महान् व्यक्तित्व आचार्य हेमचन्द्र उसकी राजसभाकी शोभा बढाते थे। कुमारपालकी राजसभामे उसका महामात्य कदर्पी भी प्रसिद्ध विद्वान और कवि था। हेमचन्द्र द्वारा प्राकृत व्याकरणकी रचना तथा प्राकृतका प्रादुर्भाव, इस युगकी साहित्यिक प्रगतिकी दो महान् देन है, जिनका ऐतिहासिक महत्त्व है।

कुमारपालका निधन

कुमारपालका शासनकाल भारतीय इतिहासका एक महत्त्वपूर्णकाल था और गुजरातके इतिहासका तो स्वर्णकाल ही था। प्रबन्धचिन्तामणिके अनुसार जब वह सिंहासनारूढ हुआ तो उसकी अवस्था पचास वर्षकी थी। इकतीस वर्ष पर्यन्त राज्य करनेके बाद इक्यासी वर्षकी अवस्थामे सन् ११७४ (वि० स० १२३०)मे उसका निधन हुआ। अंगरेज इतिहास लेखक श्रीटाडने कुमारपालके सम्बन्धमें एक विचित्र कथन यह किया है कि मृत्युके पहले कुमारपाल तथा हेमचन्द्रने इस्लाम ग्रहण कर लिया था। और यदि इस्लाम न भी ग्रहण किया था

---

[1]मोहराजपराजय : अंक ४।

[2]प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश।

तो कमसे कम उसकी ओर इनका झुकाव तो अवश्य ही हो गया था।[1] किन्तु ये सब बातें पूर्णतः निराधार और कपोलकल्पित हैं। इस असभावित और अस्वाभाविक घटनाका समर्थन करनेवाले प्रमाणोका सर्वथा अभाव है। आचार्य हेमचन्द्र और जैनधर्मके सच्चे साधक कुमारपालके सम्बन्धमे, इस प्रकारकी किसी कल्पनाको भी स्थान देना, उनके वास्तविक स्वरूपके अज्ञानका ही बोधक है। कुमारपालप्रबन्धमें लिखा है कि कुमारपालके भतीजे तथा उत्तराधिकारीने उसे बन्दी बना लिया था। कुमारपाल-प्रबन्धमें कुमारपालका शासनकाल ठीक तीस वर्ष आठ महीना सत्ताइस दिन लिखा है। यदि कुमारपालके शासनका प्रारम्भ सवत् ११९९ माघ शुक्ल चतुर्थी माना जाय तो उसके अन्तकी तिथि सवत् १२२९में भाद्रपद शुक्ल होगी। यदि गुजरातके पंचागके अनुसार वर्षका प्रारम्भ आश्विनसे भी किया जाय, तो उसके राज्यकालकी समाप्ति भाद्रपद सवत् १२३०में होगी। यह सन्देहास्पद है कि सवत् १२२९ और १२३०में कौन सत्य है तथा कौन असत्य। कुमारपालके उत्तराधिकारी अजयपालके शासनकालका प्रारम्भ वैशाख शुक्ल तृतीया माना जाता है। इस गणनाके अनुसार कुमारपालका निधन वैशाख वि० स० १२२९ अर्थात् सन् ११७३ ईस्वीमे होना स्वीकार किया जाना चाहिये। यह विदित है कि हेमचन्द्रकी मृत्यु चौरासी वर्षकी अवस्थामे सवत् १२२९ (सन् ११७२)मे कुमार-पालके निधनके ठीक छः मास पूर्व हुई थी। कुमारपालको अपने आध्यात्मिक गुरुके निधनका बहुत शोक हुआ। कहा जाता है कि इसके पश्चात् उसने समस्त सासारिक कार्योंका परित्याग कर दिया और मृत्यु पर्यन्त गम्भीर अन्त.साधनामे सलग्न रहा।

कुमारपालका उत्तराधिकारी

कुमारपालचरितमें जयसिंहने लिखा है कि मृत्युके पहले कुमारपालने

[1] टाड : वेस्टर्न इंडिया, पृ० १८४।

हेमचन्द्रसे अपने भावी उत्तराधिकारीके विषयमें विचार-विमर्श किया था और अजयपालको ही सिंहासनाधिकारी चुना था।[1] मेरुतुंगने एक कहानीमें कुमारपालसे कहा है कि श्रीमानको एक पुत्र हुआ है। इसपर राजाने उत्तर दिया कि वह इस नगरका नही, गुजरातका राजा होगा।[2] कुमारपालप्रबन्धमें यह लिखा है कि वह अपने दौहित्र प्रतापमल्लको अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था, किन्तु अजयपालने उसके विरुद्ध विद्रोह-का षडयन्त्र कर उसे विष देकर छुटकारा पा लिया।[3] यह ध्यान देने योग्य बात है कि अजयपाल द्वारा राजाको विष देनेकी कहानीका अबुलफजल और मुहम्मदखाने भी उल्लेख किया है।[4] हेमचन्द्रकी यह भविष्यवाणी कि कुमारपाल मेरे अवसानके छ. माससे अधिक जीवित न रहेगा, अप्रत्याशित रूपसे सत्य की गयी-सी प्रतीत होती है। इस सम्बन्धमें कुछ न कुछ कुचक्र-की शका उस समय और भी साधार तथा सबल हो जाती है, जब हम देखते है कि कुमारपालके उत्तराधिकारी अजयपालके शासनकालमे धार्मिक नीतिमे भयकर प्रतिक्रिया हुई थी।

कुमारपालका इतिहासमें स्थान

किसी शासकका इतिहासमे स्थान उस युग-विशेषमे उसकी सफल-ताओसे ही अकित और स्थिर किया जाता है। पहले व्यक्तिगत वीरता और युद्ध विजयपर ही राजाकी सत्ता एव श्रेष्ठता मान्य होती थी। इस मानदडसे कुमारपालके जीवनपर विचार किया जाय तो विदित होता है वह महान् योद्धा और विजेता था। उसने जितने भी युद्ध किये सभीमें

---

[1] कुमारपालचरित : १०, पृ० ११८।
[2] प्रबन्धचिन्तामणि : पृ० १४९।
[3] बम्बई गजेटियर : खंड १, उपखंड १, पृ० १९४।
[4] ए० ए० के०, खंड २, प० २६३ तथा एम० ए० ट्रान्स०, पृ० १४३।

निरन्तर सफलता प्राप्त की। यदि केवल इसी मानदंडसे विचार किया जाय तो भी, कुमारपालकी गणना, महान् राजाओंमें अवश्य करनी होगी। विश्व इतिहासके ससार प्रसिद्ध लेखक एच० जी० वेल्सने इतिहासके महान् व्यक्तित्त्वोकी महत्ताका मूल्याकन करनेका दूसरा ही मानदड माना है। इसके अनुसार यह देखना होगा कि अमुक राजाने ससारको प्रसन्न एवं सुखी बनानेमें सफलता प्राप्त की है अथवा नही।[1] इस मानदडसे कुमारपालके कार्यों और सफलताओपर दृष्टिपात करनेसे प्रतीत होता है कि, वह निश्चितरूपसे इसी ध्येयको सम्मुख रखकर अग्रसर हो रहा था। सोमप्रभाचार्यने लिखा है कि कुमारपालने असहायोके भोजन वस्त्रके निमित्त सत्रागारकी स्थापना की। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए उसने एक मठका भी निर्माण कराया था।[2] उसकी यह कृपालुता और दयाभावना मानवों तक ही सीमित न थी अपितु विशेष तिथियोको उसने पशुवधपर भी प्रतिषेध लगा दिया था।[3] केवल यही नही, जैनधर्मके प्रभावसे उसने गुजरातके तत्कालीन समाजमें फैली सामाजिक बुराइयोके दमनमे राज्यशक्तिका भी उपयोग किया।[4] निस्सन्तान व्यक्तियोके मरनेपर उनकी समस्त सम्पत्तिपर, राज्यके अधिकारकी अमानवीय नीतिका उसने परित्याग एव निषेध कर, प्रजाके प्रति अपने पितृवत प्रेमको अभिव्यक्त किया था।[5]

---

[1] स्ट्रांड मैगजीन, सितम्बर, पृ० २१६।

[2] कुमारपालप्रतिबोध।

[3] इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४४ तथा बी० पी० एस० आई० २०५-७।

[4] मोहराजपराजय : अंक ४, पृ० ९३-११०।

[5] वीतरागरतेर्यस्य मृत वित्तानिमुञ्चतः
देवस्येव नृदेवस्य युक्ताभूवमृतार्पिता।
—कीर्तिकौमुदी : सर्ग २, श्लोक ४३।

इन तथ्योंके आधारपर निश्चितरूपसे कहा जा सकता है कि कुमारपाल भारतके महान् शासकोंमें प्रमुख हो गया है। हर्षवर्धनके पश्चात् कुमारपाल अन्तिम हिन्दू महान शक्तिशाली सम्राट् था, जिसने पश्चिमोत्तर भारतको एकछत्रके अन्तर्गत करनेमे पूर्ण सफलता प्राप्त की। कुमारपाल निश्चय ही गुजरातका सबसे बडा चौलुक्य राजा था।[1] उसीके शासनकालमे चौलुक्य साम्राज्य उन्नति और उत्कर्षकी पराकाष्ठापर पहुंचा। विभिन्न शिलालेखोमे कुमारपालके नामके साथ परमभट्टारक, पारमेश्वर आदिकी जो उपाधिया है, वे उसके महान् राजकीय प्रभुत्वकी द्योतक है। प्राचीन भारतमें सभी महान् राजाओंने नवीन सवत्सरका प्रारम्भ किया है। हेमचन्द्रने भी सफल युद्धोके बाद कुमारपाल द्वारा उसी प्रकारके सवत् प्रारम्भ करनेकी घटनाका उल्लेख किया है। ये समस्त तथ्य तथा परिस्थितिया इस बातकी सूचक है कि महाराजाधिराज सम्राट् कुमारपाल, भारतके महान् शासकोमे विशिष्ट था तथा गुजरातके चौलुक्य राजाओमे सबसे महान् था।[2]

कुमारपाल और सम्राट् अशोक

प्राचीन भारतके विश्वविश्रुत और सबसे महान् मौर्यसम्राट अशोक तथा बारहवी शताब्दीमें हिन्दू साम्राज्यके अन्तिम भारत प्रसिद्ध शक्तिशाली चौलुक्य कुमारपालके राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक आदर्शोंमे

---

[1]महीमंडल मार्तंडे तत्र लोकान्तर गते
श्रीमान्कुमारपालोथ राजा रज्जितवान्प्रजाः।
—कीर्तिकौमुदी : सर्ग २, श्लोक ४०।

[2]न केवलं महीपालाः सायकैः समरांगणे
गुणैर्लोकं पर्णैर्येनर्निर्जिताः पूर्वजाअपि।
—वही, श्लोक ४२ :

आश्चर्यजनक किन्तु तथ्यपूर्ण साम्य दृष्टिगोचर होता है। अशोकने ईसा-पूर्व २३२ वर्षमे भारतको चरम उत्कर्षपर पहुचाया तो कुमारपालने हिन्दू राज्यकालके अन्तिम समय बारहवी शताब्दीमे स्वर्णकालकी अवतारणा की। अशोकने मगध और मौर्य साम्राज्यका प्रभुत्व स्थापित किया, तो कुमारपालने गुजरात एव चौलुक्य साम्राज्यका आधिपत्य प्रतिष्ठित किया। जिस प्रकार अशोकके राज्यकालमें उससे कोई अधिक शक्तिशाली प्रभुशक्ति देशमें न थी, ठीक उसीप्रकार बारहवी शताब्दीके भारतीय मानचित्रपर कुमारपालसे अधिक सम्पन्न कोई दूसरा राजा न था।

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री एच० जी० वेल्सने ससारके पाच महान् राजाओ-की तुलना करते हुए अशोकको ही सबसे महान् स्वीकार किया है। रोमके सम्राट कान्स्टेनटाइन, मार्क्स ओरिलियस, सीजर और यूनानके सिकन्दर तथा मुगल सम्राट् अकबरकी तुलना करते हुए उनमें अशोककी महत्ता इसलिए स्वीकार की गयी है, कि उसने न केवल अपने प्रजावर्गका अपितु मानवमात्रके प्रति जिस उदारता, सहिष्णुता एव विश्वव्यापक कल्याण भावनाका प्रसार-प्रचार किया, वैसी नीति कार्यान्वित करनेमे दूसरे सफल न हुए। प्रजावर्गके हित सम्पादनकी जिस भावनाने अशोकको 'धम्मप्रचार' के लिए प्रेरित किया था, वैसी ही अन्तर भावना कुमारपालके हृदयमे भी प्रजाजनके लिए उत्पन्न हुई थी। मानवसेवाके जिस भावने अशोकसे जीवहिंसा, त्याग, अहिंसाप्रचार, दया, दान, सत्य, शौच, मृदुता और साधुता का प्रचार कराया, प्रायः उसी प्रकार की प्रेरणा ने कुमारपाल द्वारा सप्त व्यसनो—हिंसा, मद्यपान, द्यूत, मांसाहारादिका निषेध करा, उस युगके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवनमे नवीन युगका प्रवर्तन किया। कुमारपालने मद्य, द्यूत और मृतधनापहरणसे राज्यकोषमे करोड़ो रुपयोकी होनेवाली आयका त्याग कर, तत्कालीन सामाजिक जीवनमे सद्भावना, सदाचार और सद्विचारका प्रचार किया।

भारतीय इतिहासमे अशोक, बौद्धधर्मका महान् प्रचारक माना

जाता है तो कुमारपाल जैनधर्म और सस्कृतिका उतना ही बडा प्रसारक तथा पोषक रहा है। अशोक भी पहले शैव था और कुमारपाल भी। दोनोंने राजसिंहासनपर आसीन होकर क्रमशः आठ तथा सोलह वर्षोंके बाद बौद्ध और जैनधर्मकी दीक्षा ली तथा जीवनभर सच्चे साधकके रूपमे अपने-अपने धर्मोंका पालन किया। जिसप्रकार अशोकने बौद्ध होकर अन्य धर्मोंके प्रति सहिष्णु तथा आदरभाव रखा, उसीप्रकार कुमारपाल भी जैन होकर शैव सम्प्रदायका समादर करता हुआ, धार्मिक सहिष्णुताकी भावना रखता था। ब्राह्मण और श्रमणका दोनों ही आदर करते थे। अशोकने धर्म महामात्रोंकी नियुक्ति, धर्मकी रक्षा, वृद्धि तथा धर्मात्माओके हित एव सुखके लिए सभी सम्प्रदायोमें कार्य करनेके लिए की थी। इससे जिसप्रकार उसकी धार्मिक सहिष्णुता और सर्वधर्म समादरकी भावना सुस्पष्ट है, उसीप्रकार कुमारपाल भी 'उमापतिवरलब्ध प्रौढ़प्रताप' और 'परमार्हत' दोनों विरुद धारण करनेमें गौरव मानता था। बौद्धधर्मके प्रचारार्थ अशोकने प्रस्तरस्तम्भों और शिलालेखोंका उत्खनन कराया, तो कुमारपालने भी जैनधर्म सिद्धान्त एवं संस्कृतिके निमित्त सहस्रो विहारो तथा मन्दिरोका निर्माण कराया। अशोकने बौद्ध तीर्थस्थानोकी श्रद्धापूर्वक धर्म-यात्रा की थी, तो कुमारपाल भी जैनतीर्थोंके भक्तिपूर्वक नमनके लिए सघ सहित तीर्थयात्रा की।[1]

अशोकने सडक और सडकके किनारे शीतल छायाके लिए वृक्ष लगाये, कुए खुदवाये, धर्मशालाएं बनवायीं और अस्पताल खुलवाये, ठीक उसी-प्रकार चौलुक्य कुमारपालने 'सत्रागार'की स्थापना की। यहा दीन और असहायोको भोजन वस्त्र दिया जाता था। यही नही उसने 'पोषधशाला'-का निर्माण कराया जहा धार्मिकजनोके शान्त एव एकान्त निवासकी

---

[1]चलियो कुमारपालो सत्तुंजय तित्थ नयणत्थं—कुमारपालप्रतिबोध, पृ० १७९।

समस्त सुविधाएं सुलभ थी। कुमारपालने न केवल 'पोषधशाला' और 'सत्रागार'की ही स्थापना की अपितु इन दातव्य संस्थाओंकी व्यवस्था एवं सुप्रबन्धके लिए विशेष तथा विशिष्ट अधिकारीकी नियुक्ति भी की थी।[1] सुप्रसिद्ध इतिहासकार विसेण्ट स्मिथने लिखा है कि पशुओंके वधका निषेध बारहवीं शताब्दीमें कुमारपालने बड़ी तत्परतासे अशोककी ही भांति किया था। इसका उल्लंघन करनेवालोंको चौलुक्य साम्राज्यकी राजधानी अनहिलवाड़ाके विशेष न्यायालयमें उपस्थित किया जाता था। कुमारपाल द्वारा निर्मित इस न्यायालयकी तुलना, सहजमें ही अशोक द्वारा नियुक्त धर्ममहामात्रोंके उन न्याय अधिकारोंसे की जा सकती है, जिनके अनुसार वे न्यायालयों द्वारा सुनाये गये निर्णयोंपर भी नियन्त्रण रखते थे।[2] जिस प्रकार अशोकने बौद्धधर्मके प्रसारके निमित्त धर्ममहामात्रोंकी नियुक्ति की थी, उसी प्रकार कुमारपालने जैन तथा शैव तीर्थों के पुनरुद्धार एवं निर्माण के लिए विशेष अधिकारियोंको नियुक्त किया था। हमें विदित है कि गिरनार पर्वतपर सीढ़ियोंके निर्माणके लिए उसने श्रीअमर-को सौराष्ट्रका सूबेदार नियुक्त कर उक्त कार्य विशेषरूपसे सौंपा था। इसीप्रकार भारतीय संस्कृतिके प्रतीक सोमनाथ मन्दिरके निर्माणार्थ भी उसने 'पंचकुल'का संघटन किया था, जिसके निरीक्षण एवं निर्देशनमें मन्दिरके निर्माणका कार्य सम्पन्न हुआ था।

अशोकने कलिंग विजयके बाद कोई युद्ध न करनेका संकल्प किया था। कुमारपालने भी साम्राज्यविस्तारके लिए आक्रमणात्मक युद्ध न किये अपितु सिद्धराज जयसिंह द्वारा छोड़े गये साम्राज्यकी रक्षाके लिए केवल रक्षात्मक युद्ध किये। इसी प्रसंगमें जिन राजाओंने उसके शत्रुओंका पक्ष ग्रहण किया था, उनका मूलोच्छेद उसे राजनीतिकी दृष्टिसे बाध्य

[1] वही।

[2] विंसेण्ट स्मिथ : भारतका इतिहास, पृ० १६१-२।

होकर करना पड़ा। `दोनो ही शान्तिप्रिय, धर्मप्रिय तथा विद्या एवं कलाके अनन्य प्रेमी थे। जिसप्रकार चन्द्रगुप्तके समय मौर्यसाम्राज्य अपने चरम उत्कर्षको प्राप्त हुआ, उसीप्रकार सिद्धराज जयसिंह द्वारा विजित चौलुक्य साम्राज्य, सम्राट् कुमारपालके शासनकालमें समृद्धि एव सम्पन्नताके सर्वोच्च शिखरपर पहुच गया था।

इसप्रकार सम्राट् कुमारपाल गुजरातकी गरिमाका सर्वोपरि शिखर था। 'उसके समयमे गुजरात विद्या और विभुतामे, शौर्य और सामर्थ्यमें, समृद्धि और सदाचारमे, धर्म और कर्ममे, उत्कृष्टतापर पहुच गया था। उसके राज्यमे प्रकृतिकार वैश्य भी महान् सेनापति हुए, द्रव्यलोलुप वणिकजन भी महाकवि हुए और ईर्षापरायण ब्राह्मण तथा निन्दापरायण श्रमण भी परस्पर मित्र हुए। व्यसनासक्त क्षत्रिय भी सयमी साधक बने और हीनाचारी शूद्र धर्मशील बने। सम्राट् अशोकसे इतनी अधिक समानताके गुण रखनेवाला चौलुक्य सम्राट् कुमारपाल और उसका युग, वस्तुत. भारतीय इतिहासमे सुवर्णाक्षरोमे अकित करने योग्य है।



सहायक ग्रन्थोंकी सूची

मूलग्रंथ

हेमचन्द्र : द्वयाश्रयकाव्य, पी० एल० वैद्य, पूना द्वारा सम्पादित।
हेमचन्द्र : महावीरचरित।
सोमप्रभाचार्य : कुमारपाल प्रतिबोध, गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, संख्या १४
जयसिंह : कुमारपाल चरित : कान्ति विजय जानी, बंबई द्वारा सम्पादित।
मेरुतुंग : प्रबन्ध चिन्तामणि, सम्पादक, जिनविजय मुनि, कलकत्ता।
मेरुतुंग : थेरावली, जे० बी० आर० ए० एस०, खंड ६, पृ० १४७।
यशपाल : मोहराजपराजय, गायकवाड ओरियंटल सिरीज, संख्या ६, १६१८
उदयप्रभा : सुकृत कीर्ति कल्लोलिनी, गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, परिशिष्ट २, पृ० ६७, ६०।
सोमेश्वर : कीर्ति कौमुदी : सम्पादक, ए० वी० कथावाटे, बम्बई संस्कृत सिरीज संख्या २५।
बालचन्द्र : वसन्तविलास, गायकवाड ओरियंटल सिरीज, संख्या ७, १६१७।
जयसिंह : हम्मीर मदमर्दन, गा० ओ० सिरीज, संख्या १०, १६२०।
चरित्र सुन्दर : कुमारपाल चरित, आत्मानन्द ग्रन्थमाला, भावनगर।
चन्द्रप्रभा : प्रभावक चरित, सम्पादक जिनविजय मुनि।
पुरातन प्रबन्ध संग्रह : संपादक जिनविजय मुनि।
जिनमदन : कुमारपाल प्रबन्ध।

मुसलिम इतिहास

जियाउद्दीन : तारीख ए फिरोजशाही, इलियट खंड ३, पृ० ६३।

निजामुद्दीन : तबकात ए अकबरी, विवलिओथिका इनडिका।
तारीख ए फिरिश्ता : ब्रिगस्, खड १।
आइन ए अकबरी : ब्लोचमन एड जेरेट, खड २।
जफरुल वली वी मुजफ्फर वा अलीह . गुजरातका अरबीमें इतिहास।
तबकात ए नसीरी : रावर्टे कृत अनुवाद, खंड १।
मीरात ए अहमदी : सैयद नवल अली, गा० ओ० सिरीज, खंड ३३।
किताब जैनुल अखबार : अबू सईद, सम्पादक नाजिम वरलिन।
तजुल माथीर आव हसन निजामी : इलियट खड २, पृ० २२६।

आधुनिक ग्रंथ

फोर्बस् : रासमाला, सम्पादक रोलिंगसन, आक्सफोर्ड १६२४, खंड १।
टाड . एनेल्स एड एटीक्युटीज़ आव राजस्थान, सम्पादक, कूक आक्सफोर्ड।
वेली ' हिस्ट्री आव गुजरात, १८८६, लन्दन।
कमिशेरियट : हिस्ट्री आव गुजरात।
केम्ब्रिज हिस्ट्री आव इंडिया ' खड ३, अध्याय २, ३, ५ तथा १३।
वर्गेस एड कसन्स : आर्किलाजिकल सर्वे आव इंडिया। उत्तरी गुजरात।
वर्गेस एड कसन्स : आर्किटेक्चरल एटीक्वीटीज़ आव नारदरन गुजरात।
डाक्टर व्हूलर : ए कन्ट्रीब्यूशन टू दी हिस्ट्री आव गुजरात।
डाक्टर व्हूलर : उवर दस लेवन दस जैन मौंक्स हेमचन्द्र।
एच० डी० सकालिया : आर्कलाजी आव गुजरात, नटवरलाल, बम्बई।
के० एम० मुन्शी : गुजरात नो नाथ, खंड १ से ५, बंबई।
के० एम० मुशी : ग्लोरी दैट वाज़ गुजरात।
एच० सी० रे : डाइनेस्टिक हिस्ट्री आव नदर्न इंडिया खंड १, २।
कसन्स : चालुक्यन आर्किटेक्चर, ए० एस० आई०, १६२६।
विसेंट स्मिथ : जैन स्तूप एंड अदर एंटीक्वीटीज़ आव मथुरा।
विसेंट स्मिथ : ए हिस्ट्री आव फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सिलोन।

जेम्स फर्ग्यूसन : हिस्ट्री आव इण्डियन एण्ड ईस्टर्न आर्किटेक्चर।
डाक्टर मोतीचन्द्र : जैन मिनिएचर फ्रौम वेस्टर्न इण्डिया।
साराभाई एम० नवाब : जैन चित्र कल्पद्रुम।
साराभाई एम० नवाब : जैन तीर्थज आव नदर्न इण्डिया।
मुनि श्री जिनविजय : राजर्षि कुमारपाल।

गजेटियर

गजेटियर आव बाम्बे प्रेसिडेन्सी।
राजपूताना गजेटियर।
इम्पीरियल गजेटियर।
गजेटियर आव नार्थ वेस्टर्न फ्रान्टियर प्राविन्स।

जर्नल

इपिग्राफिया इंडिया।
इंडियन एटीक्वेरी।
जर्नल आव रायल एशियाटिक सोसाइटी।
जर्नल आव बाम्बे ब्राच रायल एशियाटिक सोसायटी।
पूना ओरियंटलिस्ट।

अनुक्रमणिका

विशिष्ट व्यक्ति

ऐतिहासिक स्थान

ग्रन्थ

ज्ञानपीठ के सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

श्री० बनारसीदास चतुर्वेदी	
हमारे आराध्य	३)
संस्मरण	३)
रेखाचित्र	४)
श्री० अयोध्याप्रसाद गोयलीय	
शेरो-शायरी	८)
शेरो-सुखन [पाँचोंभाग]	२०)
गहरे पानी पैठ	२॥)
जैन-जागरणके अग्रदूत	५)
श्री० कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	
आकाशके तारे :	
धरतीके फूल	२)
जिन्दगी मुसकराई	४)
श्री० मुनि कान्तिसागर	
खण्डहरोंका वैभव	६)
खोजकी पगडंडियाँ	४)
डा० रामकुमार वर्मा	
रजतरश्मि [नाटक]	२॥)
श्री० विष्णु प्रभाकर	
संघर्षके बाद [कहानी]	३)
श्री० राजेन्द्र यादव	
खेल-खिलौने [कहानी]	२॥)
श्री० मधुकर	
भारतीय विचारधारा	२)
श्री० सम्पूर्णानन्द	
हिन्दू विवाहमें कन्या-दानका स्थान	१)
श्री० हरिवंशराय बच्चन	
मिलनयामिनी [गीत]	४)
श्री० अनूप शर्मा	
वर्द्धमान [महाकाव्य]	६)
श्री० वीरेन्द्रकुमार एम० ए०	
मुक्तिदूत [उपन्यास]	५)
श्री० रामगोविन्द त्रिवेदी	
वैदिक साहित्य	६)
श्री० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य	
भारतीय ज्योतिष	६)
श्री० लक्ष्मीशंकर व्यास एम० ए०	
चौलुक्य कुमारपाल	४)
श्री० नारायणप्रसाद जैन	
ज्ञानगंगा [सूक्तियाँ]	६)
श्रीमती शान्ति एम० ए०	
पञ्चप्रदीप [गीत]	२)
श्री० 'तन्मय' बुखारिया	
मेरे बापू [कविता]	२॥)
श्री० राजकुमार जैन साहित्याचार्य	
अध्यात्म-पदावली	५)
श्री० बैजनाथसिंह विनोद	
द्विवेदी-पत्रावली	२॥)